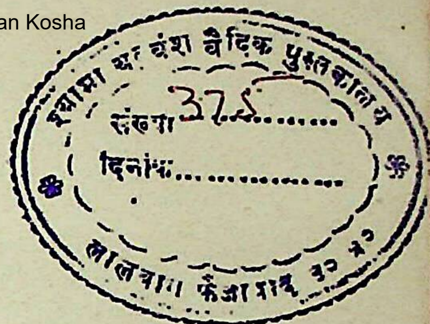
कारकीयः
स्त्रैण तद्धितः

[illegible]
नागपुर : १२.८.६१



* ओ३म् *

भूमिका

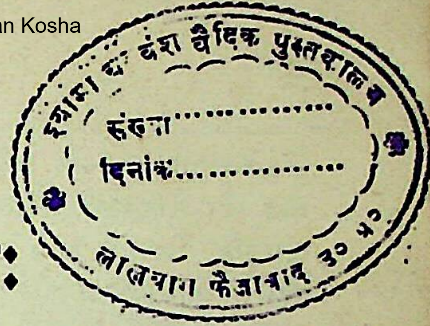
मैंने 'कारकीय' ग्रन्थ इसलिये बनाया है कि जिससे पढ़ाने और पढ़नेवालों को सुगमता से कारक सन्धि बोध होके वेदादि शास्त्रों का वाक्यार्थ-बोध सुगमता से होवे। मनुष्य जितना अर्थ कारकों से जान सकता है उतना अन्य प्रकरणों से नहीं, क्योंकि यह कारकसमूह क्रिया, द्रव्य और गुणवाची शब्दों के संबन्ध से समस्त वाक्यों के अर्थों का प्रकाशक है। 'उच्यतेऽर्थस्य विज्ञानाय विज्ञापनाय वा यत्तद्वाक्यम्' जो अर्थ के जानने और जनाने के लिये कहा जाता है वह 'वाक्य' कहाता है।

जो मनुष्य आठों कारकों की विद्या को यथावत् जानलेता है, वह वाक्यार्थों में सुबोध होता है। जिसलिये कारक संज्ञा के आधीन ही प्रथमा आदि विभक्तियों का विधान अष्टाध्यायी में है, इसलिये इस ग्रंथ में कारक सूत्रों के साथ विभक्ति-विधायक सूत्रों को भी लिख के उदाहरण प्रत्युदाहरण लिखे हैं। यहां एक उदाहरण वा प्रत्युदाहरण को जान और जना के उसके सदृश असंख्यात उदाहरणों को अध्यापक लोग जान लें और विद्यार्थियों को भी जना देवें, कि जिस से सद्यः संस्कृत बोल दूसरे के संस्कृत को समझ और वेदादि शास्त्रों के वाक्यार्थ जान के व्यवहार में भी बहुत उपकार होवे।

जैसे किसी से किसी ने पूछा कि 'त्वं कस्मादागच्छसि' तू कहां से आता है, वह उत्तर देवे कि 'नगरात्' नगर से, इस एक ही पद से कारक का जाननेहारा 'अहमागच्छामि' इन दोनों पदों के कहे विना भी पूरा वाक्यार्थ जानलेता है।

कारकों के बोध ही से मनुष्य कारक विषयों का विद्वान् हो सकता है, इत्यादि प्रयोजनों के लिये कारकों का जानना जनाना सब को उचित है। इस ग्रन्थ में अ० संकेत से अष्टाध्यायी, १ से अध्याय, २ से पाद, और ३ से सूत्र समझ लेना॥

इति भूमिका॥



॥ ओ३म् ॥

अथ कारकीयः

अथोपक्रमः

(प्रश्न) कारक और कारकीय किस को कहते हैं ?

(उत्तर) 'यत् करोति तत् कारकम्' जो करनेहारा अर्थ है वह 'कारक' कहाता, और इस ग्रन्थ में इसका व्याख्यान है इसलिये इसको 'कारकीय' कहते हैं।

(प्रश्न) कारक कितने प्रकार के होते हैं ?

(उत्तर) आठ—कर्त्ता; कर्म; करण; संप्रदान; अपादान; शेष; अधिकरण; और हेतु। इन में से—

१—'कर्त्ता' उसको कहते हैं कि जो पदार्थ, सकल साधनयुक्त होके स्वतंत्रता से सब क्रियाओं को करे। जैसे—देवदत्तः पठति; आकाशो वर्त्तते, इत्यादि। यहां विद्या पठन क्रिया का कर्त्ता देवदत्त[1] और वर्त्तमान क्रिया का आकाश है।

२—'कर्म' उसको कहते हैं कि जो किया जाय। इस के तीन भेद हैं—ईप्सिततम; अनीप्सितयुक्त और अकथित।

'ईप्सिततम कर्म' उसको कहते हैं कि जिस को अत्यन्त अभीष्ट जान के करें। जैसे—सुखमिच्छति; भोजनं करोति; ओदनं पचति; ग्रामं गच्छति, इत्यादि। यहां सुख होने की इच्छा, भोजन का करना, चावल का पकाना, और ग्राम को जाना किसी विशेष प्रयोजन के लिये अत्यन्त अभीष्ट होने से 'ईप्सिततम कर्म' कहाता है।

'अनीप्सितयुक्त कर्म' उस को कहते हैं कि जिस की इच्छा तो न हो परन्तु संयोग होने से किया ही जावे। जैसे—देवदत्तो ग्रामं गच्छन् चोरान् पश्यति कण्टकानुल्लङ्घयति, इत्यादि। यहां चोरों को देखने और कांटों में चलने की इच्छा तो किसी को नहीं होती परन्तु संयोग से चोरों का देखना और कांटों का उल्लंघन करना अवश्य होता है।

'अकथितयुक्त कर्म' उस को कहते हैं कि जिस का किसी गौण[2] भाव से निमित्त करके ईप्सिततम के साथ योग हो। जैसे—गां दोग्धि पयः; माणवकं पन्थानं

---

१. 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' इस से यहां कर्त्ता संज्ञा होती है, और सब कारकों में एकवचन के उदाहरणों से पृथक् द्विवचन बहुवचन के प्रयोग भी जान लेना ॥

२. ईप्सिततम मुख्यकर्म और अकथित गौण कहाता है, और मुख्यकर्म के विना गौण किसी वाक्य में नहीं आता ॥

पृच्छति इत्यादि[1]। यहां लड़के को पूछने रूप निमित्त के विना मार्ग का ज्ञान और गाय का दोहनरूप निमित्त के विना दूध की प्राप्ति नहीं हो सकती। परन्तु इस 'पृच्छति' क्रिया के साथ लड़के और 'दोग्धि' क्रिया के साथ साक्षात् गाय का संबन्ध नहीं है, किन्तु पन्था और दूध का है।

३—'करण' उसको कहते हैं कि जिस से कर्त्ता अपने कर्त्तव्य कर्म को कर सके। इस के दो भेद हैं—गौण और मुख्य।

'गौण करण' उस को कहते हैं कि जो साधारणता से क्रिया की सिद्धि का निमित्त हो। जैसे—हस्ताभ्यां फूत्कारादिनाग्निः प्रज्वलति, इत्यादि। यहां अग्नि की जलन क्रिया का निमित्त हाथों की फूकनादि क्रिया हैं।

'मुख्य करण' कारक उस को कहते हैं कि साक्षात् संबन्ध से कर्त्तव्य कर्म की सिद्धि में यथावत् उपयुक्त हो, जिस के विना वह कर्म कभी न हो सके। जैसे—इन्धनैरग्निः प्रज्वलति; अग्निनौदनं पचति, इत्यादि। यहां अग्नि को जलाने में इन्धन और चावल के पकाने में अग्नि ही मुख्य साधक है।

४—'संप्रदान' उसको कहते हैं जिस से किसी का अभीष्ट सिद्ध किया जाय। जैसे—विद्यार्थिने विद्यान्ददाति; अध्यापकाय धनं प्रयच्छति; अतिथयेऽन्नादिकं ददाति, इत्यादि। यहां विद्यादान कर्म से विद्यार्थी, धनदान क्रिया से आचार्य और अन्नादि पदार्थ के देने से अतिथि का अभीष्ट सिद्ध किया जाता है, इसलिये ये 'संप्रदान' हैं।

५—'अपादान' उस को कहते हैं कि जहां प्राप्त का त्याग और अप्राप्त देश की प्राप्ति की जाय। जैसे—गृहादागच्छति गच्छति वा; गुरुकुलादागच्छति गच्छति वा; ग्रामादागच्छति गच्छति वा[2], इत्यादि। यहां पढ़ने के लिये प्राप्त घर को छोड़ कर अप्राप्त पाठशाला और पूर्णविद्या पढ़ के गुरुकुलनिवासरूप देश को छोड़ कर जन्मभूमि को प्राप्त होना प्रयोजन है, किन्तु छोड़ने रूप क्रिया के कर्म की 'अपादान संज्ञा' है, अर्थात् जिस का वियोग कर दूसरे को प्राप्त होना होता है।

६—'शेष कारक' उसको कहते हैं कि जो अर्थ अपादानादि संज्ञाओं से गृहीत न हो। जैसे—यस्य प्रशस्तभाग्यशालिनो यज्ञदत्तस्य पुत्रः पठति, यहां पठनक्रिया के कर्त्ता पुत्र का संबन्धी यज्ञदत्त पिता है, जिस का पुत्र पढ़े वह भाग्यशाली है।

---

१. यहां दूध का निमित्त गौ और मार्ग का निमित्त होने से बालक गौणकर्म तथा दूध और मार्ग मुख्य है॥

२. यहां ग्रामादागच्छति; ग्रामादागच्छतः; ग्रामादागच्छन्ति इत्यादि सब वचन और तीनों पुरुष के प्रयोग होते हैं, क्योंकि एक स्थान से एक और अनेक का भी आना सम्भव है। और कई स्थानों से एक पुरुष का आना नहीं बनता, इसी कारण अपादानसंज्ञक शब्द में सब वचन नहीं होते। और जहां अनेक स्थानों से अनेकों का आना होगा वहां अपादान में भी सब वचन होंगे—ग्रामाभ्यामागच्छतः; ग्रामेभ्य आगच्छन्ति, इत्यादि॥

वेदस्य मन्त्रस्यार्थं जानाति—वेद के मन्त्र के अर्थ को जानता है। यहां मन्त्र का वेद और अर्थ का शेष मन्त्र है। अयसः कुठारेण वृक्षं छिनत्ति—लोह के कुल्हाड़े से वृक्ष को काटता है। यहां लोहा कुल्हाड़े का शेषार्थ है। आप्तस्याऽध्यापकस्य विद्यार्थिने ददाति—निष्कपट सत्यवादी पूर्णविद्यावान् पढ़ानेहारे पण्डित के विद्यार्थी को देता है। यहां विद्यार्थी का शेष पढ़ानेहारा है। राज्ञो ग्रामादागच्छति—राजा के गाम से आता है। यहां गाम का शेष कारक राजा है। राज्ञः पुरुषस्य पुत्रो दर्शनीयोऽस्ति—राजा के पुरुष का पुत्र देखने में सुन्दर है। गुरोः कुले निवसति—विद्यार्थी पढ़ने के लिये गुरु के कुल में निवास करता है। यहां अधिकरण कारक कुल शब्द का शेष गुरु है। राज्ञो मंत्री देवदत्तं ग्रामं गमयति, इत्यादि—राजा का मन्त्री देवदत्त को ग्राम में भेजता है। यहां हेतु कारक मन्त्री का शेष राजा है। इसी प्रकार शेष कारक को सब से बड़ा जानो, क्योंकि यह सब के साथ व्यापक रहता है। इसके विना कोई कारक नहीं रहता, चाहे शेष का प्रयोग हो वा न हो।

७—'अधिकरण' उसको कहते हैं कि जो आधेय का आधार रूप अर्थ हो। सो तीन प्रकार का होता है। तद्यथा—अधिकरणं नाम त्रिःप्रकारकं भवति। व्यापकमौपश्लेषिकं वैषयिकमिति॥ अ० ६। पा० १। सू० ७२। आ० ३। व्यापक; औपश्लेषिक; वैषयिक।

'व्यापक' अधिकरण उसको कहते हैं कि जिसका योग सब व्यक्ति और अवयवों में रहे। जैसे—दिक्कालाकाशेषु पदार्थाः सन्ति; ईश्वरे सर्वं जगद्वर्त्तते[1], इत्यादि—दिशा काल और आकाश में सब पदार्थ रहते और सब जगत् ईश्वर में है।

'औपश्लेषिक' उस को कहते हैं कि जहां आधार और आधेय का संयोग हो। जैसे—खट्वायां शेते; गृहे निवसति, इत्यादि। यहां खाट और सोनेवाले और घर तथा घर में रहनेवाले का स्पर्शमात्र संयोग है।

'वैषयिक' उसको कहते हैं कि जिस में जो रहे। जैसे—धर्मे प्रतिष्ठते; विद्यायां यतते[2] इत्यादि। मनुष्य की धर्म में वर्त्तने से प्रतिष्ठा और जो विद्या में यत्न करता है वह ज्ञानी होता है।

८—'हेतु कारक' उसको कहते हैं कि जो अर्थ क्रिया करनेहारे का प्रेरक हो। जैसे—देवदत्तो विद्यामधीते, गुरुरेनं विद्यामध्यापयति; विचक्षणो धर्मं करोति, उपदेष्टैनं धर्मं कारयति, इत्यादि। यहां पढ़नेहारे विद्यार्थी के पढ़ने के लिये प्रेरक गुरु और धर्म के करनेहारे चतुर पुरुष को धर्म करानेहारा उपदेशक है।

और इसमें इतना विशेष समझना चाहिये कि साक्षात् करनेहारे की 'कर्त्तृ कारक' संज्ञा और प्रेरणा करनेहारे की 'हेतु' संज्ञा है।

---

१. जैसे— तिलेषु तैलम्; दधनि घृतम्, इत्यादि भी व्यापक अधिकरण में गिने जाते हैं, क्योंकि तिलों के सब अवयवों में तेल और दही के सब अवयवों में घृत व्यापक है। दिशा आदि के उदाहरण सामान्य और ये विशेष हैं॥

२. प्रतिष्ठा का विषय धर्म और विद्या प्रयत्न का विषय है॥

(प्रश्न) वाक्य किसको कहते हैं ?

(उत्तर) आख्यातं साव्ययकारकविशेषणं वाक्यम्। सविशेषणमेकतिङ् वा—जो आख्यात अव्यय कारक और विशेषणयुक्त, हो सो 'वाक्य' कहाता है। 'साव्यय' जैसे—देवदत्त उच्चैः पठति, इत्यादि—देवदत्त ऊंचे स्वर से पढ़ता है। 'सकारक'—मनुष्यो धर्ममाचरेत्, इत्यादि—मनुष्य धर्माचरण करे। 'सविशेषण'—बुद्धिमान्देवदत्त ऋजु पठति, इत्यादि—बुद्धिमान् देवदत्त कोमलता से पढ़ता है।

अथवा जिसमें विशेषण युक्त एक तिङन्त पद हो, वह 'वाक्य' कहाता है। इसी के पूर्वोक्त उदाहरण—देवदत्त उच्चैः पठति, इत्यादि जानो।

(प्रश्न) वाक्य के कौन से प्रयोजन हैं ?

(उत्तर) अनेक अर्थ की प्रतीति और व्यवहार में प्रवृत्ति आदि हैं। क्योंकि—अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः। अर्थं प्रत्याययिष्यामीति शब्दः प्रयुज्यते॥ महाभाष्य अ० १। पा० १। सू० ४४। आ० ७। अर्थ के जानने के लिये शब्द का प्रयोग किया जाता है। वक्तुं योग्यं पदसमुदायं वाक्यम्—जो कहने को योग्य हो, जिसमें अनेक पदों का योग हो, वह 'वाक्य' कहाता है। जब तक कोई किसी को वाक्य बोल के अर्थ का बोध नहीं कराता तब तक उसका प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता, व्यवहार में प्रवृत्ति नहीं होती, और जब तक व्यवहार ठीक २ नहीं होता तब तक उसका कार्य सिद्ध होकर सुखप्राप्ति रूप प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता। इसलिए वाक्य और वाक्यार्थ का बोध करना सब मनुष्यों को अवश्य उचित है।

(प्रश्न) वाक्यार्थ बोध में कितने कारण हैं ?

(उत्तर) चार—आकांक्षा; योग्यता; आसत्ति और तात्पर्य।[1]

१—'आकांक्षा' उसको कहते हैं कि वाक्य में जिन पदों का प्रयोग है उनके साथ जिन अप्रयुक्त पदों का अवश्य संबन्ध करना हो। जैसे—अनुतिष्ठत, यहां अनुतिष्ठत इस क्रियापद के साथ यूयं और धर्म इन दों पदों और यूयमधर्मम्[2] इस वाक्य में संत्यजत इस क्रियापद की आकांक्षा अवश्य है, क्योंकि इनके विना वाक्य की पूर्त्ति कभी नहीं हो सकती। तथा—'अनाकांक्षा' उसको कहते हैं कि जिस वाक्य में सब योग्य पदों का प्रयोग हो। जैसे—यूयं धर्ममनुतिष्ठत; यूयमधर्मं संत्यजत, इत्यादि उदाहरण समझ लेना।

---

१. इन के विना कोई भी वाक्य नहीं होता, और न इनके जाने विना और ग्रंथ के वाक्यों के सत्य सत्य अभिप्राय का बोध किसी को हो सकता है॥

२. वाक्य का लक्षण तिङ् के विना नहीं किया, इस कारण इसको शुद्ध वाक्य नहीं कर सकते, किन्तु आकांक्षित वाक्य कहावेगा॥

२—'योग्यता' उसको कहते हैं कि जो पद जिसके साथ प्रयोग करने योग्य हो वा जिस से जो कार्य्य सिद्ध होता हो, उन्हीं का प्रयोग करना। जैसे—चक्षुषा पश्यति; श्रोत्रेण शृणोति; जलेन सिंचति; अग्निना दहति, इत्यादि—मनुष्य आंख से देखता, कान से सुनता, जल से सींचता और अग्नि से जलाता है। यहां वाक्यार्थ की योग्यता है, और—कर्णेन पश्यति; हस्तेन शृणोति; अग्निना सिञ्चति; जलेन दहति, इत्यादि में वाक्यार्थ की योग्यता नहीं है, क्योंकि कान से देखने, हाथ से सुनने, आग से सींचने और जल से जलाने का कभी संभव नहीं होसकता।

३—'आसत्ति' उस को कहते हैं कि जिस पद की जिस के साथ योग्यता हो उसको उसी के साथ बोलना। जैसे—हे देवदत्त त्वमिति कंचित्प्रति प्रातरुक्त्वा सायंकाले ब्रूयाद् ग्रामं गच्छेति—कोई किसी से प्रातःकाल 'तू' ऐसा कह कर चुपचाप रहे, पश्चात् सायंकाल में कहे कि ग्राम को जा। यहां चार पहर के विलम्ब होने से इस का वाक्यार्थ बोध किसी को नहीं होसकता, क्योंकि पदों का अभिसंबन्ध निकट नहीं है। और जैसे—हे देवदत्त त्वं ग्रामं गच्छ, इत्यादि वाक्य अर्थबोधक हो सकते है, क्योंकि यहां कर्त्ता कर्म्म और क्रिया का उच्चारण एक समय में समीपस्थ है।

४—'तात्पर्य' उसको कहते हैं कि वक्ता जिस अभिप्राय के जानने के लिये वाक्य बोले, उसी के अनुकूल दूसरे को समझना उचित है। जैसे किसी ने कहा कि—मह्यन्देह्यत्र दातव्यमेव दद्यादिति वेदितव्यम्। जैसे किसी ने किसी से कहा कि आप मुझको कुछ दीजिये, यहां ग्रहण करने के योग्य पदार्थों का मिलना वक्ता का प्रयोजन है। ऐसा न समझना कि अयं दुःखदायिवस्तुयाचक इत्यस्य तात्पर्यार्थः। जैसे पूर्व वाक्य में कोई ऐसा समझे यह मुझसे दुःखदायक पदार्थों को चाहता है, ऐसा समझना उसके तात्पर्यार्थ से विरुद्ध है। इसलिये सब को वाक्य बोध के कारण अवश्य जानने चाहियें॥

इत्युपक्रमः॥

(१) कर्तृकारक

६२९–कारके ॥ १ ॥ अ० १ । ४ । २३ ॥

संज्ञाधिकार के वीच पढ़ने और आगे आगे सूत्रों में इसकी अनुवृत्ति होने से यह अधिकार सूत्र है। इस से जहां जहां स्वतंत्र आदि शब्दों की संज्ञा की जावेगी, वहां वहां सर्वत्र कारक शब्द का अधिकार समझा जावेगा।

क्रिया और द्रव्य का संयोग और क्रिया की सिद्धि करनेवाले को 'कारक' कहते हैं ॥ १ ॥

६३०–स्वतंत्रः कर्त्ता ॥ २ ॥ अ० १ । ४ । ५४ ॥

स्व=आप, तंत्र=प्रधान (स्वतंत्र)। जो आप ही क्रिया के करने में प्रधान हो, उसकी कर्तृकारक संज्ञा है ॥ २ ॥

६३१–तत्प्रयोजको हेतुश्च ॥ ३ ॥ अ० १ । ४ । ५५ ॥

जो वह स्वतंत्र प्रेरणा करनेवाला हो, तो उस की हेतु और कर्त्ता दोनों संज्ञा होती हैं ॥ ३ ॥

६३२–प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा[1] ॥ ४ ॥ अ० २ । ३ । ४६ ॥

जो जिस अर्थ के साथ समर्थ होता है उस को 'प्रातिपदिकार्थ' कहते हैं। इसके अर्थमात्र, लिङ्ग अर्थात्—स्त्री, पुरुष नपुंसकमात्र, परिमाण अर्थात् तोल मात्र, और वचन—एक दो वहुत मात्र, इन अर्थों में प्रथमा विभक्ति होती है।

इसी सूत्र के भाष्य में लिखा है कि—तिङ्समानाधिकरणे प्रथमेत्येतल्लक्षणं करिष्यते। अस्ति भवति आदि तिङन्त क्रियाओं के साथ जिस का समानाधिकरण हो उसको उक्त कथित और अभिहित कहते हैं। उसी में प्रथमा विभक्ति होती है। इससे भिन्न कारकों में द्वितीयादि होती हैं, सो आगे कहेंगे।

कर्त्ता और हेतु कारक के उदाहरण प्रातिपदिकार्थमात्र में—देवदत्तो ग्रामं गच्छति; यज्ञदत्तो देवदत्तं ग्रामं गमयति; देवदत्त ओदनं पचति; यज्ञदत्तो देवदत्तेनौदनं पाचयति, इत्यादि। यहां गच्छति, पचति क्रिया के करने में देवदत्त स्वतन्त्र होने से कर्त्ता और यज्ञदत्त की प्रेरणा का कर्म है, उस का इन्हीं क्रियाओं के साथ समानाधिकरण

---

१. यहां 'प्रातिपदिकार्थ' उसको कहते हैं कि जो उस शब्द की सत्तामात्र हो, और जो अर्थ के साथ शब्द का विशेष संबन्ध होता है। इसीलिये लिङ्ग आदि का ग्रहण है। जैसे—पुमान्, इस शब्द में जो पुरुष व्यक्ति के साथ सामान्य सम्बन्ध है वही प्रातिपदिकार्थ है। और पुरुषपन अर्थात् स्त्री से अलग होना है यह प्रातिपदिकार्थ नहीं है, किन्तु लिङ्ग है ॥

होने से उसमें प्रथमा विभक्ति होती है। तथा अर्थ मात्र के कहने से उच्चैः, नीचैः इत्यादि में भी प्रथमा विभक्ति होजावे।

लिङ्गमात्र में—कुमारी, यहां जो प्रातिपदिकार्थ युवा अवस्था है उससे स्त्रीत्व पृथक् है इसलिये प्रातिपदिक संज्ञा नहीं प्राप्त थी। पुल्लिङ्ग—वृक्षः। वृक्ष एक[1] जाति है, यहां जो जातित्वमात्र प्रातिपदिकार्थ है वह पुल्लिङ्ग व्यक्ति से पृथक् है। नपुंसक—कुलम्, यहां भी नपुंसकपन प्रातिपदिकार्थ जो जनसमुदाय है उस से पृथक् है।

परिमाणमात्र में—द्रोणः। खारी। आढकम्. इन तोल के वाची शब्दों में प्रथमा होती है[2]। वचनमात्र में—एकः। द्वौ। बहवः, यहां जो एक दो और बहुत संख्यात्व है, वह प्रातिपदिकार्थ से पृथक् है।

यहां 'मात्र' ग्रहण इसलिये है कि इससे भिन्न अन्यत्र कर्म्मादि के विषय में प्रथमा न हो ॥ ४ ॥

यह कर्तृकारक पूरा हुआ ॥

---

(२) कर्मकारक

६३३-कर्तुरीप्सिततमं कर्म ॥ ५ ॥ अ० १। ४। ४६ ॥

जो बहुत कारकों से युक्त वाक्य के बीच में कर्त्ता को अत्यन्त इष्ट कारक है, वह कर्मसंज्ञक होता है ॥ ५ ॥

इस का फल—

६३४-अनभिहिते ॥ ६ ॥ अ० २। ३। १ ॥

यह अधिकार विभक्तिविधान प्रकरण में है। 'अभिहित' उस को कहते हैं कि जिस से लकारादिप्रत्ययान्त क्रियाओं का समानाधिकरण होवे। और जिसमें लकारादि प्रत्ययों का समानाधिकरण न हो उसी को अनभिहित, अनुक्त और अकथित भी कहते हैं।

इस के आगे जो २ विभक्तिविधान प्रकरण के सूत्र लिखे जावेंगे, उन सब में यही अधिकार समझा जावेगा। और संज्ञाप्रकरण का अधिकार लिख चुके हैं ॥ ६ ॥

---

१. एक शब्द के उच्चारण से सामान्य अर्थात् असंख्य व्यक्तियों का बोध होना 'जाति' कहाती है। सो वृक्ष शब्द के उच्चारण से व्यक्ति, आकृति और जाति तीनों का बोध होता है, लिङ्गार्थ इन तीनों से पृथक् है ॥

२. तोलन साधक द्रोण आदि शब्द, घृत आदि मेय अर्थात् परिमाण विषयों के संबन्ध में मान अर्थात् इयत्ताकरणार्थ होने से प्रातिपदिकार्थ से पृथक् हैं, इसलिये इनका ग्रहण है ॥

६३५—कर्मणि द्वितीया ॥ ७ ॥ अ० २ । ३ । २ ॥

अनभिहित कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति हो ।

ग्रामं गच्छति । वेदं पठति । यज्ञं करोति, यहां ग्राम का जाना, वेद का पढ़ना, और यज्ञ का करना अत्यन्त इष्ट[1] है, इसलिये ग्राम वेद और यज्ञ की कर्म्म संज्ञा हो के द्वितीया विभक्ति होजाती है । इसी प्रकार सर्वत्र जानना ।

अनभिहित का प्रयोजन यह है कि—पठ्यो वेदः, यहां वेद शब्द के अभिहित होने से द्वितीया न हुई ॥ ७ ॥

६३६—वा०—समयानिकषाहाप्रतियोगेषूपसंख्यानम्[2] ॥ ८ ॥ अ० २ । ३ । २ ॥

समया, निकषा, हा, प्रति इन चार अव्ययों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है ।

समया ग्रामम् । निकषा ग्रामम् । हा देवदत्तम् । देवदत्तं प्रति । यहां सर्वत्र देवदत्त और ग्राम शब्द में द्वितीया विभक्ति हुई है ॥ ८ ॥

६३७—वा०—अपर आह—द्वितीयाऽभिधानेऽभितःपरितःसमयानिकषाऽध्यधिधिग्योगेषूपसंख्यानम् ॥ ९ ॥ अ० २ । ३ । २ ॥

अभितः, परितः, समया, निकषा, अध्यधि, धिक् इन शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होवे ।

समया और निकषा शब्द पूर्ववार्त्तिक में आचुके हैं, इन के उक्त उदाहरण जानने । अभितो ग्रामम् । परितो ग्रामम् । अध्यधि ग्रामम् । धिग् जाल्मम् ॥ ९ ॥

६३८—का०—अपर आह—

उभसर्वतसोः कार्य्या धिगुपर्य्यादिषु त्रिषु ।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥१०॥
अ० २ । ३ । २ ॥

उभयतस्, सर्वतस्, धिक, उपर्य्युपरि, अध्यधि, अधोधो इनके योग में भी द्वितीया विभक्ति होवे ।

जैसे—उभयतो ग्रामम् । सर्वतो ग्रामम् । धिग्जाल्मम् । उपर्युपरि ग्रामम् । अध्यधि ग्रामम् । अधोऽधो ग्रामम् ।

और इन के योग से अन्यत्र जहां किसी सूत्र वार्त्तिक से द्वितीया विधान न हो, वहां भी इसी कारिका के प्रमाण से होती है । जैसे—बुभुक्षितन्न प्रतिभाति किञ्चित्, इत्यादि । यहां प्रति के योग में द्वितीया हुई है ॥ १० ॥

---

१ जो पदार्थ अत्यन्त इष्ट नहीं होता, उस की सिद्धि के लिये शरीर इंद्रिय मन बुद्धि आदि की यथार्थ प्रवृत्ति नहीं होती, फिर उस की कर्म संज्ञा भी नहीं हो सकती ॥

२. यहां अनभिहित कर्म नहीं है, इसलिये यह द्वितीयाविभक्तिविधान प्रकरण बांधा है ॥

६३९–तृतीया च होश्छन्दसि ॥ ११ ॥ अ० २ । ३ । ३ ॥

वेदविषयक 'हु' धातु के अनभिहित कर्मकारक में तृतीया और चकार से द्वितीया विभक्ति भी होती है।

यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति । यवागूमग्निहोत्रं जुहोति ।

'छन्द' का ग्रहण इसलिये है कि–यवागूमग्निहोत्रं जुहोति, यहां लोक में तृतीया विभक्ति न हो ॥ ११ ॥

६४०–अन्तरान्तरेण युक्ते ॥ १२ ॥ अ० २ । ३ । ४ ॥

अन्तरा, अन्तरेण इन दो अव्ययों के योग में द्वितीया विभक्ति हो[1] ।

अग्निमन्तरा कथं पचेत् । अग्निमन्तरेण कथं पचेत् ॥ १२ ॥

६४१–कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ॥ १३ ॥ अ० २ । ३ । ५ ॥

अत्यन्त संयोग अर्थ में कालवाची और मार्गवाची शब्दों से द्वितीया विभक्ति होवे।

मासमधीतोऽनुवाकः । क्रोशं कुटिला नदी[2] ।

यहां 'अत्यन्त संयोग' ग्रहण इसलिये है कि—दिवसस्य द्विर्भुङ्क्ते, इत्यादि में द्वितीया न हो ॥ १३ ॥

६४२–अपवर्गे तृतीया ॥ १४ ॥ अ० २ । ३ । ६ ॥

जो शुभ कर्म की समाप्ति है उसको अपवर्ग कहते हैं, इस अत्यन्त संयोग अर्थ में कालवाची और मार्गवाची शब्दों से तृतीया विभक्ति हो।

मासेनाधीतोऽनुवाकः । क्रोशेनाधीतोऽनुवाकः ।

यहां 'अपवर्ग' ग्रहण इसलिये है कि—मासमधीतोऽनुवाको न चानेन गृहीतः, इत्यादि स्थल में तृतीया न हो[3] ॥ १४ ॥

---

१. यह द्वितीया विभक्ति का प्रकरण है, और पूर्वसूत्र में तृतीया विधान है, सो द्वितीया का ही अपवाद है, इसलिये यहां तृतीया की अनुवृत्ति नहीं आती, द्वितीया की ही आती है। और यह सूत्र अपूर्व विधायक है, अर्थात् अन्तरा अन्तरेण इन अव्ययों के योग में किसी विभक्ति का विधान किसी सूत्र से नहीं है ॥

२. यहां अत्यन्तसंयोग यह है कि महीने के बीच पढ़ने में कोई अनध्याय वा विघ्न न हुआ, यह उस काल और पठनक्रिया का अत्यन्त संयोग है। क्रोश भर टेढ़ी नदी, यहां मार्ग और नदी का अत्यन्त संयोग है, क्योंकि क्रोश भर में टेढ़ाई व्याप्त है ॥

३. अर्थात् जहां एक महीने में पढ़ के समाप्त कर दिया हो, और अच्छे प्रकार जान लिया हो, वहीं हो ॥

२

६४३—सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ॥ १५ ॥ अ० २ । ३ । ७ ॥

जो अत्यन्त संयोग अर्थ में दो कारकों के बीच काल और मार्गवाची शब्द हों, तो उनसे सप्तमी और पञ्चमी विभक्ति हों।

अद्य देवदत्तो भुक्त्वा द्व्यहाद् भोक्ता; द्व्यहे भोक्ता। इहस्थोऽयमिष्वासः क्रोशाल्लक्ष्यं विध्यति; क्रोशे लक्ष्यं विध्यति, इत्यादि ॥ १५ ॥

६४४—गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ॥ १६ ॥ अ० २ । ३ । १२ ॥

जिनकी चेष्टा क्रिया विदित होती हो, ऐसे गत्यर्थक धातुओं के मार्गरहित अनभिहित कर्म में द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति हों।

ग्रामं गच्छति; ग्रामाय गच्छति। ग्राममेति; ग्रामायैति[1]।

'गत्यर्थक' धातुओं का ग्रहण इसलिये है कि—कटं करोति, यहां चतुर्थी न हो। 'कर्म' ग्रहण इसलिये है कि—अश्वेन गच्छति, यहां करण में द्वितीया और चतुर्थी न हों। 'चेष्टा' ग्रहण इसलिये है कि—मनसा गृहं गच्छति, यहां चेष्टा के न होने से चतुर्थी नहीं होती। और 'अनध्वनि' ग्रहण इसलिये है कि—अध्वानं गच्छति, यहां चतुर्थी न हो ॥ १६ ॥

६४५—वा०—अध्वन्यर्थग्रहणम् ॥ १७ ॥ अ० २ । ३ । १२ ॥

अध्व के पर्य्यायवाची शब्दों का भी निषेध में ग्रहण होना चाहिये।

जैसे—अध्वानं गच्छति, यहां चतुर्थी नहीं होती। वैसे ही—पन्थानं गच्छति, इत्यादि में भी चतुर्थी न हो ॥ १७ ॥

६४६—वा०—आस्थितप्रतिषेधश्च ॥ १८ ॥ अ० २ । ३ । १२ ॥

मार्गवाची मुख्य शब्दों का निषेध होना चाहिये।

क्योंकि—उत्पथेन पन्थानं गच्छति; पथे गच्छति,[2] यहां चतुर्थी का निषेध न हो जावे ॥ १८ ॥

अब कर्म संज्ञा में जो विशेष सूत्र, वार्त्तिक तथा कारिका बाक़ी हैं, वे लिखते हैं। उन में कर्म संज्ञा होके प्रथम सूत्र से ही द्वितीया विभक्ति होती है—

---

१. यहां अनभिहित कर्म्म में (कर्म्मणि द्वितीया ॥ अ० २ । ३ । २) कारकीय—७ इससे द्वितीया ही पाती है, उसका यह अपवाद है ॥

२. यहां मार्गवाची मुख्य शब्द यों नहीं है कि गड़बड़ मार्ग से शुद्ध मार्ग के लिये जाता है। शुद्ध मार्ग का चलना गौण है ॥

६४७–तथा युक्तं चानीप्सितम् ॥ १९ ॥ अ० १ । ४ । ५० ॥

जिस प्रकार ईप्सिततम कारक की कर्म संज्ञा होती है, वैसे ही जिसका अकस्मात् योग हो जाय, तो उस युक्त अनीप्सित की भी कर्म संज्ञा हो।

ग्रामं गच्छन् वृकान् पश्यति; तृणानि स्पृशति—ग्राम को जाता हुआ भेड़ियों को देखता, और घास का स्पर्श करता जाता है। भेड़ियों का देखना तो उसको अनिष्ट है, और घास का स्पर्श होना इष्ट अनिष्ट दोनों ही नहीं। इष्ट केवल ग्राम का जाना है, सो उसकी कर्म संज्ञा पूर्वसूत्र से ही हो गई। यहां भेड़िया और घास की कर्म संज्ञा हो जाने से द्वितीया विभक्ति हो जाती है ॥ १९ ॥

६४८–अकथितं च ॥ २० ॥ अ० १ । ४ । ५१ ॥

अपादान आदि सब कारकों में जिसकी कोई संज्ञा न की हो उसको 'अकथित' कहते हैं। उस अकथित की भी कर्म संज्ञा हो जावे।

जैसे—अजां नयति ग्रामम्। भारं वहति ग्रामम्। यहां अजा और भार शब्द की तो कर्म संज्ञा (कर्त्तुरी० ॥ १ । ४ । ४९) इस उक्त (५) सूत्र से सिद्ध ही है। ग्राम शब्द में किसी कारक संज्ञा की प्राप्ति नहीं थी, इससे उसकी इस सूत्र से कर्म संज्ञा हो के द्वितीया होती है ॥

जो इस सूत्र का व्याख्यान महाभाष्यकार ने किया है, सो लिखते हैं—

६४९–का०—

दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिक्षिचिञामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ।
ब्रुविशासिगुणेन च यत्सचते तदकीर्त्तितमाचरितं कविना ॥२१॥
म० १ । ४ । ५१ ॥

इस कारिका से सूत्र का प्रयोजन दिखलाया है। दुह, याच, रुध, प्रच्छ, भिक्ष, चिञ्, ब्रूञ् और शासु इन धातुओं के योग में उपयोग[1] का जो निमित्त हो, उसकी अपूर्वविधि अर्थात् जिसका विधान पूर्व अपादान आदि कारकों में कुछ भी न किया हो, तो इस सूत्र से कर्म संज्ञा हो।

जैसे दुह—गां दोग्धि पयः। याच पौरवं गां याचते। रुध—गामवरुणद्धि व्रजम्। प्रच्छ—माणवकं पन्थानं पृच्छति। भिक्ष—पौरवं गां भिक्षते। चिञ्—वृक्षमवचिनोति फलानि। ब्रूञ्—पुत्रं धर्मं ब्रूते। शासु—सन्तानं धर्मं शास्ति ॥ २०—२१ ॥

---

१. उपयोग उसको कहते हैं कि जिस का क्रिया के साथ मुख्य संबन्ध हो। और उसका निमित्त वह है कि जिस के विना उसकी सिद्धि न हो। जैसे—पौरवं गां याचते, यहां गौ तो उपयोगी कर्म है, वह ईप्सिततम होने से पूर्व सूत्र से कर्मसंज्ञक हो जाता, और इसी कर्म का याचन क्रिया के साथ मुख्य संबन्ध है। और पौरव जो दाता पुरुष है वही इस गौ का निमित्त है, उसके विना गौ नहीं मिल सकती। इसलिये पौरव अकथित कर्म है, उस की कर्म संज्ञा इस सूत्र से होती है ॥

(प्रश्न) जहां कर्म कारक में लकारादि प्रत्यय विधान हैं, वे जहां दो कर्म हों वहां किस कर्म में होने चाहियें ?

(उत्तर)—

६५०—का०—कथिते लादयश्चेत्स्युः षष्ठीं कुर्य्यात्तदा गुणे ।
अकारकं ह्यकथितात्कारकं चेत्तु नाकथा ॥ २२ ॥
म० १ । ४ । ५१ ॥

विचार करते हैं कि जो कथित प्रधान कर्म में लकारादि प्रत्यय किये जावें, तो गौण अर्थात् अकथित कर्म में षष्ठी विभक्ति होनी चाहिये ।

जैसे—दुह्यते गोः पयः । याच्यते पौरवस्य कम्बलः । क्योंकि जो अकथित है वह कारक नहीं, किन्तु जो कथित है वही कारक है । जिस जिस में लकारादि प्रत्यय होते हैं उस उस कथित कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है, और जो अकथित है कि जिस में किसी विभक्ति की प्राप्ति नहीं, उस के शेष होने से वहां षष्ठी हो जाती है ॥ २२ ॥

६५१—का०—कारकं चेद्विजानीयाद्यां यां मन्येत सा भवेत् ॥ २३॥
म० १ । ४ । ५१ ॥

और जिसको अकथित जानते हो, उस को जो कारक जानो तो जिस जिस कारक संज्ञा में उसकी प्रवृत्ति हो सकती हो, वही विभक्ति उसमें करनी चाहिये ।

जो उस अकथित की अपादान संज्ञा हो सकती हो, तो वहां पञ्चमी विभक्ति करनी चाहिये । जैसे—दुह्यते गोः पयः । याच्यते पौरवात्कम्बलः ॥ २३ ॥

पूर्वकारिका से जो कथित कर्म में लकारादि प्रत्ययों का विधान किया, सो किसी किसी आचार्य्य का मत है । अब तीसरी कारिका से पाणिनिजी का मत दिखलाते हैं—

६५२—का०—
कथितेऽभिहिते त्वविधिस्त्वमतिर्गुणकर्मणि लादिविधिः स परे ।
ध्रुवचेष्टितयुक्तिषु चाप्यगुणे तदनल्पमतेर्वचनं स्मरत ॥२४॥
म० १ । ४ । ५१ ॥

जो कथित कर्म में लकारादि प्रत्यय होते हैं, यह तुम्हारी बुद्धि से तुमने विधान किया है [1] । परन्तु पाणिनिजी के मत से तो गौण अर्थात् अकथित कर्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहियें ।

१. यह संकेत उन लोगों की ओर है कि जिन का मत प्रथम कारिका से कथित कर्म में लकारादि प्रत्ययों का होना दिखलाया है ॥

जैसे (गतिबुद्धि० ॥ १।४।५२) इस आगे के (३०) सूत्र में गौण कर्म में लकारादि प्रत्यय होते हैं, वैसे यहां भी हों—गौर्दुह्यते पयः। गौर्दोग्धव्या पयः। गौर्दुग्धा पयः। गौः सुदोहा पयः, इत्यादि। जहां अप्रधान गौ कर्म में लकारादि प्रत्यय होते हैं, वहां अभिहित होने से प्रथमा और पयः के अनभिहित होने से द्वितीया विभक्ति होती है।

तथा ध्रुवयुक्ति=अकर्मक और चेष्टितयुक्ति=गत्यर्थक धातुओं के अगुणे=कथित कर्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहियें। जैसे—अकर्मक—आसितव्यो देवदत्तो यज्ञदत्तेन। गत्यर्थक—अजा नेतव्या ग्रामम्। महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि कहते हैं कि हे वैयाकरण लोगो! अगाध बुद्धिवाले पाणिनि आचार्य का यह मत है, तुम लोग जानो ॥ २४ ॥

अब जो मत अन्य बहुत आचार्य्यों का है, सो चौथी कारिका से दिखाते हैं—

६५३–का०–प्रधानकर्मण्याख्येये लादीनाहुर्द्विकर्मणाम्।
अप्रधाने दुहादीनां ण्यन्ते कर्त्तुश्च कर्मणः ॥ २५ ॥
म० १।४।५१ ॥

जो द्विकर्मक धातु हैं, उनके प्रधान कथित कर्म्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहियें। जैसे—अजां नयति ग्रामम्। अजा नीयते ग्रामम्। अजा नीता ग्रामम्। यहां प्रधान कथित अजा कर्म्म है, उस में लकारादि के होने से प्रथमा विभक्ति, और ग्राम में अनभिहित होने से द्वितीया होती है।

तथा दुहादि अर्थात् जो धातु प्रथम कारिका में गिनाये हैं, उनके अकथित अर्थात् गौण कर्म्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहियें। इस के उदाहरण दे चुके हैं।

और ण्यन्तावस्था में जिन धातुओं के जिस कर्त्ता की कर्म्म संज्ञा होती है, उन के उसी कर्म्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहियें। जैसे—यज्ञदत्तो गच्छति ग्रामम्। यहां 'यज्ञदत्त' गमधातु का प्रथम स्वतन्त्र कर्त्ता और 'ग्राम' कर्म है। जब उस का ण्यन्तावस्था में प्रयोजक कर्त्ता 'देवदत्त' होता है, तब 'यज्ञदत्त' की कर्म्म संज्ञा हो जाती है—देवदत्तो यज्ञदत्तं ग्रामं गमयति, यहां अप्रधान यज्ञदत्त है, उसी में लकार होने से। देवदत्तेन यज्ञदत्तो ग्रामङ्गम्यते, यहां गौण कर्म्म यज्ञदत्त में प्रथमा विभक्ति होती है, और ग्राम में द्वितीया होजाती है।

यह चौथी कारिका से जो लकारादि प्रत्यय विधान में व्यवस्था की है, सो बहुत ऋषि लोगों का सिद्धान्त है। इससे यही व्यवस्था सब से बलवान् है ॥ २५ ॥

जो प्रथम कारिका में कहे हैं, उन से भिन्न द्विकर्मक धातु कितने हैं, सो पांचवीं कारिका से दिखाते हैं—

६५४–का०–नीवह्योर्हरतेश्चाऽपि गत्यर्थानां तथैव च।
द्विकर्म्मकेषु ग्रहणं द्रष्टव्यमिति निश्चयः ॥ २६ ॥
म० १।४।५१ ॥

नी, वहि, हरति और ण्यन्तावस्था में जिन का कर्त्ता कर्म्म होता है, वे सब द्विकर्म्मकों में गिने जाते हैं ॥ २६ ॥

अकर्म्मक धातु सकर्म्मक कैसे होते हैं, यह विषय छठी कारिका से दिखाते हैं—

६५५—का०—कालभावाध्वगन्तव्याः कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणाम् ॥२७। अ० १ । ४ । ५१ ॥

काल—क्षण आदि, भाव[1]—होना, अध्वगन्तव्य—मार्ग में चलना, ये तीनों सब अकर्म्मकों के योग में कर्मसंज्ञक हो जाते हैं।

जैसे काल—मासमास्ते। मासं स्वपिति—अयुक्त एक मास बैठा रहता है, और एक मास सोता है। यहां महीना कर्म्म हो गया। प्रयोजन यह है कि एक महीना बैठ के काटता है, और एक महीना सोके काटता है, तो बैठने और सोने का कर्म्म महीना हो गया।

भाव—गोदोहमास्ते। गोदोहं स्वपिति। यहां गौ का जो दोहना भाव है, वही उसके बैठने और सोने का कर्म्म है। अध्वगन्तव्य—क्रोशमास्ते। क्रोशं स्वपिति—सवारी में बैठ के मार्ग में चलता हुआ मनुष्य कोश भर बैठा कोश भर सोया, अर्थात् जो दो कोश बैठने और सोने में मार्ग व्यतीत किया, वही बैठने सोने का कर्म्म हो गया है ॥ २७ ॥

६५६—वा०—देशश्चाकर्मणां कर्मसञ्ज्ञो भवतीति वक्तव्यम् ॥२८॥ अ० १ । ४ । ५१ ॥

इस वार्तिक से अकर्मक धातुओं का देश भी कर्मसंज्ञक होता है।

जैसे—पञ्चालान् स्वपिति—कोई विमान आदि यान में बैठा हुआ पंजाब देश भर सोता ही चला गया, उसके सोने का कर्म पंजाब देश होगया ॥ २८ ॥

६५७—का०—विपरीतन्तु यत्कर्म तत्कल्म कवयो विदुः ॥ २९ ॥ अ० १ । ४ । ५१ ॥

ईप्सिततम कर्म से भिन्न जो कर्म है, उस को विद्वान् लोग 'कल्म' कहते हैं।

जिस के बीच में कर्म संज्ञा के सब काम नहीं किये जाते किंतु केवल द्वितीया विभक्ति मात्र ही की जाती है, तथा जिस किसी में अन्य भी कर्मसंज्ञा के कार्य होते हों, उससे जो दूसरा होता है वह विपरीत कर्म कहाता है, उसी को 'कल्म' कहते हैं। जैसे—भारं

---

१. यहां 'भावं भवनं भूतिं भवति देवदत्तः' जैसे भावार्थवाची भाव आदि शब्द भवति क्रिया के कर्म्म होने से भू धातु सकर्म्मक हो जाता है, वैसे सब अकर्म्मक धातुओं की व्यवस्था जाननी। 'देवदत्त एधनमेधते' इत्यादि, यहां कृदभिहितो भावो द्रव्यवद्भवति। महाभाष्य अ० ३। पा० १। सू० ६६ कहा है कि जो तव्यदादि प्रत्ययों से कथित भाव है, वह द्रव्य के समान होता है ॥

वहति ग्रामम्, यहां प्रधान जो भार कर्म है उसमें तो कर्म के सब कार्य्य होते हैं, और ग्राम शब्द में केवल द्वितीया विभक्ति होती है। इससे इसकी 'कल्म' संज्ञा है।

तथा—गां दोग्धि पयः, यहां प्रधान कर्म तो पय है परन्तु लकारादि प्रत्यय विधान कर्म संज्ञा के कार्य हैं, वे गो शब्द में किये जाते हैं। इससे यहां पय शब्द की 'कल्म' संज्ञा है।

यहां विशेष कल्म संज्ञा रखने के लिये कर्म शब्द के रेफ को लकारादेश (संज्ञा-छन्दसो०) इस वर्त्तिक से संज्ञा मान के किया है॥ २९॥

६५८–गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्त्ता स णौ॥ ३०॥ अ० १।४।५२॥

गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक, प्रत्यवसानार्थक अर्थात् भोजनार्थक, शब्दकर्मक और अकर्मक, इन धातुओं का जो णिच् प्रत्यय के पहिले कर्त्ता है, वह णिच् के हुए पश्चात् कर्मसंज्ञक हो।

गत्यर्थक—गच्छति ग्रामं देवदत्तः, गमयति ग्रामं देवदत्तम्। याति ग्रामं देवदत्तः, यापयति ग्रामं देवदत्तं यज्ञदत्तः। यहां णिच् के पहिले का जो कर्त्ता देवदत्त है वह णिच् के पश्चात् कर्मसंज्ञक हो के उससे द्वितीया हो जाती है। बुद्ध्यर्थक—जानाति विप्रः शास्त्रम्, ज्ञापयति विप्रं शास्त्रम्। बुद्ध्यते देवदत्तः शास्त्रम्, बोधयति देवदत्तं शास्त्रम्।

प्रत्यवसानार्थक—अश्नाति फलानि माणवकः, आशयति फलानि माणवकम्। भुङ्क्ते ओदनं बालकः, भोजयत्योदनं बालकम्। शब्दकर्मक—ब्रूते धर्मं ब्राह्मणः, वाचयति धर्मं ब्राह्मणम्। उपदिशति धर्मं ब्राह्मणः, उपदेशयति धर्मं ब्राह्मणम्। अकर्मक—स्वपिति बालः, स्वापयति धात्री बालम्। पुत्रः शेते, माता पुत्रं शाययति। यहां सर्वत्र जो अण्यन्तावस्था में कर्त्ता है वही णिच् में कर्म हो गया है।

इस सूत्र में 'गत्यर्थादि' धातुओं का ग्रहण इसलिये है कि—पचत्योदनं देवदत्तः, पाचयत्योदनं देवदत्तेन, यहां कर्म संज्ञा के न होने से कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है। और 'अणिकर्त्ता' ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्तो यज्ञदत्तं गमयति, तमन्यो गमयति देवदत्तेन, यहां णिच् के परे गम धातु का कर्त्ता है, सो दूसरे णिच में कर्म्मसंज्ञक नहीं होता॥ ३०॥

अब आगे इस सूत्र के वार्तिक लिखते हैं—

६५९–वा०–दृशेः सर्वत्र॥ ३१॥ अ० १।४।५२॥

सर्वत्र अर्थात् दोनों पक्ष में दृश धातु का जो अण्यन्तावस्था का कर्त्ता है, वह ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञक होवे

पश्यति रूपतर्कः कार्षापणम्, दर्शयति रूपतर्कं कार्षापणम्, यहां रूपतर्क शब्द की कर्म्म संज्ञा होती है॥ ३१॥

६६०-वा०-आदिखादिनीवहीनां प्रतिषेधः ॥३२॥ अ०१।४।५२॥

आदि, खादि इन दो धातुओं के प्रत्यवसानार्थ होने और नी, वहि इन दो के गत्यर्थक होने से कर्म्म संज्ञा प्राप्त है, इसलिये प्रतिषेध किया है।

अद—अत्ति देवदत्तः, आदयति देवदत्तेन। यहां अरायन्त धातु के कर्त्ता देवदत्त की कर्म संज्ञा न होने से द्वितीया विभक्ति न हुई॥ ३२ ॥

तथा बहुत आचार्यों का ऐसा मत है कि—

६६१-वा०-अपर आह—

सर्वमेव प्रत्यवसानकार्यमदेर्न भवतीति वक्तव्यं परस्मैपदमपि। इदमेकमिष्यते, क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्य इति ॥ ३३ ॥ अ० १ । ४ । ५२ ॥

प्रत्यवसानार्थ धातुओं को जितना कार्य होता है, उसमें से अद धातु को कुछ भी न हो, तथा निगरणार्थ मान के जो परस्मैपद [1] प्राप्त है वह भी न हो।

अत्ति देवदत्तः, आदयते देवदत्तेन, यहां आत्मनेपद होता है। प्रत्यवसानार्थ का एक कार्य अद धातु को होना चाहिये—इदमेषां जग्धम् [2]।

खादति देवदत्तः, खादयति देवदत्तेन, यहां भी अणि के कर्त्ता देवदत्त शब्द की कर्म्म संज्ञा न हुई। नी—नयति भारं देवदत्तः, नाययति भारं देवदत्तेन। यहां नी धातु के कर्त्ता देवदत्त की कर्म्म संज्ञा न होने से उस में द्वितीया न हुई। वह—वहति भारं देवदत्तः, वाहयति भारं देवदत्तेन। यहां सर्वत्र णिच् में कर्त्ता की कर्म संज्ञा नहीं होती ॥ ३३ ॥

परन्तु 'वह' धातु में इतना विशेष है कि—

६६२-वा०-वहेरनियन्तृकर्त्तृकस्य [3] ॥ ३४ ॥ अ० १ । ४ । ५२ ॥

यहां पूर्व वार्त्तिक से निषेध की अनुवृत्ति चली आती है। नियन्ता अर्थात् जहां सारथी 'वह' धातु का कर्त्ता न हो, वहीं कर्म संज्ञा का निषेध हो, अन्यत्र नहीं।

---

१. परस्मैपद (निगरणचलनार्थेभ्यश्च ॥ अ० १ । ३ । ८७) इस सूत्र में निगरणार्थ शब्द प्रत्यवसानार्थ का पर्य्यायवाची है, और प्रत्यवसान तथा निगरण इन दोनों का शब्द भेद होने से 'परस्मैपदमपि' यह कहा है, नहीं तो प्रत्यवसान के कहने से हो ही जाता ॥

२. 'जग्धम्' यहां अद धातु के प्रत्यवसानार्थ होने से अधिकरण कारक में क्त प्रत्यय विधान है, सो प्रत्यवसान से सब कार्य्यों के निषेध में इसका भी निषेध पाया था। 'एषाम्' यह कर्म्म में षष्ठी और 'जग्धम्' अधिकरण में क्त प्रत्यय है। (इदमेकमिष्यते) इस से निषेध का निषेध किया है ॥

३. पूर्व वार्त्तिक से सामान्य अर्थ में 'वह' धातु के अणि कर्त्ता की कर्म संज्ञा का प्रतिषेध है, इस वार्त्तिक से उसी का नियम करते हैं कि वह निषेध नियन्ता जहां कर्त्ता हो वहां न लगे ॥

जैसे—वहन्ति बलीवर्दा यवान्, वाहयति बलीवर्दान् यवान्[1]। यहां कर्म संज्ञा होके द्वितीया विभक्ति हो जाती है ॥ ३४ ॥

६६३—वा०—भक्षेरहिंसार्थस्य[2] ॥ ३५ ॥ अ० १।४।५२ ॥

यहां भी पूर्व वार्त्तिक से 'प्रतिषेधः' इस पद की अनुवृत्ति चली आती है। जो हिंसार्थ से भिन्न अर्थ में वर्त्तमान भक्ष धातु, उस का अणि में जो कर्त्ता, उसकी णिच् में कर्म संज्ञा न हो।

जैसे—भक्षयति पिण्डीं देवदत्तः, भक्षयति पिण्डीं देवदत्तेन।

इस वार्त्तिक में 'हिंसार्थ का निषेध' इसलिये है कि—भक्षयति बलीवर्दान् यवान्—खेत के छोटे २ जौ बैलों से चराये। यहां खेतवाले की हिंसा समझी जाती है। क्योंकि खेत ही से उसका जीवन है। इससे कर्म संज्ञा का निषेध नहीं हुआ ॥ ३५ ॥

६६४—वा०—अकर्मकग्रहणे कालकर्मणामुपसंख्यानम्[3] ॥ ३६ ॥ अ० १।४।५२ ॥

जो अकर्मक धातुओं का सूत्र में ग्रहण है, वहां कालकर्मवाले धातुओं का भी ग्रहण समझना चाहिये।

जैसे—मासमास्ते देवदत्तः, मासमासयति देवदत्तम्। यहां मास प्रथम कर्म है, अणि के कर्त्ता देवदत्त की कर्म संज्ञा होके द्वितीया विभक्ति हो गई है ॥ ३६ ॥

६६५—हृक्रोरन्यतरस्याम् ॥ ३७ ॥ अ० १।४।५३ ॥

हृ और कृ धातु का जो अण्यन्तावस्था का कर्त्ता है, वह ण्यन्तावस्था में विकल्प करके कर्मसंज्ञक हो।

जैसे—अभ्यवहारयति सैन्धवान्सैन्धवैर्वा। विकारयति सैन्धवान् सैन्धवैर्वा[4] ॥ ३७ ॥

---

१. यहां प्रेरक हांकनेवाले की विवक्षा नहीं है, इसलिये वाहन क्रिया के स्वतन्त्र कर्त्ता बैल हो गये ॥

२. यह वार्त्तिक सूत्र से ही संबन्ध रखता है। भक्ष धातु के प्रत्यवसानार्थ होने से सामान्य अर्थों में भक्ष धातु के अणिकर्त्ता की कर्म संज्ञा प्राप्त है। सो जहां हिंसा अर्थात् पीड़ा पहुंचाना अर्थ हो, वहीं अणिकर्त्ता की कर्म संज्ञा हो, और अहिंसा में निषेध हो जावे ॥

३. कालकर्मवाले धातु अकर्मकों के समान समझे जाते हैं, इसलिये अकर्मकों के साथ इन का उपसंख्यान किया है ॥

४. धातुओं के अनेकार्थ होने से कई अर्थों में कर्मसंज्ञा प्राप्त है, और कई में नहीं। जैसे—अभ्यव और आङ्पूर्वक हृ धातु प्रत्यवसानार्थक है, वहां प्राप्त है, अन्यत्र नहीं। तथा विपूर्वक कृधातु शब्दकर्मक और कहीं अकर्मक है, वहां प्राप्त, अन्यत्र अप्राप्त। इस प्रकार यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है ॥

६६६–वा०–ह्रक्रोर्वावचनेऽभिवादिदृशोरात्मनेपद उपसंख्यानम् ॥ ३८ ॥ अ० १ । ४ । ५३ ॥

जो अभिपूर्वक वद और दृश धातु का अणि में कर्त्ता है, वह णयन्तावस्था में कर्मसंज्ञक विकल्प करके हो, आत्मनेपद में ।

जैसे—अभिवदति गुरुं देवदत्तः, अभिवादयते गुरुं देवदत्तेन देवदत्तं वा । पश्यन्ति भृत्या राजानम्, दर्शयते भृत्यै राजा दर्शयते भृत्यान् राजा वा । यहां अभिपूर्वक वद धातु शब्दकर्मक और दृश धातु बुद्ध्यर्थक है, वहां तो पूर्व सूत्र से कर्मसंज्ञा प्राप्त थी, अन्य अर्थ में नहीं । इस वार्त्तिक से सर्वत्र विकल्प करके हो जाती है, इसी से यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा कहाती है ॥ ३८ ॥

यह कर्मकारक पूरा हुआ ॥

---

(३) करणकारक

६६७–साधकतमं करणम् ॥ ३९ ॥ अ० १ । ४ । ४२ ॥

जो क्रिया की सिद्धि करने में मुख्य साधक हो, वह कारक करणसंज्ञक हो ॥ ३९ ॥

इसका फल—

६६८–कर्तृकरणयोस्तृतीया ॥ ४० ॥ अ० २ । ३ । १८ ॥

अनभिहित कर्त्ता और करण कारक में तृतीया विभक्ति हो ।

कर्त्ता—जैसे—देवदत्तेन कृतम्; देवदत्तेन क्रियते—देवदत्त ने किया, यहां देवदत्त कर्त्ता । और—दात्रेण यवान् लुनाति; परशुना काष्ठं वृश्चति[1], इत्यादि—दरांति से जवों को काटता और कुल्हाड़े से लकड़ी को छीलता है, यहां दरांति और कुल्हाड़ा करण हैं ॥ ४० ॥

६६९–वा०–तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्[2] ॥ ४१ ॥ अ० २ । ३ । १८ ॥

प्रकृति आदि शब्दों से भी तृतीया विभक्ति हो ।

---

१. यहां 'लुनाति' खेत का लुनना और 'वृश्चति' वृक्ष का काटना, इन क्रियाओं के मुख्य साधन दात्र और कुल्हाड़ी हैं, इन के विना उक्त क्रिया कदाचित् नहीं हो सकती ॥

२. यहां से लेके तृतीया विभक्ति विधायक प्रकरण में जो कुछ सूत्र वार्तिक हैं, वे अपूर्व विधायक इसलिये समझे जाते हैं कि उन में तृतीया किसी से प्राप्त नहीं है ॥

प्रकृत्या दर्शनीयः—यह स्वभाव से देखने योग्य है। प्रायेण वैयाकरणः—यह कुछेक व्याकरण भी पढ़ा है, इत्यादि। यहां अनभिहित कर्त्ता करण कारकों के न होने से तृतीया विभक्ति नहीं प्राप्त थी, सो इस वार्त्तिक से विधान की है। प्रकृति आदि शब्द बहुत हैं, सो अष्टाध्यायी महाभाष्य के पढ़ने से आवेंगे॥ ४१॥

६७०-सहयुक्तेऽप्रधाने॥ ४२॥ अ० २। ३। १९॥

सह शब्द युक्त अप्रधान कर्त्ता कारक में तृतीया विभक्ति होती है।

जैसे—पुत्रेण सहागतः पिता—पुत्र सहित पिता आया, इत्यादि। यहां पुत्र अप्रधान है, उस में तृतीया विभक्ति हो गई, प्रधान पिता में न हुई॥ ४२॥

६७१-येनाङ्गविकारः॥ ४३॥ अ० २। ३। २०॥

जिस अङ्ग अवयव से शरीर का विकार प्रसिद्ध हो, उस अवयव में तृतीया विभक्ति हो।

जैसे—शिरसा खल्वाटः। अक्ष्णा काणः—यह शिर से खल्वाट और आंख से काणा है, इत्यादि॥ ४३॥

६७२-इत्थंभूतलक्षणे॥ ४४॥ अ० २। ३। २१॥

इत्थंभूत अर्थात् इस प्रकार का वह है, इस अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से तृतीया विभक्ति होवे।

जैसे—अपि भवान् मेखलया ब्रह्मचारिणमद्राक्षीत्। धर्मेण सुखम्। पापेन दुःखम्, इत्यादि। यहां मेखला शब्द से ब्रह्मचारी का स्वरूप, धर्म से सुख और पाप से दुःख जाना जाता है।

इत्थंभूत से भिन्न में तृतीया विभक्ति न हो। जैसे—वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्, इत्यादि॥ ४४॥

६७३-संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि[1]॥ ४५॥ अ० २। ३। २२॥

संपूर्वक ज्ञा धातु के अनभिहित कर्म में तृतीया विभक्ति विकल्प करके होवे, पक्ष में द्वितीया हो।

मात्रा संजानीते बालः। मातरं संजानीते बालः॥ ४५॥

६७४-हेतौ॥ ४६॥ अ० २। ३। २३॥

हेतुवाची शब्द में तृतीया विभक्ति हो।

---

१. यहां अनभिहित कर्म में द्वितीया ही प्राप्त है तृतीया नहीं, इस कारण यह अप्राप्त विभाषा है। और उसी द्वितीया का अपवाद यह तृतीया समझी जाती है, पक्ष में द्वितीया भी होती है॥

विद्यया यशः[1]—विद्या से कीर्त्ति होती। और—धनेन दानम्—धन से दान होता है, इत्यादि ॥ ४६ ॥

६७५–वा०–निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां प्रायदर्शनम् ॥ ४७ ॥ अ० २। ३। २३ ॥

निमित्त, कारण और हेतु इन तीन शब्दों और इन के सम्बन्धी शब्दों से सब विभक्ति बहुल करके होती हैं।

जैसे—निमित्त—किं निमित्तं वसति, पठति, गच्छति, आयाति, करोति, तिष्ठति, इत्यादि। केन निमित्तेन; कस्मै निमित्ताय; कस्मान्निमित्तात्; कस्य निमित्तस्य; कस्मिन्नि मित्ते च। कारण—किङ्कारणम्; केन कारणेन; कस्मै कारणाय; कस्मात् करणात्; कस्य कारणस्य; कस्मिन् कारणे च वसति। हेतु—को हेतुः; कं हेतुम्; केन हेतुना; कस्मै हेतवे; कस्माद्धेतोः; कस्य हेतोः; कस्मिन् हेतौ च वसतीत्यादि[2] ॥ ४७ ॥

६७६–अकर्त्तर्यृणे पञ्चमी ॥ ४८ ॥ अ० २। ३। २४ ॥

ऋण अर्थ में कर्त्ताभिन्न हेतुवाची शब्दों से पञ्चमी विभक्ति हो।

जैसे—शताद् बद्धः, इत्यादि—ऋणी को सौ रुपये ऋण होने के कारण ऋण-वाले ने बांधा।

यहां 'अकर्त्तरि' ग्रहण इसलिये है कि—शतेन बन्धितः, यहां सौ रुपयों से बंधवाया। इस प्रयोजक कर्त्ता की विवक्षा होने से पञ्चमी विभक्ति न हुई ॥ ४८ ॥

६७७–विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् ॥ ४६ ॥ अ० २। ३। २५ ॥

स्त्रीलिङ्ग को छोड़ के पुल्लिङ्ग वा नपुंसक लिङ्ग में वर्तमान जो गुणवाची हेतु शब्द, उससे विकल्प करके पञ्चमी विभक्ति हो।

जैसे—मौढ्याद्बद्धः। मौढ्येन बद्धः, इत्यादि—यह मूर्ख जन अपनी मूर्खता से आप ही बंधा है।

यहां 'स्त्रीलिङ्ग का निषेध' इसलिये किया है कि—प्रज्ञया पूजितः, इत्यादि। यहां पञ्चमी विभक्ति न हो ॥ ४६ ॥

६७८–षष्ठी हेतुप्रयोगे ॥ ५० ॥ अ० २। ३। २६ ॥

हेतु शब्द के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—विद्याया हेतोर्गुरुकुले वसति, इत्यादि—विद्या ग्रहण के हेतु से यह ब्रह्मचारी गुरुकुल में वसता है ॥ ५० ॥

---

१. 'हेतु' उस को कहते हैं कि जिस के साथ जिसका प्रयोग हो उसका निमित्त कारण समझा जावे। यहां भी विद्या यश का निमित्त कारण है ॥

२. निमित्त, कारण और हेतु शब्दों से सब वचन यथायोग्य सब कर्त्ता और क्रिया भी होती है, परन्तु मुख्य प्रयोजन आप्त लोगों के प्रयोग विषय में साधुत्व करने के लिये यह वचन है ॥

६७९—सर्वनाम्नस्तृतीया च ॥ ५१ ॥ अ० २ । ३ । २७ ॥

सर्वनामवाची विशेषण सहित हेतु शब्द के प्रयोग में तृतीया और षष्ठी विभक्ति हों।

जैसे—केन हेतुना कस्य हेतोर्वा वसति, इत्यादि—यह जन किस हेतु से वसता है ॥ ५१ ॥

अब करण संज्ञा में जो विशेष सूत्र हैं, सो लिखते हैं—

६८०—दिवः कर्म च ॥ ५२ ॥ अ० १ । ४ । ४३ ॥

पूर्व सूत्र[1] से नित्य करण संज्ञा प्राप्त थी, उसका बाधक यह सूत्र है।

जो दिवु धातु के प्रयोग में साधकतम अर्थात् क्रिया की सिद्धि में मुख्य हेतु कारक है, वह कर्म्मसंज्ञक और चकार से करणसंज्ञक भी हो।

जैसे—अक्षानक्षैर्वा दीव्यति, इत्यादि[2]—पासों से खेलता है ॥ ५२ ॥

६८१—परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् ॥ ५३ ॥ अ० १ । ४ । ४४ ॥

यहां भी (साधक० ॥ अ० १ । ४ । ४२) इस पूर्व (३६) सूत्र से नित्य करण संज्ञा पाती थी, सो इस सूत्र से करण और पक्ष में संप्रदान संज्ञा की है।

परिक्रयण अर्थात् जो सब प्रकार खरीदने अर्थ में साधकतम कारक है, वह संप्रदानसंज्ञक विकल्प करके हो, और पक्ष में करणसंज्ञक हो।

जैसे—शताय शतेन वा परिक्रीणाति, इत्यादि—सौ रुपयों से खरीदता है ॥ ५३ ॥

यह करणकारक पूरा हुआ ॥

---

(४) सम्प्रदानकारक

६८२—कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ॥ ५४ ॥ अ० १ । ४ । ३२ ॥

अत्यन्त इष्ट पदार्थ समझ के जिसके लिये देने का अभिप्राय किया जाय, वह कारक सम्प्रदानसंज्ञक होवे ॥ ५४ ॥

---

१. पूर्वसूत्र—(साधकतमं करणम् ॥ अ० १ । ४ । ४२) कारकीय—३६ ॥

२. इत्यादि सूत्रों के उदाहरणों में केवल करण संज्ञा होके तृतीया विभक्ति प्राप्त थी, उसके ये सूत्र अपवाद हैं। बहुव्यापक उत्सर्ग और अल्पव्यापक अपवादसंज्ञक, उत्सर्ग सूत्रों ही के विषय में अपवाद सूत्र प्रवृत्त होते, और अपवाद सूत्रों के विषय में उत्सर्ग सूत्र प्रवृत्त नहीं होते, किन्तु अपवाद विषयों को छोड़ के उत्सर्ग सूत्रों की प्रवृत्ति होती है, ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये ॥

इसका फल—

६८३–चतुर्थी संप्रदाने ॥ ५५ ॥ अ० २ । ३ । १३ ॥

संप्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति हो।

जैसे—शिष्याय विद्यां ददाति[1], इत्यादि—आचार्य शिष्य को विद्या देता है ॥ ५५ ॥

६८४–वा०–चतुर्थीविधाने तादर्थ्ये उपसंख्यानम्[2] ॥ ५६ ॥ अ० २ । ३ । १३ ॥

तादर्थ्य अर्थात् जिस कार्य के लिए कारणवाची शब्द का प्रयोग किया हो, उस कार्य्यवाची शब्द से चतुर्थी विभक्ति होवे।

जैसे— यूपाय दारु। कुण्डलाय हिरण्यम्, इत्यादि—यह खंभा के लिये काष्ठ, और कुंडल के लिये सोना है ॥ ५६ ॥

६८५–वा०–क्लृपि संपद्यमाने ॥ ५७ ॥ अ० २ । ३ । १३ ॥

जो क्लृप धातु का उत्पन्न होनेवाला कारक है, उसमें चतुर्थी विभक्ति हो।

जैसे—मूत्राय कल्पते यवागू। विद्यायै कल्पते बुद्धिमान्, इत्यादि—मूत्र के उत्पन्न करने में यवागू और विद्या पढ़ने के लिये बुद्धिमान् समर्थ होता है ॥ ५७ ॥

६८६–वा०–उत्पातेन ज्ञाप्यमाने ॥ ५८ ॥ अ० २ । ३ । १३ ॥

आकाश से बिजली के चमकने और ओले पत्थर आदि गिरने को 'उत्पात' कहते हैं। उस उत्पात से जो बात जानी जावे, वहां चतुर्थी विभक्ति होवे।

जैसे— वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी। कृष्णा सर्वविनाशाय दुर्भिक्षाय सिता भवेत्—पीली बिजली जो चमके तो वायु अधिक चले, इत्यादि ॥ ५८ ॥

६८७–वा०–हितयोगे च ॥ ५९ ॥ अ० २ । ३ । १३ ॥

हित शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति हो।

जैसे—हितमरोचकिने पाचनम्, इत्यादि—जिस की रुचि भोजन पर न हो उसके लिये पाचन औषध हितकारी है ॥ ५९ ॥

६८८–क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः ॥ ६० ॥ अ० २।३।१४ ॥

अनभिहित कर्मकारक में द्वितीया विभक्ति पाती थी, उसका अपवाद यह सूत्र है।

---

१. यहां अत्यन्त इष्ट पदार्थ विद्या है, इसी से उसकी कर्म संज्ञा हो के द्वितीया हुई है। और विद्या जिस शिष्य के लिये देने का अभिप्राय है उसी की संप्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी होती है ॥

२. यहां से आगे चतुर्थी-विधान-प्रकरण में जितने सूत्र वार्त्तिक लिखेंगे, उनमें संप्रदान संज्ञा के न होने से चतर्थी प्राप्त नहीं, क्योंकि यहां कर्म से किसी का अभिप्राय सिद्ध नहीं किया जाता, इसीलिये यह सब प्रकरण है ॥

जहां क्रिया के लिये क्रिया हो, वहां अप्रयुज्यमान धातु के अनभिहित कर्मकारक में चतुर्थी विभक्ति हो।

जैसे—वृकेभ्यो व्रजति (वृकान् हन्तुं व्रजति) इत्यादि—भेड़ियों को मारने जाता है। यहां जो वृकों को मारना क्रिया है, सो हन धातु अप्रयुज्यमान है।

यहां 'कर्म' ग्रहण इसलिये है कि—वृकेभ्यो व्रजत्यश्वेन, अश्व शब्द में चतुर्थी न हो। और 'स्थानि' ग्रहण इसलिये है कि—वृकान् हन्तुं व्रजति, यहां प्रयुज्यमान के होने से चतुर्थी विभक्ति नहीं हुई ॥ ६० ॥

६८९—तुमर्थाच्च भाववचनात् ॥ ६१ ॥ अ० २। ३। १५ ॥

जहां अप्रयुज्यमान क्रियार्थोपपद धातु के कर्म का वाची तुमर्थभाववचन प्रातिपदिक हो, वहां उससे चतुर्थी विभक्ति हो।

जैसे—इष्टये व्रजति[1] (इष्टिं कर्तुं व्रजति), इत्यादि—पौर्णमासी आदि में होम करने को जाता है।

यहां 'तुमर्थ' ग्रहण इसलिये है कि—पाकं करोति, यहां चतुर्थी न हो ॥ ६१ ॥

६९०—नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च ॥ ६२ ॥ अ० २। ३। १६ ॥

नमस्, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट् इन शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होवे।

नमस्ते रुद्र मन्यवे। स्वस्ति शिष्याय। अग्नये स्वाहा। स्वधा पितृभ्यः। अलं मल्लो मल्लाय। वषडिन्द्राय, इत्यादि[2] ॥ ६२ ॥

६९१—वा०—अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणं कर्त्तव्यम्[3] ॥ ६३ ॥ अ० २। ३। १६ ॥

अलं शब्द से सामर्थ्यवाचक का ग्रहण होना चाहिये।

---

१. यहां इष्टि शब्द क्रियार्थोपपद करोति धातु का भाववचन कर्म है, और व्रजन क्रिया इष्टि-संपादन के लिये है, इसी से इसको क्रियार्थोक्रिया कहते हैं ॥
विभक्ति होवे।

२. प्राण के लिये नमः=अन्न। अग्नि में स्वाहा=संस्कृत हवि। पितरों अर्थात् पिता आदि ज्ञानियों से स्वधा अर्थात् अपने योग्य सुशिक्षा। मल्ल को जीतने में मल्ल ही समर्थ। इन्द्र=बिजली की विद्या ग्रहण करने के लिये उत्तम क्रिया अच्छी होती है ॥

३. पूर्व सूत्र में जो 'अलं' शब्द पढ़ा है, उसी का शेष यह वार्तिक है। 'अलं' शब्द के चार अर्थ हैं—भूषण; पर्य्याप्ति अर्थात् सामर्थ्य; समाप्ति और निषेध। इन सब अर्थों में इसके योग में चतुर्थी प्राप्त थी, सो नियम हो गया कि पर्य्याप्ति अर्थ में हो तो और सामर्थ्यवाची शब्दों के योग में भी हो जावे ॥

क्योंकि—अलं कुरुते कन्याम्, यहां भूषण अर्थ में चतुर्थी विभक्ति न हो। और—प्रभुर्मल्लो मल्लाय। प्रभवति मल्लो मल्लाय, यहां अलं के पर्य्यायवाची प्रभु और प्रभवति शब्द के योग में भी चतुर्थी विभक्ति हो जावे ॥ ६३ ॥

६६२—मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु[1] ॥६४॥ अ० २।३।१७॥

इस सूत्र में मन्य निर्देश दिवादि गण के 'मन' धातु का किया है।

जहां मन्य धातु के अप्राणिवाची अनभिहित कर्म में तिरस्कार अर्थ विदित होता हो, तो वहां विकल्प करके चतुर्थी विभक्ति हो, पक्ष में द्वितीया।

त्वां तृणं मन्ये। त्वां तृणाय मन्ये, इत्यादि—मैं तुझ को तृण के तुल्य मानता हूं, यह तिरस्कार है।

यहां दिवादि विकरण के ग्रहण से—त्वां तृणं मन्ये, यहां चतुर्थी नहीं होती। यहां 'मन्य कर्म' ग्रहण इसलिये है कि—त्वां तृणं जानामि, यहां चतुर्थी न हो। 'अनादर' ग्रहण इसलिये है कि—वाचं मन्ये सरस्वतीम्, यहां चतुर्थी न हो। और 'अप्राणि' ग्रहण इसलिये है कि—काकं मन्ये त्वाम्, इत्यादि में चतुर्थी विभक्ति न हो ॥ ६४ ॥

६६३—वा०—अनावादिष्विति वक्तव्यम् ॥६५॥ अ० २ । ३ । १७॥

जो इस सूत्र में अप्राणी का ग्रहण किया है, उसके स्थान में वार्तिकरूप 'अनावादिषु' ऐसा न्यास करना चाहिये। क्योंकि कहीं २ प्राणीवाची मन्य धातु के कर्म्म में भी चतुर्थी होती है।

जैसे—न त्वा श्वानं मन्ये। न त्वा शुने मन्ये, इत्यादि—मैं तुझे कुत्ते के समान भी नहीं मानता ॥ ६५ ॥

सम्प्रदान संज्ञा में कर्म ग्रहण इसलिये है कि—स्नातकाय कन्यां ददाति, इत्यादि—ब्रह्मचर्य्यव्रत से पूर्णविद्या पढ़े हुए सुशील पुरुष को कन्या देता है। यहां कन्या की संप्रदान संज्ञा न हो जावे। 'यं और स' इन दो शब्दों का ग्रहण इसलिये है कि—अप्राप्त की संप्रदान संज्ञा न हो जावे। तथा 'अभि और प्र' ग्रहण इसलिये है कि—सब काल में संप्रदान संज्ञा हो जावे, अर्थात् दिया था, देता है और देगा। अन्यथा अभि प्र न हों तो वर्तमान काल ही में संप्रदान संज्ञा होती, अन्यत्र नहीं ॥

६६४—वा०—कर्मणः करणसंज्ञा वक्तव्या संप्रदानस्य च कर्मसंज्ञा ॥ ६६ ॥ अ० १ । ४ । ३२ ॥

इस वार्तिक से कर्म्म की तो करण और संप्रदान की कर्म संज्ञा होती है।

---

१. यहां मन्य धातु से अनभिहित कर्म में केवल द्वितीया विभक्ति ही पाती है, उसी का बाधक यह सूत्र है। और इसीलिये यह अप्राप्त विभाषा कहाती है ॥

जैसे—पशुना रुद्रं यजते (पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः), इत्यादि—रुद्र अर्थात् मध्य विद्वान् को पशु देता है। यहां पशु तो कर्म है, उसकी करण संज्ञा हो के तृतीया विभक्ति हो गई। रुद्र नाम किसी मध्यम विद्वान् को पशु देता है॥ ६६॥

६६५—रुच्यर्थानां प्रीयमाणः॥ ६७॥ अ० १। ४। ३३॥

जो रुच्यर्थक धातुओं के प्रयोग में तृप्त होनेवाला कारक है, वह संप्रदानसंज्ञक हो।

जैसे—ब्रह्मचारिणे रोचते विद्या, इत्यादि—ब्रह्मचारी अर्थात् नियमपूर्वक विद्या पढ़नेवाला मनुष्य विद्या से प्रसन्न और तृप्त होता है।

यहां 'प्रीयमाण' ग्रहण इसलिये है कि—विद्या शब्द की संप्रदान संज्ञा न हो॥ ६७॥

६६६—श्लाघन्हुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः॥ ६८॥ अ० १। ४। ३४॥

श्लाघ, न्हुङ्, स्था और शप, इन धातुओं के प्रयोग में जिस को जानने की इच्छा की जावे, वह कारक संप्रदानसंज्ञक होवे।

जैसे—पुत्राय श्लाघते। जाराय न्हुते। विद्यायै तिष्ठते। दुष्टाय शपते[1], इत्यादि—यह स्त्री पुत्र की प्रशंसा, व्यभिचारी को दूर करती, विद्या के लिये खड़ी, और दुष्ट को शाप देती है।

यहां 'ज्ञीप्स्यमान' ग्रहण इसलिये है कि—जिस को जनावे उसी की संप्रदान संज्ञा होवे, धर्म की न हो जाय। जैसे—पिता पुत्राय धर्मं श्लाघते, इत्यादि॥ ६८॥

६६७—धारेरुत्तमर्णः॥ ६६॥ अ० १। ४। ३५॥

जो किसी को ऋण देवे वह 'उत्तमर्ण' कहाता है। जो णयन्त धृ धातु के प्रयोग में उत्तमर्ण कारक है, वह संप्रदानसंज्ञक हो।

जैसे—देवदत्ताय शतं सहस्रं वा धारयति, इत्यादि—देवदत्त के सौ वा हजार रुपैये ऋण यज्ञदत्त धराता है। यहां देवदत्त ऋण का देनेवाला होने से उत्तमर्ण और यज्ञदत्त लेनेवाला होने से अधमर्ण कहाता है। यहां शेष कारक के होने से षष्ठी विभक्ति पाती थी, उस का अपवाद संप्रदान संज्ञा हो के चतुर्थी विभक्ति हो जाती है।

'उत्तमर्ण' ग्रहण इसलिये है कि उस सौ वा हजार की संप्रदान संज्ञा न हो जाय॥ ६६॥

६६८—स्पृहेरीप्सितः॥ ७०॥ अ० १। ४। ३६॥

जो स्पृह धातु के प्रयोग में ईप्सित अर्थात् जिस पदार्थ के ग्रहण की इच्छा होती है, वह संप्रदानसंज्ञक हो।

---

१. यहां दुष्ट को पुकारना है, वह उसी को जनाया जाता है, इसलिये वह संप्रदान है॥

जैसे—धनाय स्पृहयति, इत्यादि—भोगी मनुष्य धन मिलने की इच्छा करता है। यहां धन उस को इष्ट है, इस से धन की संप्रदान संज्ञा हो के चतुर्थी विभक्ति हो गई।

'ईप्सित' ग्रहण इसलिये है कि—भोग के कर्त्ता की संप्रदान संज्ञा न हो जाय ॥ ७० ॥

६९९—क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः[1] ॥ ७१ ॥ अ० १।४।३७ ॥

क्रुध, द्रुह, ईर्ष्य, असूय इन के तुल्यार्थ धातुओं के प्रयोग में जिस के प्रति कोप किया जाय, वह कारक संप्रदानसंज्ञक हो।

जैसे—क्रुध—दुष्टाय क्रुध्यति। द्रुह—शत्रवे द्रुह्यति। ईर्ष्य—सपत्न्या ईर्ष्यति। असूय—विदुषेऽसूयति—राजा दुष्ट पर क्रोध, शत्रु से द्रोह, स्वपति की दूसरी स्त्री से अप्रीति, और मूर्ख जन विद्वान् की निन्दा करता है।

यहां 'जिस के प्रति कोप हो' इसका ग्रहण इसलिये है कि—भिक्षुको भिक्षुकमीर्ष्यति, इत्यादि में सम्प्रदान संज्ञा न हो ॥ ७१ ॥

७००—क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म ॥ ७२ ॥ अ० १। ४। ३८ ॥

पूर्व से सम्प्रदान संज्ञा प्राप्त थी, उसका बाधक यह सूत्र है।

उपसर्गयुक्त क्रुध और द्रुह धातु के प्रयोग में जिस के प्रति कोप हो, वह कारक कर्मसंज्ञक हो।

जैसे—दुष्टमभिक्रुध्यत्यभिद्रुह्यति वा, इत्यादि।

यहां—'उपसर्गयुक्त' का ग्रहण इसलिये है कि—दुष्टाय क्रुध्यति द्रुह्यति वा, इत्यादि में कर्म संज्ञा न हो जाय ॥ ७२ ॥

७०१—राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः ॥ ७३ ॥ अ० १। ४। ३९ ॥

राध और ईक्ष धातु के प्रयोग में जिस का विविध प्रकार का प्रश्न हो, वह कारक संप्रदानसंज्ञक हो।

जैसे—शिष्याय विद्यां राध्नोति ईक्षते वा गुरुः, इत्यादि—आचार्य विद्यार्थी के लिये विद्या को सिद्ध और प्रत्यक्ष कराता है।

यहां 'राध और ईक्ष' धातु का ग्रहण इसलिये है कि—इनके योग से अन्यत्र संप्रदान संज्ञा न हो। 'यस्य' ग्रहण इसलिये है कि—विप्रश्न की संप्रदान संज्ञा न हो जावे ॥ ७३ ॥

७०२—प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता ॥ ७४ ॥ अ० १। ४। ४० ॥

जो प्रति और आङ्पूर्वक श्रु धातु के प्रयोग में पूर्व का कर्त्ता कारक हो, वह संप्रदानसंज्ञक होवे।

1. यह सूत्र कर्मसंज्ञा का अपवाद है ॥

जैसे—पूर्वं देवदत्तो विद्यां याचते। देवदत्ताय विद्यां प्रतिश्रृणोत्याश्रृणोति वा विद्वान्, इत्यादि—प्रथम देवदत्त विद्या को चाहता है, उसको विद्वान् सुनाता है।

'पूर्वस्य' ग्रहण इसलिये है कि—विद्वान् की संप्रदान संज्ञा न हो जावे। यहां 'प्रति और आङ्' का ग्रहण इसलिये है कि—ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा और आरम्भ से अन्त तक पढ़ना और पढ़ाना चाहिये॥ ७४॥

७०३—अनुप्रतिगृणश्च॥ ७५॥ अ० १। ४। ४१॥

जो अनु और प्रतिपूर्वक गृ धातु के प्रयोग में पूर्व का कर्त्ता कारक हो, तो वह संप्रदानसंज्ञक हो।

जैसे—शान्ताय विद्यामनुगृणाति प्रतिगृणाति वा, इत्यादि—शान्तिमान् विद्यार्थी के लिये विद्या का उपदेश करता है।

इस सूत्र में चकार पूर्व के कर्त्ता की अनुवृत्ति के लिये है॥ ७५॥

यह संप्रदानकारक पूरा हुआ॥

---

(५) अपादानकारक

७०४—ध्रुवमपायेऽपादानम्॥ ७६॥ अ० १। ४। २४॥

'ध्रुव' उस को कहते हैं कि जो पदार्थों के पृथक् होने में निश्चल रहे। वह कारक अपादानसंज्ञक हो॥ ७६॥

इस का फल—

७०५—अपादाने पञ्चमी॥ ७७॥ अ० २। ३। २८॥

अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति हो।

जैसे—ग्रामादागच्छति। वृक्षात्पर्णं पतति, इत्यादि—ग्राम से मनुष्य आता है। वृक्ष से पत्ते गिरते हैं। यहां ग्राम और वृक्ष निश्चल हैं, उनमें पञ्चमी होजाती है।

(प्रश्न) जहां वियोग के बीच में दोनों चलायमान हों वहां किसकी अपादान संज्ञा समझनी चाहिये। जैसे—रथात्प्रवीतात्पतितः। धावतस्त्रस्ताद्वाऽश्वात्पतितः—भागते हुए रथ से गिरा; भागते वा डरते हुए घोड़े से गिरा। यहां रथ और घोड़े की अपादान संज्ञा नहीं होनी चाहिये, क्योंकि वे तो चलायमान हैं, और गिरा हुआ मनुष्य निश्चल होता है।

(उत्तर) जिस रथ वा घोड़े के स्थल पीठ से गिरता है वह निश्चल है, उसकी अपादान संज्ञा की है॥ ७७॥

७०६–वा०–पञ्चमीविधाने ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम् ॥ ७८ ॥ अ० २ । ३ । २८ ॥

जहां ल्यबन्त क्रिया का लोप हो, वहां उस के कर्म में पञ्चमी विभक्ति हो ।

जैसे—प्रासादात्प्रेक्षते[1] (प्रासादमारुह्य प्रेक्षते), यहां ल्यबन्त आरुह्य क्रिया का लोप हुआ है, उस के प्रासाद कर्म में पञ्चमी विभक्ति होती है ॥ ७८ ॥

७०७–वा०–अधिकरणे च ॥ ७९ ॥ अ० २ । ३ । २८ ॥

जो ल्यबन्त क्रिया का लोप हो, तो उसके अधिकरण में पञ्चमी विभक्ति हो ।

जैसे—आसनात्प्रेक्षते, (आसन उपविश्य प्रेक्षते)। शयनात्प्रेक्षते, इत्यादि—आसन और शय्या पर बैठके देखता है । यहां शयन और आसन उपविश्य क्रिया के अधिकरण हैं। उन में सप्तमी की प्राप्ति होने से उसी का यह अपवाद है ॥ ७९ ॥

७०८–वा०–प्रश्नाख्यानयोश्च[2] ॥ ८० ॥ अ० २ । ३ । २८ ॥

प्रश्न और आख्यानवाची शब्द से पञ्चमी विभक्ति हो ।

जैसे—कुतो भवान् । पाटलिपुत्राद्वसति, यहां कुतः शब्द में प्रश्नवाची के होने से और पाटलिपुत्र शब्द में आख्यान के होने से पञ्चमी विभक्ति हुई है ॥ ८० ॥

७०९–वा०–यतश्चाध्वकालनिर्माणम् ॥ ८१ ॥ अ० २ । ३ । २८ ॥

जहां से मार्ग और काल का परिमाण किया जाय, वहां पञ्चमी विभक्ति हो ।

मार्गनिर्माण—जैसे—गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि—गवीधुमान् नगर से सांकाश्य नगर चार योजन सोलह कोश दूर है । यहां गवीधुमान् से मार्ग का परिमाण होने से वहां पंचमी विभक्ति हो गई । कालनिर्माण - कार्त्तिक्या आग्रहायणी-मासे । यहां कार्त्तिकी शब्द में पंचमी विभक्ति हो गई ॥ ८१ ॥

७१०–वा०–तद्युक्तात्काले सप्तमी ॥ ८२ ॥ अ० २ । ३ । २८ ॥

जो काल के निर्माण में पंचमी विभक्ति की है, उस से उत्तर कालवाची शब्द से सप्तमी विभक्ति हो ।

जैसे—कार्त्तिक्या आग्रहायणीमासे । यहां मास शब्द में सप्तमी हुई है ॥ ८२ ॥

७११–वा०–अध्वनः प्रथमा च ॥ ८३ ॥ अ० २ । ३ । २८ ॥

---

१. यहां अपादान संज्ञा के न होने से पञ्चमी किसी सूत्र से प्राप्त नहीं थी, किन्तु कर्म में द्वितीया प्राप्त थी, उसका यह अपवाद है ॥

२. यहां से ले के आगे इस पञ्चमी विधान प्रकरण में जितने सूत्र वार्त्तिक लिखे हैं, वे सब अपूर्वविधायक समझने चाहियें, क्योंकि वहां किसी से कोई विभक्ति का विधान नहीं किया है ॥

मार्ग के निर्माण में जो पञ्चमी विभक्ति की है, उस से उत्तर मार्गवाची शब्द से प्रथमा और सप्तमी दोनों विभक्ति हों।

जैसे—गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि। गवीधुमतः सांकाश्यं चतुर्षु योजनेषु। यहां मार्गवाची योजन शब्द से प्रथमा और सप्तमी विभक्ति हुई हैं॥ ८३॥

७१२-अन्यारादितरर्त्तेदिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ॥ ८४॥ अ० २। ३। २९॥

अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिशावाची शब्द, अञ्चूत्तरपद, आच् और आहि प्रत्ययान्त अव्यय, इन शब्दों के योग में पंचमी विभक्ति होवे।

जैसे—अन्य—अन्यो देवदत्ताद्यज्ञदत्तः। आरात्—आराच्छूद्राद्रजकः। इतर—स्वस्मादितरं न गृह्णीयात्। ऋते—ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। दिग्वाचीशब्द—पूर्वो ग्रामात्कूपः। अञ्चूत्तरपद—प्राग्ग्रामात् तडागम्। आच्—दक्षिणा कूपाद् वृक्षः। आहि—दक्षिणाहि ग्रामान्नदी, इत्यादि।

यहां 'दिक्' शब्द के ग्रहण से अञ्चूत्तरपद के उदाहरण भी सिद्ध हो जाते, फिर 'अञ्चूत्तरपद' ग्रहण इसलिये है कि आगे के सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त है, उस को वाध कर पंचमी ही हो जावे॥ ८४॥

७१३-षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन॥ ८५॥ अ० २। ३। ३०॥

अतसुच्प्रत्ययान्त शब्दों के अर्थों में वर्त्तमान जो अव्यय शब्द है, उस के योग में षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—दक्षिणतो ग्रामस्य वाटिका। उपरि ग्रामस्य गोशाला, इत्यादि। यहां ग्राम शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई है॥ ८५॥

७१४-एनपा द्वितीया॥ ८६॥ अ० २। ३। ३१॥

अतसर्थ प्रत्ययों में एनप् प्रत्यय के योग में पूर्व सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी, उस का अपवाद यह सूत्र है।

एनप्प्रत्ययान्त अव्यय के योग में द्वितीया हो।

जैसे—दक्षिणेन ग्रामं मुंजाः, इत्यादि—ग्राम से दाहिनी ओर मूंज का वन है॥ ८६॥

७१५-पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥ ८७॥ अ० २। ३। ३२॥

पृथक्, विना, नाना, इन तीन अव्यय शब्दों के योग में विकल्प करके तृतीया विभक्ति हो, पक्ष में पंचमी।

जैसे—पृथक् स्थानेन। पृथक् स्थानात्। विना घृतेन। विना घृतात्। नाना पदार्थेन। नाना पदार्थात्।

यहां जो 'सिद्धान्तकौमुदी' में द्वितीया विभक्ति की अनुवृत्ति कर के उदाहरण दिये हैं, वे इसी सूत्र के महाभाष्य से विरुद्ध होने से अशुद्ध हैं ॥ ८७ ॥

७१६–करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्ववचनस्य ॥ ८८ ॥ अ० २ । ३ । ३३ ॥

करण कारक में वर्त्तमान जो अद्रव्यवाची स्तोक, अल्प, कृच्छ्र और कतिपय शब्द, उन से तृतीया और पंचमी विभक्ति हों।

जैसे—स्तोकेन स्तोकाद्वा मुक्तः। अल्पेनाल्पाद्वा मुक्तः। कृच्छ्रेण कृच्छ्राद्वा मुक्तः। कतिपयेन कतिपयाद्वा मुक्तः, इत्यादि—थोड़े किंचित् कष्ट और कुछ दिनों में छूट गया।

यहां 'असत्व वचन' का ग्रहण इसलिये है कि—अल्पेन जलेन तृप्तः—थोड़े जल तृप्त हुआ, इत्यादि में पंचमी विभक्ति न हो। यहां 'करण' ग्रहण इसलिये है कि—अल्पं त्यजति—थोड़े को छोड़ता है, इत्यादि में तृतीया पंचमी विभक्ति न हों ॥ ८८ ॥

७१७–दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ॥ ८९ ॥ अ० २ । ३ । ३४ ॥

दूर और समीपवाची और इन के पर्यायवाची शब्दों के योग में विकल्प कर के षष्ठी, और पक्ष में पञ्चमी हों।

जैसे—दूरं विप्रकृष्टं वा ग्रामस्य, दूरं विप्रकृष्टं वा ग्रामाद् वनम्। अन्तिकं समीपं वा ग्रामस्य, ग्रामाद्वाऽऽरामाः, इत्यादि ग्राम के दूर जंगल और समीप बाग हैं।

यहां 'विकल्प की अनुवृत्ति' इसलिये है कि पक्ष में पंचमी विभक्ति होजावे ॥ ८९ ॥

७१८–दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च ॥ ९० ॥ अ० २ । ३ । ३५ ॥

दूर और समीपवाची तथा इन के पर्याय शब्दों से द्वितीया विभक्ति हो, चकार से विकल्प करके षष्ठी और पक्ष में पंचमी भी हो।

दूरं दूरस्य दूराद्वा ग्रामस्य। विप्रकृष्टं विप्रकृष्टस्य विप्रकृष्टाद्वा ग्रामस्य पर्वताः। अन्तिकमन्तिकस्यान्तिकाद्वा ग्रामस्य शिरीषाः। समीपं समीपस्य समीपाद्वा ग्रामस्य वाटिका, इत्यादि ॥ ९० ॥

अब अपादान संज्ञा में जो विशेष सूत्र हैं, उन्हें लिखते हैं—

७१९–भीत्रार्थानां भयहेतुः ॥ ९१ ॥ अ० १ । ४ । २५ ॥

जो भयार्थ और रक्षार्थ धातुओं के प्रयोग में भय का हेतु कारक है, उस की अपादान संज्ञा हो।

जैसे—वृकेभ्यो बिभेति। वृकेभ्य उद्विजते। चोरेभ्यस्त्रायते। चोरेभ्यो रक्षति[1], इत्यादि—भेड़ियों से डरता और चोरों से रक्षा करता है।

१. यहां वृक और चोर भय के हेतु हैं, इस कारण उनकी अपादान संज्ञा होकर पंचमी विभक्ति होती है ॥

यहां 'भय हेतु' का ग्रहण इसलिये है कि—गृहे बिभेति। गृहे त्रायते, इत्यादि में पंचमी विभक्ति न हो ॥ ९१ ॥

७२०—पराजेरसोढः ॥ ९२ ॥ अ० १ । ४ । २६ ॥

पराPूर्वक जि धातु के प्रयोग में असोढ अर्थात् जिसको न सह सके, वह कारक अपादानसंज्ञक हो।

जैसे—अध्ययनात् पराजयते। बलवतो धर्म्मात्मनो निर्बलोऽधर्मी पराजयते, इत्यादि।

यहां 'असोढ' ग्रहण इसलिये है कि—शत्रून् पराजयते, इत्यादि में अपादान संज्ञा होकर पंचमी न हो ॥ ९२ ॥

७२१—वारणार्थानामीप्सितः ॥ ९३ ॥ अ० १ । ४ । २७ ॥

'वारण' उसको कहते हैं कि कुछ काम करते हुए को वहां से हटा देना। वारणार्थक धातुओं के प्रयोग में जो अत्यन्त इष्ट कारक है उसकी अपादान संज्ञा हो।

जैसे—सस्येभ्यो गां वारयति निवर्त्तयति निषेधति वा, इत्यादि—धान्य के खेतों से गौओं को हटाता है। इस कारण खेत अत्यन्त इष्ट हुए।

यहां 'ईप्सित' ग्रहण इसलिये है कि—गोष्ठे गां वारयति, इत्यादि में अपादान संज्ञा न हो ॥ ९३ ॥

७२२—अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति ॥ ९४ ॥ अ० १ । ४ । २८ ॥

अन्तर्द्धि अर्थात् छिप जाने अर्थ में, जिस से ऐसी इच्छा करे कि मुझको वह न देखै, वह कारक अपादानसंज्ञक हो।

जैसे—उपाध्यायाद् बालोऽन्तर्द्धत्ते, इत्यादि—पढ़नेहारे से लड़का छिपता है।

यहां 'अन्तर्द्धि' ग्रहण इसलिये है कि—दुष्टान्न दिदृक्षते, इत्यादि में अपादान संज्ञा न हो। 'इच्छति' ग्रहण इसलिये है कि देखने की इच्छा न हो और सामने से दिखाता हो तो भी अपादान संज्ञा न हो ॥ ९४ ॥

७२३—आख्यातोपयोगे ॥ ९५ ॥ अ० १ । ४ । २९ ॥

जो उपयोग अर्थात् नियमपूर्वक पढ़ने में पढ़ानेवाला कारक है, उस की अपादान संज्ञा हो।

जैसे—उपाध्यायादधीते, इत्यादि—वेतन लेनेवाले से पढ़ता है।

यहां 'उपयोग' ग्रहण इसलिये है कि—नटस्य वचः शृणोति, इत्यादि में नियमपूर्वक विधान के न होने से अपादान कारक संज्ञा न हो ॥ ९५ ॥

७२४—जनिकर्त्तुः प्रकृतिः ॥ ९६ ॥ अ० १ । ४ । ३० ॥

जन धातु का जो कर्त्ता उसकी प्रकृति अर्थात् जो कारण है, वह अपादानसंज्ञक हो।

जैसे—अग्नेर्वै धूमो जायते[1]। अव्यक्तात्कारणाद्व्यक्तं कार्यं जायते—अग्नि से धुंआ, और सूक्ष्म अदृश्य नित्यस्वरूप कारण से स्थूल, दृश्य, अनित्य रूप कार्य उत्पन्न होता है।

यहां 'प्रकृति' ग्रहण इसलिये है कि—पुत्रो मे गौरो जायेत, इत्यादि में कारण की अपेक्षा न होने से अपादान संज्ञा नहीं होती ॥ ९६ ॥

७२५–भुवः प्रभवः ॥ ९७ ॥ अ० १ । ४ । ३१ ॥

'प्रभव' उस को कहते हैं कि जहां से कोई पदार्थ उत्पन्न हुआ हो। जो भू धातु के कर्त्ता का प्रभव कारक है, वह अपादानसंज्ञक हो।

हिमवतो गङ्गा प्रभवति—हिमवान् पर्वत से गङ्गा उत्पन्न होती है। इसलिये हिमवान् शब्द की अपादान संज्ञा हो के पंचमी विभक्ति हुई है ॥ ९७ ॥

यह अपादानकारक पूरा हुआ ॥

---

(६) शेषकारक

अब इस के आगे षष्ठी कारक लिखेंगे, इस में संज्ञाप्रकरण नहीं है—

७२६–षष्ठी शेषे ॥ ९८ ॥ अ० २ । ३ । ५० ॥

भा०—कर्म्मादीनामविवक्षा शेषः—जहां कर्म्म आदि कारक संज्ञा की विवक्षा न हो वह 'शेष' कहलाता है, उसमें षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—राज्ञः पुरुषः। वृक्षस्य शाखाः। मृत्तिकाया घटः, इत्यादि ॥ ९८ ॥

७२७–ज्ञोऽविदर्थस्य करणे ॥ ९९ ॥ अ० २ । ३ । ५१ ॥

जो अविदर्थ अर्थात् अज्ञानार्थ ज्ञा धातु, उसके करण कारक में षष्ठी विभक्ति होवे।

जैसे—अग्निः सर्पिषो जानीते, मधुनो जानीते[2]—अग्नि घी और शहद से प्रज्वलित होता है।

यहां 'अविदर्थ' ग्रहण इसलिये है कि—गौः स्वरेण वत्सं जानाति, इत्यादि में षष्ठी न हो ॥ ९९ ॥

---

१. यहां जन धातु का कर्त्ता धूम है, उसकी प्रकृति=कारण अग्नि है, इससे उस की अपादान संज्ञा होकर पंचमी होती है ॥

२. यहां सर्पिः=घी और मधु=शहद ज्ञा धातु के प्रयोग में साधकतम होने से करण हैं, वहां तृतीया विभक्ति प्राप्त थी, उसका अपवाद यह षष्ठी का विधान किया है। परन्तु अर्थ तृतीया का ही बना रहता है। जैसे—घी और मधु से अग्नि बढ़ता है ॥

७२८–अधीगर्थदयेशां कर्मणि ॥ १०० ॥ अ० २ । ३ । ५२ ॥

जो अधिपूर्वक स्मरण अर्थवाला इक, इस के अर्थ के अन्य धातु, दय और ईश हैं, इन के अनभिहित कर्म में षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—अधीगर्थ—मातुरध्येति बालः। पितुः स्मरति बालः। दय—दुःखितस्य दयते। ईश—ग्रामस्येष्टे। यहां सर्वत्र द्वितीया प्राप्त थी, उसकी बाधक षष्ठी है।

और 'कर्म' ग्रहण इसलिये है कि—मातृगुणैः स्मरति बालः, यहां करणवाची गुण शब्द के होने से षष्ठी विभक्ति नहीं हुई ॥ १०० ॥

७२९–कृञः प्रतियत्ने ॥ १०१ ॥ अ० २ । ३ । ५३ ॥

जो प्रतियत्न अर्थ में वर्तमान कृञ् धातु हो, तो उसके शेष कर्म में षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—एधोदकस्योपस्कुरुते[1]—पाककर्ता इन्धन जल तथा अन्य सब भोजन की सामग्री समीप धर के पाक बनावे ॥ १०१ ॥

७३०–रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः ॥ १०२ ॥ अ० २ । ३ । ५४ ॥

यहां भाववचन शब्द से कर्तृस्थभावक रुजार्थ धातु समझे जाते हैं।

जिन धातुओं के कर्त्ता में धातु का अर्थ रहता है, ऐसे रुजार्थक धातुओं में से ज्वर धातु को छोड़ के उन के शेष कर्म्म[2] में षष्ठी हो।

जैसे—चोरस्य रुजति। चोरस्यामयति, इत्यादि।

यहां 'रुजार्थ' ग्रहण इसलिये है कि—ग्रामं गच्छति, इत्यादि में षष्ठी न हो। और 'भाववचन' ग्रहण इसलिये है कि—नदी कूलानि रुजति, यहां कर्मस्थभावक रुज धातु के कर्म्म में षष्ठी न हो। और 'ज्वर धातु का निषेध' इसलिये है कि—बालं ज्वरयति ज्वरः, यहां कर्म में षष्ठी न हो ॥ १०२ ॥

७३१–वा०–अज्वारिसंताप्योरिति वक्तव्यम् ॥ १०३ ॥ अ० २ । ३ । ५४ ॥

जहां ज्वर धातु के कर्म्म में षष्ठी का निषेध किया है, वहां संपूर्वक तापि धातु का भी समझना चाहिये।

जैसे—चोरं सन्तापयति दुष्कर्म, यहां इस वार्त्तिक से षष्ठी का निषेध हो के द्वितीया हुई ॥ १०३ ॥

७३२–आशिषि नाथः ॥ १०४ ॥ अ० २ । ३ । ५५ ॥

जो आशीर्वचन अर्थ में वर्त्तमान नाथ धातु हो, तो उसके शेष कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होवे।

---

१. यहां प्रतियत्न अर्थ में ही कृञ् धातु को सुट् का आगम कहा है। एधोदक शब्द कृञ् धातु का कर्म है, उस में द्वितीया प्राप्त है, सो न हो ॥

२. शेष कर्म के कहने से प्रयोजन यह है कि जिस कर्म में द्वितीया की विवक्षा न हो ॥

जैसे—सर्पिषो नाथते। मधुनो नाथते[1]। यहां आशिष् शब्द से इच्छा ली जाती है। इसलिये कर्मवाची सर्पि शब्द में षष्ठी विभक्ति हुई।

'आशिषि' ग्रहण इसलिये है कि—अन्नं नाथते, यहां षष्ठी न हो॥ १०४॥

७३३–जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्॥ १०५॥ अ० २। ३। ५६॥

जासि धातु चुरादि गण का, नि और प्र ये उपसर्ग साथ वा पृथक् पृथक् पूर्व हों ऐसा हन, नाट, क्राथ और पिष इन हिंसार्थक धातुओं के शेष कर्म में षष्ठी विभक्तिहोवे।

जैसे—चोरस्योज्जासयति, यहां जासि धातु के चोर कर्म में षष्ठी। निप्रहण—चोरस्य निप्रहन्ति। चोरस्य निहन्ति। चोरस्य प्रहन्ति। नाट—असुरस्योन्नाटयति। क्राथ—दुष्टस्य क्राथयति। पिष—दस्योः पिनष्टि, इत्यादि।

यहां 'जासि आदि धातुओं' का परिगणन इसलिये है कि—दुष्टं हिनस्ति, इत्यादि में षष्ठी न हो। और 'हिंसा' ग्रहण इसलिये है कि—औषधं पिनष्टि, यहां हिंसा के न होने से षष्ठी न हुई॥ १०५॥

७३४-व्यवहृपणोः समर्थयोः॥ १०६॥ अ० २। ३। ५७॥

समानार्थक जो वि अव पूर्वक हृ और पण धातु, इन के शेष कर्म्म में षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—शतस्य व्यवहरति। शतस्य पणायति, इत्यादि।

यहां 'समर्थ' ग्रहण इसलिये है कि—विद्वांसम्पणायति, यहां पण धातु स्तुति अर्थ में है, इस कारण से इस के कर्म में षष्ठी नहीं होती॥ १०६॥

७३५–दिवस्तदर्थस्य॥ १०७॥ अ० २। ३। ५८॥

व्यवहारार्थक दिवु धातु के शेष कर्म्म में षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—शतस्य दीव्यति, इत्यादि—सौ रुपये का व्यवहार करता है॥ १०७॥

७३६–विभाषोपसर्गे॥ १०८॥ अ० २। ३। ५९॥

उपसर्गपूर्वक व्यवहारार्थक दिवु धातु के शेष कर्म्म में विकल्पकरके षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—शतस्य प्रदीव्यति। शतं प्रदीव्यति। यहां षष्ठी के विकल्प से पक्ष में द्वितीया विभक्ति भी होती है॥ १०८॥

७३७–द्वितीया ब्राह्मणे॥ १०९॥ अ० २। ३। ६०॥

ब्राह्मण ग्रन्थों में व्यवहारार्थ दिवु धातु के कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति हो।

---

१. घी चाहता है। मीठा चाहता है। यहां घी और मीठा नाथ धातु के कर्म हैं, यहां भी षष्ठी द्वितीया की बाधक है॥

जैसे—गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः। यहां गौ शब्द कर्म्मवाची है, उस में द्वितीया होती है।

अनुपसर्ग दिवु धातु के कर्म्म कारक में नित्य षष्ठी विभक्ति प्राप्त है, सो द्वितीया ही हो, इसलिये यह सूत्र है ॥ १०९ ॥

७३८—प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासंप्रदाने ॥११०॥ अ० २।३।६१॥

जो वह हविष् कर्म देवता अर्थात् दिव्यगुण होने के लिये दिया जाता हो, तो प्रपूर्वक दिवादिगणवाला इष धातु और ब्रू धातु इनके हविष् कर्म में ब्राह्मणग्रन्थ विषय में षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—इन्द्राग्निभ्यां छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य। इन्द्राग्निभ्यां छागस्य हविषो वपाया मेदसोऽनुब्रूहि[1]। यहां हविष् कर्म है, अन्य षष्ठ्यन्त पद उस के विशेषण हैं। यहां—छागं हविर्वपां मेदः प्रेष्य, ऐसा प्राप्त है। सो इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति हो गई।

यहां 'प्र पूर्वक इष और ब्रू धातु' का ग्रहण इसलिये है कि—अग्नये छाग हविर्वपां मेदो जुहुधि, इत्यादि के कर्म में षष्ठी न हो। 'हविष्' ग्रहण इसलिये है कि—अग्नये समिधः प्रेष्य, यहां समिध् कर्म में षष्ठी न हो। और 'देवतासंप्रदान' ग्रहण इस लिये है कि—बालाय पुरोडाशं प्रेष्य, यहां देवता के न होने से षष्ठी न हुई ॥ ११० ॥

७३९—वा०—हविषोऽप्रस्थितस्येति वक्तव्यम् ॥१११॥ अ० २।३।६१॥

सूत्र से जो हविष् कर्म में षष्ठी कही है, सो प्रस्थित विशेषण हो तो न हो, किन्तु द्वितीया ही हो।

जैसे—इन्द्राऽग्निभ्यां छागं हविर्वपां मेदः प्रस्थितं प्रेष्य। यहां प्रस्थित विशेषण के होने से षष्ठी न हुई ॥ १११ ॥

७४०—चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि ॥ ११२ ॥ अ० २।३।६२ ॥

पूर्वसूत्रों में ब्राह्मण शब्द से ऐतरेय आदि वेद व्याख्यानों का ग्रहण होता है, और यहां छन्दः शब्द से वेदों का ग्रहण होता है; इसलिये इस सूत्र में छन्द ग्रहण किया है।

वेद विषय में चतुर्थी के अर्थ में षष्ठी विभक्ति बहुल करके हो।

जैसे—दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्। यहां—वनस्पतिभ्यः, ऐसा प्राप्त था ॥ ११२ ॥

७४१—वा०—षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्या ॥ ११३ ॥ अ० २।३।६२ ॥

षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति कहना चाहिये।

जैसे—या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वो जायते। तस्याः खर्वो जायत इति प्राप्ते, इत्यादि। यहां 'तस्यै' शब्द में षष्ठी के स्थान में चतुर्थी हुई है ॥ ११३ ॥

1. अजा के अर्थ खाने पीने की वस्तु के योग से बिजुली और अग्नि को उपयुक्त कर और सुनकर उपदेश भी कर ॥

७४२-यजेश्च करणे ॥ ११४ ॥ अ० २ । ३ । ६३ ॥

वेदविषयक यज धातु के करण कारक में बहुल करके षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—घृतस्य घृतेन वा यजते। यहां करण कारक में तृतीया विभक्ति प्राप्त थी, सो उस का अपवाद होने से घृत शब्द में तृतीया और षष्ठी दोनों होती हैं ॥ ११४ ॥

७४३-कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे ॥ ११५ ॥ अ० २ । ३ । ६४ ॥

कृत्वसुच् और इसके समानार्थ प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों के प्रयोग में जो कालवाची अधिकरणवाचक शब्द हो, तो उससे अधिकरण कारक में षष्ठी विभक्ति हो।

यहां सप्तमी विभक्ति प्राप्त है, उसका अपवाद यह सूत्र है। जैसे—दिवसस्य पंचकृत्वो भुङ्क्ते बालः—एक दिन में यह बालक पांच वार खाता है। दिवसस्य द्विरधीते, इत्यादि—एक दिन भर में दो वार पढ़ता है।

यहां 'कृत्वोऽर्थप्रयोग' ग्रहण इसलिये है कि—दिनमधीते। अयसः पात्रे भुङ्क्ते, इत्यादि में षष्ठी न हो। 'काल अधिकरण' ग्रहण इसलिये है कि—काष्ठं द्विःकरोति, इत्यादि में षष्ठी न हो ॥ ११५ ॥

७४४-कर्तृकर्मणोः कृति ॥ ११६ ॥ अ० २ । ३ । ६५ ॥

कृदन्तसंबन्धी कर्त्ता और कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—देवदत्तस्य प्रज्ञा। देवदत्तस्येज्या। पुरां भेत्ता। कूपस्य खनिता।

'कर्तृकर्म' ग्रहण इसलिये है कि—दात्रेण छेत्ता, इत्यादि में षष्ठी विभक्ति न हो। और 'कृत्' ग्रहण इसलिये है कि—कृतपूर्वी कटम्, इत्यादि तद्धित के प्रयोग में षष्ठी न हो ॥ ११६ ॥

७४५-उभयप्राप्तौ कर्म्मणि ॥ ११७ ॥ अ० २ । ३ । ६६ ॥

पूर्वसूत्र से कृत्युक्त कर्त्ता तथा कर्म में सर्वत्र षष्ठी प्राप्त है, उसका नियम करने के लिये यह सूत्र है।

जिस कृदन्त के योग में कर्त्ता और कर्म दोनों में एक साथ षष्ठी प्राप्त हो, वहां कर्म में षष्ठी और कर्त्ता में तृतीया हो।

जैसे—ओदनस्य पाको देवदत्तेन। यहां ओदन कर्म में षष्ठी और अनभिहित के होने से देवदत्त कर्त्ता में तृतीया हो गई ॥ ११७ ॥

७४६-वा०—अकाकारयोः स्त्रीप्रत्यययोः प्रयोगे प्रतिषेधो न[1] ॥ ११८ ॥ अ० २ । ३ । ६६ ॥

---

१. यह वार्त्तिक (उभयप्राप्तौ०) इसी सूत्र का अपवाद है, क्योंकि कृद्योग में सामान्य कर के जो षष्ठी का विधान है, उस को नियत विषय में दृढ करता है ॥

जो एवुल, और अ ये स्त्रीप्रत्यय जिन के अन्त में हों, उन शब्दों के प्रयोग में कर्त्ता में भी षष्ठी विभक्ति अर्थात् दोनों में एक साथ हो जावे।

जैसे—भेदिका देवदत्तस्य काष्ठानाम्। चिकीर्षा विष्णुमित्रस्य कटस्य॥ ११८॥

७४७—वा०—शेषे विभाषा[1] ॥ ११९ ॥ अ० २ । ३ । ६६ ॥

शेष कृदन्त स्त्रीप्रत्यय के योग में कर्त्ता में विकल्प करके षष्ठी विभक्ति हो। और कर्म में तो सूत्र ही से नित्य विधान है। जैसे-शोभना खलु पाणिनेः सूत्रस्य कृतिः। शोभना खलु पाणिनिना सूत्रस्य कृतिः, इत्यादि॥ ११९॥

७४८—क्तस्य च वर्त्तमाने[2] ॥ १२० ॥ अ० २ । ३ । ६७ ॥

जो वर्त्तमान काल में क्तप्रत्ययान्त शब्द है, उसके संबन्ध में षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—राज्ञां मतः। राज्ञां बुद्धः। राज्ञां पूजितः—यह विद्वान् राजाओं का मान्य, जाना और सत्कृत है।

यहां 'क्त' ग्रहण इसलिये है कि—गुरुं भजमानः, यहां कर्म में षष्ठी न हो। और 'वर्त्तमान' ग्रहण इसलिये है कि—ग्रामं गतः, यहां भूतकाल के होने से षष्ठी न हो॥ १२०॥

७४९—वा०—क्तस्य च वर्त्तमाने नपुंसके भाव उपसङ्ख्यानम्[3] ॥ १२१ ॥ अ० २ । ३ । ६७ ॥

जो नपुंसक भाव में क्तप्रत्ययान्त है, उसके कर्त्ता में षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—छात्रस्य हसितम्। नटस्य भुक्तम्। मयूरस्य नृत्तम्, इत्यादि—विद्यार्थी का हसना। नट का भोजन। मोर का नाचना देखो॥ १२१॥

७५०—अधिकरणवाचिनश्च ॥ १२२ ॥ अ० २ । ३ । ६८ ॥

अधिकरणवाची क्तप्रत्ययान्त के योग में कर्त्ता में षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे—इदमेषामासितम्। इदमेषां यातम्[4]॥ १२२॥

---

१. यह 'अप्राप्त विभाषा' यों समझनी चाहिये कि शेष स्त्रीप्रत्यय के योग में कर्तृवाची शब्द से किसी सूत्र कर के षष्ठी प्राप्त नहीं, प्रत्युत (उभयप्राप्तौ०) इससे कर्म का नियम होने से कर्त्ता का निषेध तो है॥

२. क्त प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा होने से आगे (न लोका० ॥ अ० २ । ३ । ६९) इस (१२३) सूत्र करके षष्ठी का निषेध प्राप्त है, इसलिये यह सूत्र उसका पुरस्तात् अपवाद है॥

३. पूर्वसूत्र में वर्त्तमान के कहने से नपुंसक भाव में प्राप्ति नहीं, इसलिये यह भी वार्तिक (न लोका० ॥ अ० २ । ३ । ६९) इसी वक्ष्यमाण (१२३) सूत्र का अपवाद समझना ठीक है॥

४. आसितम्=बैठने का स्थान, और यातम्=चलने का मार्ग है। 'एषां' यह कर्त्ता में षष्ठी है। और सूत्र भी (न लोका० ॥ अ० २ । ३ । ६९) इसी अगले (१२३) सूत्र का अपवाद है॥

७५१–न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ॥ १२३ ॥ अ० २।३।६९ ॥

जो कृदन्त के योग में कर्म में षष्ठी प्राप्त है, उसी विषय का यह सूत्र निषेध करता है। इसलिये उसी का अपवाद है।

ल, उ, उक, अव्यय, निष्ठा, खलर्थ और तृन्, इन कृत्प्रत्ययान्त शब्दों के योग में कर्म में षष्ठी विभक्ति न हो।

ल, अर्थात् जो लकार के स्थान में तिङ्, शतृ, शानच्, कानच्, क्वसु, कि, किन् आदि आदेश होते हैं। जैसे—तिङ्—देवदत्त ओदनं पचति। देवदत्तेनौदनः पच्यते ग्रामं गच्छति। ग्रामो गम्यते, इत्यादि। शतृ—ओदनं पचन्। शानच्—ओदनं पचमानः। कानच्—सूर्य्यमुभयतो ददृशानः। क्वसु—सोमं पपिवान्। कि; किन्—ददिर्गाः इत्यादि।

उ—कटं चिकीर्षुः। ग्रामं जिगमिषुः। विद्यां पिपठिषुः, इत्यादि। उकञ्—सत्यं प्रतिपादुकः। अव्यय—ग्रामं गत्वा। ओदनं भुक्त्वा। निष्ठा—क्त और क्तवतु प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी न हो। देवदत्तेन कृतं पयः। कटं कृतवान्। खलर्थ—ईषद्भोज ओदनो भवता। ईषत्पानं पयो भवता।

तृन् प्रत्याहार से शानन्, चानश्, शतृ, तृन् इन चार प्रत्ययान्तों का ग्रहण होता है। शानन्—सोमं पवमानः। चानश्—पतङ्गान्निघ्नानः। शतृ—विद्यां धारयन्। लविता यवान्। पठिता वेदान्, इत्यादि ॥ १२३ ॥

७५२–वा०–उकप्रतिषेधे कमेर्भाषायामप्रतिषेधः ॥ १२४ ॥ अ० २।३।६९ ॥

वेद से अन्य आर्ष वेदानुकूल ग्रन्थों को 'भाषा' कहते हैं। जो उकप्रत्ययान्त के योग में षष्ठी का निषेध किया है, वहां उकप्रत्ययान्त भाषाविषयक कम धातु के प्रयोग में निषेध न हो, किन्तु षष्ठी विभक्ति हो जावे।

जैसे—दास्याः कामुकः। वृषल्याः कामुकः—दासी और वृषली वेश्या से भोग की इच्छावाला, इत्यादि ॥ १२४ ॥

७५३–वा०–अव्ययप्रतिषेधे तोसुन्कसुनोरप्रतिषेधः ॥ १२५ ॥ अ० २।३।६९ ॥

जो अव्यय के योग में षष्ठी का निषेध किया है, वहां तोसुन और कसुन् प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी का निषेध न हो।

जैसे—तोसुन्—पुरा सूर्य्यस्योदेतोराधेयः। कसुन्—पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्, इत्यादि ॥ १२५ ॥

---

१. ये दोनों वार्त्तिक इसी सूत्र के विषय में निषेध का निषेध करके षष्ठी के विधायक हैं। इसलिये (न लोका० ॥ अ० २।३।६९) इस के अपवाद हैं ॥

७५४-वा०-द्विषः शतुर्वावचनम्[1] ॥ १२६ ॥ अ० २ । ३ । ६६ ॥

द्विष धातु से शतृप्रत्ययान्त के योग में षष्ठी विभक्ति विकल्प करके हो।

जैसे—चोरस्य द्विषन्; चोरं द्विषन्। तृन् प्रत्याहार में शतृ प्रत्यय के होने से निषेध प्राप्त था, उसका विकल्प करने के लिये यह तीसरा वार्त्तिक है ॥ १२६ ॥

७५५-अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः ॥ १२७ ॥ अ० २ । ३ । ७० ॥

अक और इन्प्रत्ययान्त के कर्म में षष्ठी विभक्ति हो।

७५६-वा०-अकस्य भविष्यतीन आधमर्ण्ये च[2] ॥ १२८ ॥ अ० २ । ३ । ७० ॥

अकन्त के योग में भविष्यत् काल और इन के योग में आधमर्ण्य तथा भविष्यत् काल अर्थ लगते हैं।

जैसे—यवान् लावको व्रजति, यहां अक के योग में केवल भविष्यत् ही है, और—ग्रामं गमी, यहां इन्नन्त के योग में भविष्यत्काल में, और—शतं दायी; सहस्रं दायी, यहां आधमर्ण्य है, इत्यादि।

यहां 'भविष्यत् और आधमर्ण्य में निषेध' इसलिये है कि—यवानां लावकः, यहां षष्ठी का निषेध न हो, किन्तु षष्ठी हो जावे ॥ १२७—१२८ ॥

७५७-कृत्यानां कर्त्तरि वा ॥ १२६ ॥ अ० २ । ३ । ७१ ॥

कृत्यप्रत्ययान्त के कर्त्ता में विकल्प करके षष्ठी और पक्ष में तृतीया होवे।

जैसे—ब्राह्मणेन ब्राह्मणस्य वा पठितव्यम्। देवदत्तेन देवदत्तस्य वा आसितव्यम्, इत्यादि।

यहां 'कर्त्तरि' ग्रहण इसलिये है कि—वक्तव्यः श्लोकः, यहां कर्म में षष्ठी न हो।

इस सूत्र में महाभाष्यकार ने योग विभाग करके दो अर्थ किये हैं। एक—उभयप्राप्त कृत्यप्रत्ययान्त के योग में षष्ठी न हो। जैसे—ग्राममाक्रष्टव्या शाखा देवदत्तेन, इत्यादि। दूसरा—कृत्य प्रत्यय के योग में कर्त्ता में षष्ठी विकल्प करके हो। इसके उदाहरण सूत्र की व्याख्या में लिख चुके हैं ॥ १२६ ॥

७५८-तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥ १३० ॥ अ० २ । ३ । ७२ ॥

---

१. इस वार्तिक में अप्राप्तविभाषा इसलिये है कि (न लोका० ॥ अ० २ । ३ । ६६) इससे सर्वथा षष्ठी का निषेध हो चुका है, उस को यह विकल्प से विधान किया है ॥

२. यह भी वार्तिक (कर्तृकर्म० ॥ अ० २ । ३ । ६५) इसी (११६) का अपवाद है। क्योंकि कर्म में षष्ठी इसी से प्राप्त है ॥

पूर्वसूत्र में विकल्प ग्रहण था, फिर दूसरी वार करने का प्रयोजन यह है कि यहां कर्त्ता की अनुवृत्ति न आवे।

तुल्य और इसके पर्य्यायवाची शब्दों के योग में कर्म में विकल्प करके तृतीया, और पक्ष में षष्ठी विभक्ति हो, तुला और उपमा शब्द को छोड़ के।

जैसे—तुल्यः सदृशो वा देवदत्तेन देवदत्तस्य वा विष्णुमित्रः, इत्यादि।

यहां 'तुला और उपमा शब्द का निषेध' इसलिये है कि—तुलोपमा वा परमात्मनो नास्ति, यहां परमात्मा शब्द से तृतीया न हुई, शेष के होने से षष्ठी हो गई॥ १३०॥

७५९—चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः॥ १३१॥ अ० २। ३। ७३॥

जो आशीर्वचन अर्थ में वर्त्तमान आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित हैं। इन शब्दों के योग में विकल्प करके चतुर्थी और पक्ष में षष्ठी विभक्ति होवे।

जैसे—आयुष्य—आयुष्यं शिष्याय शिष्यस्य वा। मद्र—मद्रं बालाय बालस्य वा। भद्र—भद्रं पुत्राय पुत्रस्य वा। कुशल—कुशलं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा। सुख—सुखं पण्डिताय पण्डितस्य वा। अर्थ—अर्थो देवदत्ताय देवदत्तस्य वा। हित—हितं माणवकाय माणवकस्य वा, इत्यादि।

यहां 'आशीर्वचन' ग्रहण इसलिये है कि—आयुष्यमस्य ब्रह्मचर्य्यम्, इत्यादि में चतुर्थी विभक्ति न हो॥ १३१॥

यह शेषकारक पूरा हुआ॥

---

(७) अधिकरणकारक

७६०—आधारोऽधिकरणम्॥ १३२॥ अ० १। ४। ४५॥

जिस में पदार्थ धरे जाते हैं वह 'आधार' कहाता है। सो एक की अपेक्षा में दूसरा आधार बनता जाता है। परिपूर्ण परमेश्वर में पहुँच के समाप्ति हो जाती है।

जो आधार कारक है, वह अधिकरणसंज्ञक हो॥ १३२॥

इसका फल—

७६१—सप्तम्यधिकरणे च॥ १३३॥ अ० २। ३। ३६॥

अधिकरण तीन प्रकार का होता है, इसको प्रमाणसहित पूर्व लिख चुके हैं। अधिकरण में और चकार से दूरवाची तथा समीपवाची शब्दों से भी सप्तमी विभक्ति होवे।

जैसे—व्यापक—दध्नि घृतम् । तिलेषु तैलम्[1] इत्यादि । औपश्लेषिक—कटे शेते । खट्वायां शेते । पीठ आस्ते[2], इत्यादि । वैषयिक—खे शकुनयः । श्रोत्रे शब्दो विबध्यते[3], इत्यादि । आकाश के विषय यहां ख शब्द में सप्तमी विभक्ति हुई है ॥ १३३ ॥

अब आगे वार्त्तिक लिखेंगे—

७६२—वा०—सप्तमीविधाने क्तस्येन्विषयस्य कर्म्मण्युपसंख्यानम् ॥ १३४ ॥ अ० २ । ३ । ३६ ॥

क्तप्रत्ययान्त शब्द से जहां इन् प्रत्यय होता है, वहां कर्म कारक में सप्तमी विभक्ति हो ।

जैसे—असावधीती व्याकरणे[4] । परिगणिती याज्ञिके, इत्यादि ॥ १३४ ॥

७६३—वा०—साध्वसाधुप्रयोगे च[5] ॥ १३५ ॥ अ० २ । ३ । ३६ ॥

साधु और असाधु शब्द के प्रयोग में भी सप्तमी विभक्ति हो ।

जैसे—साधुर्देवदत्तो मातरि । असाधव आर्येषु दस्यवः, इत्यादि ॥ १३५ ॥

७६४—वा०—कारकार्हाणां च कारकत्वे ॥ १३६ ॥ अ० २ । ३ । ३६ ॥

जहां कारक अपने कृत्य को ठीक २ प्राप्त हों, वहां उनसे सप्तमी विभक्ति हो ।

जैसे—ऋद्धेषु भुञ्जानेषु दरिद्रा आसते, इत्यादि—संपन्न पुरुष अच्छे अच्छे पदार्थ भोगते और दरिद्र बैठे देखते हैं ॥ १३६ ॥

७६५—वा०—अकारकार्हाणां चाकारकत्वे ॥ १३७ ॥ अ० २।३।३६॥

जहां अयोग्य कारक अपनी अयोग्यता को ठीक ठीक प्राप्त हों, वहां सप्तमी विभक्ति हो ।

जैसे—मूर्खेष्वासीनेषु ऋद्धा भुञ्जते । वृषलेष्वासीनेषु ब्राह्मणास्तरन्ति, इत्यादि । यहां मूर्ख और वृषल अपनी अयोग्यता को प्राप्त होते हैं, उन्हीं में सप्तमी हुई ॥ १३७ ॥

---

१. दही और तिलों के सब अवयवों में घी और तेल व्याप्त रहता है, इस कारण इस को 'व्यापक' कहते हैं ॥

२. चटाई, खटिया और आसन पर बैठनेवाले का उससे अति निकट सम्बन्ध होता है, इसलिये इस अधिकरण को 'औपश्लेषिक' कहते हैं ॥

३. पक्षियों के उड़ने का विषय आकाश और कान का विषय शब्द है, इस कारण यह 'वैषयिक' अधिकरण कहाता है ॥

४. यहां अधीत शब्द क्तप्रत्ययान्त इन्विषयक है, उस के कर्म व्याकरण शब्द में सप्तमी होती है ॥

५. यहां से जो वार्त्तिक हैं वे किसी के अपवाद नहीं, किन्तु अपूर्वविधायक हैं । क्योंकि वहां किसी सूत्र वा वार्त्तिक से सप्तमी प्राप्त नहीं है ॥

७६६-वा०-तद्विपर्य्यासे च ॥ १३८ ॥ अ० २ । ३ । ३६ ॥

और जहां इन कर्मों के बदलने में अर्थात् अच्छों को बुरों की योग्यता और बुरों को अच्छों की योग्यता हो, वहां पूर्व प्रयुक्त शब्दों में सप्तमी हो।

जैसे—ऋद्धेष्वासीनेषु मूर्खा भुञ्जते। ब्राह्मणेष्वासीनेषु वृषलास्तरन्ति, इत्यादि ॥१३८॥

७६७-वा०-निमित्तात्कर्मसंयोगे ॥ १३९ ॥ अ० २ । ३ । ३६ ॥

कर्मसंयोग में जिस निमित्त के लिये वह कर्म किया जाता है, उन निमित्तवाची शब्दों से सप्तमी विभक्ति हो।

जैसे—चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः ॥

चर्मणि०—चर्म के लिये गैंडे को मारता है। दन्त०—दांतों के लिये हाथी को मारता है। केशेषु०—केशों के लिये चमरी अर्थात् जङ्गली सुरा गौ को मारता है। और—सीम्नि पुष्कलको०—कस्तूरी की चाहना करके कस्तूरिया मृग को मारता है। इस कारण चर्म आदि शब्दों से सप्तमी विभक्ति हो जाती है[1] ॥ १३९ ॥

७६८-यस्य च भावेन भावलक्षणम् ॥ १४० ॥ अ० २ । ३ । ३७ ॥

जिस क्रिया से क्रिया का लक्षण किया जाय, उस में सप्तमी विभक्ति हो।

जैसे—गोषु दुह्यमानासु गतो दुग्धास्वागतः[2]।

यहां 'भावेन' ग्रहण इसलिये है कि—यो जटिलः स भुङ्क्ते, इत्यादि में सप्तमी न हो ॥ १४० ॥

७६९-षष्ठी चानादरे ॥ १४१ ॥ अ० २ । ३ । ३८ ॥

अनादर अर्थ में जिस क्रिया से क्रिया का लक्षण किया जाय, वहां षष्ठी विभक्ति और चकार से सप्तमी भी हो।

जैसे—आह्वयमानस्याह्वयमाने वा गतः। आह्वयमान अर्थात् बुलाते हुए का तिरस्कार करके चला गया। यहां आह्वयमान शब्द में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हुई हैं ॥ १४१ ॥

७७०-स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च[3] ॥ १४२ ॥ अ० २ । ३ । ३९ ॥

---

१. गैंडे आदि को मारे विना चाम आदि की प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर ढाल आदि वस्तु कैसे बनें, इस कारण चाम आदि उन के मारने में निमित्त हैं ॥

२. यहां दोहनरूप क्रिया से गमन क्रिया का लक्षण किया जाता है, इस से दोहन क्रिया में सप्तमी हुई ॥

३. यह चकार षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियों का आकर्षण होने के लिये है ॥

स्वामिन्, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षिन्, प्रतिभू और प्रसूत इन शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हों।

जैसे—स्वामिन्—गवां स्वामी; गोषु स्वामी। ईश्वर—पृथिव्या ईश्वरः; पृथिव्यामीश्वरः। अधिपति—ग्रामस्याधिपतिः; ग्रामेऽधिपतिः। दायाद—क्षेत्रस्य क्षेत्रे वा दायादः। साक्षिन्—देवदत्तस्य देवदत्ते वा साक्षी। प्रतिभूः—धनस्य धने वा प्रतिभूः। प्रसूत—गवां प्रसूतः; गोषु प्रसूतः।

इस सूत्र में स्वामिन् आदि शब्दों के योग में शेष कारक के होने से सर्वत्र षष्ठी प्राप्त थी, सो सप्तमी भी हो जावे, इसलिये यह सूत्र है ॥ १४२ ॥

७७१–आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् ॥१४३॥ अ० २।३।४०॥

जो आसेवा अर्थ में वर्त्तमान आयुक्त और कुशल शब्द हैं, उनके योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हों।

जैसे—आयुक्तः पठनस्य पठने वा। कुशलो लेखनस्य लेखने वा।

यहां 'आसेवा' ग्रहण इसलिये है कि—आयुक्तो वृषभः शकटे, इत्यादि में षष्ठी न हो। अधिकरण में सप्तमी तो प्राप्त ही थी, षष्ठी होने के लिये यह सूत्र है ॥ १४३ ॥

७७२–यतश्च निर्द्धारणम् ॥ १४४ ॥ अ० २।३।४१॥

जो समुदायवाची जाति आदि शब्दों से एक का पृथक् करना है, उसको 'निर्द्धारण' कहते हैं। जिससे निर्द्धारण अर्थात् किसी को पृथक् किया जावे, उस से षष्ठी सप्तमी विभक्ति हों।

जैसे—ब्राह्मणानां ब्राह्मणेषु वा देवदत्तः श्रेष्ठतमः। इससे यहां ब्राह्मण शब्द में षष्ठी सप्तमी विभक्ति हो गई ॥ १४४ ॥

७७३–पंचमी विभक्ते ॥ १४५ ॥ अ० २।३।४२॥

पूर्व से निर्द्धारण अर्थ में षष्ठी सप्तमी विभक्ति प्राप्त है, उसका अपवाद यह सूत्र है।

निर्द्धारण में जिसका विभाग किया जाय, उसमें पंचमी विभक्ति हो।

जैसे—पाटलिपुत्रेभ्यः सांकाश्या आढ्यतराः, इत्यादि। जो पूर्वसूत्र से निर्द्धारण होता है वह समुदाय से एक ही का पृथक् भाव समझना। और इस सूत्र से एक ही से दूसरे का विभाग होता है ॥ १४५ ॥

७७४–साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः ॥१४६॥ अ०२।३।४३॥

जो पूजा अर्थात् सत्कारपूर्वक सेवा करने अर्थ में वर्त्तमान साधु और निपुण शब्द हों, तो इन के प्रयोग में सप्तमी विभक्ति होवे, परन्तु प्रति के योग में इस अर्थ में भी न हो।

जैसे—मातरि साधुः। पितरि साधुः। मातरि निपुणः। पितरि निपुणः, इत्यादि।

यहां 'अर्चा' ग्रहण इसलिये है कि—साधुर्देवदत्तस्य पुत्रः, इत्यादि में न हो जाय। 'प्रति का निषेध' इसलिये है कि—साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति, यहां प्रति के योग में सप्तमी न हो ॥ १४६ ॥

७७५—वा०—अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् ॥ १४७ ॥ अ० २।३।४३॥

जो प्रति के योग में सप्तमी का निषेध किया है, सो प्रति आदि अन्य शब्दों के योग में भी समझा जावे।

जैसे—साधुर्देवदत्तो मातरं परि। मातरमनु, इत्यादि के योग में भी सप्तमी विभक्ति न हो ॥ १४७ ॥

७७६—प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ॥ १४८ ॥ अ० २ । ३ । ४४॥

जो अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति प्राप्त है, उस का अपवाद यह सूत्र है।

प्रसित और उत्सुक शब्दों के योग में तृतीया और सप्तमी विभक्ति हों।

जैसे—केशैः केशेषु वा प्रसितः। मात्रा मातरि वा प्रसितः। सत्येन सत्ये वा प्रसितः। 'प्रसित' कहते हैं जो उस में अतिप्रसक्त हो। गानेन गाने वोत्सुकः। 'उत्सुक' कहते हैं जो किसी को मिलने की इच्छा कर रहा हो ॥ १४८ ॥

७७७—नक्षत्रे च लुपि ॥ १४९ ॥ अ० २ । ३ । ४५ ॥

यहां उस नक्षत्रवाची शब्द का ग्रहण है कि जहां काल अर्थ में प्रत्यय का लुप् हो जाता है।

लुबन्त नक्षत्र से तृतीया और सप्तमी विभक्ति हों।

जैसे—पुष्येण पुष्ये वा कार्यमारभेत, इत्यादि—पुष्य नक्षत्र जिस दिन हो उस दिन कार्य्य का आरम्भ करे ॥ १४९ ॥

अब जो अधिकरण संज्ञा के विशेष वार्त्तिक सूत्र हैं, सो लिखते हैं—

७७८—अधिशीङ्स्थासां कर्म ॥ १५० ॥ अ० १ । ४ । ४६ ॥

अधिकरण संज्ञा का अपवाद यह सूत्र है।

जो अधिपूर्वक शीङ्, स्था और आस धातु का आधार कारक है, वह कर्मसंज्ञक हो।

कर्म्मकारक में द्वितीया कह चुके हैं। जैसे—खट्वामधिशेते। भूमिमधिशेते—खाट और भूमि में सोते हैं। सभामधितिष्ठति। सभामध्यास्ते—सभा में बैठा है।

यहां 'अधि' उपसर्ग का ग्रहण इसलिये है कि—खट्वायां शेते। सभायामास्ते, इत्यादि में न हो ॥ १५० ॥

७७९—अभिनिविशश्च ॥ १५१ ॥ अ० १ । ४ । ४७ ॥

यहां मण्डूकप्लुतगति मान के (परिक्रयणे० ॥ अ० १।४।४४) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति आती है।

जो अभि और नि पूर्वक विश धातु का आधार कारक है, वह विकल्प करके कर्मसंज्ञक हो, पक्ष में अधिकरण संज्ञा हो जावे।

यह कर्मप्रवचनीय गति और उपसर्ग संज्ञा का अपवाद है। जैसे—नह्यपवादविषयमुत्सर्गोऽभिनिविशते। नह्यपवादविषय उत्सर्गोऽभिनिविशते। यहां अपवाद विषय शब्द से कर्मसंज्ञा पक्ष में द्वितीया और अधिकरणसंज्ञा पक्ष में सप्तमी विभक्ति हो जाती है। तथा—सन्मार्गमभिनिविशते। सन्मार्गेऽभिनिविशते, इत्यादि ॥ १५१ ॥

७८०–उपान्वध्याङ्वसः ॥ १५२ ॥ अ० १।४।४८ ॥

यह सूत्र भी अधिकरण संज्ञा का अपवाद है।

जो उप, अनु, अधि और आङ् उपसर्गपूर्वक वस धातु का आधार कारक है, वह कर्मसंज्ञक हो।

जैसे—पर्वतमुपवसत्यनुवसत्यधिवसत्यावसति वा। ग्राममुपवसत्यनुवसत्यधिवसत्यावसति वा, इत्यादि—पर्वत और ग्राम के समीप वा उन के बीच में वास करता है ॥ १५२ ॥

यह अधिकरणकारक का प्रकरण और ये सातों कारक पूरे हुए ॥

कर्मप्रवचनीय-प्रकरणम्

अब इसके आगे कर्मप्रवचनीय का प्रकरण लिखेंगे, क्योंकि यह भी कारक से ही संबन्ध रखता है—

७८१–कर्मप्रवचनीयाः ॥ १५३ ॥ अ० १।४।८३ ॥

यहां से आगे कर्मप्रवचनीय का अधिकार है। संज्ञा करने का प्रयोजन यही है कि थोड़े अक्षरों के कहने से बहुत अर्थ समझा जावे। जैसे—हाथी पर्वत सूर्य्य चन्द्र पृथिवी आदि के कहने से बड़े बड़े अर्थ समझे जाते हैं।

(प्रश्न) कर्मप्रवचनीय इतनी बड़ी संज्ञा क्यों की?

(उत्तर) भा०—अन्वर्था संज्ञा यथा विज्ञायते। कर्म प्रोक्तवन्तः कर्मप्रवचनीयाः—जिस से यौगिक संज्ञा समझी जावे। जो शब्द क्रिया को कह चुका हो, उस को 'कर्मप्रवचनीय' कहते हैं ॥ १५३ ॥

७८२–कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया ॥ १५४ ॥ अ० २ । ३ । ८ ॥

जहां जहां कर्मप्रवचनीय शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति कहैं, वहां वहां इसी सूत्र से होवे।

जैसे—शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत्, इत्यादि। यहां संहिता शब्द से द्वितीया विभक्ति हुई है ॥ १५४ ॥

७८३–अनुर्लक्षणे ॥ १५५ ॥ अ० १ । ४ । ८४ ॥

इस सूत्र में लक्षण शब्द हेतु का वाची है। उस हेतु अर्थ में तृतीया विभक्ति प्राप्त थी, उसका अपवाद होने के लिये इस सूत्र का आरम्भ है। नहीं तो (लक्षणेत्थं० ॥ अ० १ । ४ । ९०) इस आगे के (१६३) सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा सिद्ध ही थी।

जो लक्षण अर्थ में वर्त्तमान अनु शब्द हो, तो वह कर्मप्रवचनीसंज्ञक हो।

जैसे—शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत्, इत्यादि। यहां संहिता शब्द में द्वितीया विभक्ति हुई है ॥ १५५ ॥

७८४–तृतीयार्थे ॥ १५६ ॥ अ० १ । ४ । ८५ ॥

जो तृतीया विभक्ति के अर्थ में वर्त्तमान अनु शब्द है, उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो।

जैसे—नदीमनुगच्छन्ति तृणानि—नदी के जल के साथ तृण चलते हैं, इत्यादि। यहां भी नदी शब्द से द्वितीया विभक्ति हुई ॥ १५६ ॥

७८५–हीने ॥ १५७ ॥ अ० १ । ४ । ८६ ॥

इस सूत्र में हीन शब्द छोटे का वाची है। सो एक की अपेक्षा में एक छोटा और बड़ा होता ही है।

जो हीन अर्थ में वर्त्तमान अनु हो, तो उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो।

जैसे—अनु यास्कं नैरुक्ताः। अनु गोतमं नैयायिकाः। अनु शाकटायनं वैयाकरणाः। यहां यास्क आदि शब्दों की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उन शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है ॥ १५७ ॥

७८६–उपोऽधिके च ॥ १५८ ॥ अ० १ । ४ । ८७ ॥

जो अधिक और चकार से हीन अर्थ में भी वर्त्तमान उप शब्द हो, तो उस की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो ॥ १५८ ॥

इस का फल—

७८७–यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ॥ १५९ ॥ अ० २ । ३ । ९ ॥

द्वितीया विभक्ति का अपवाद यह सूत्र है।

जिससे अधिक और जिसका ईश्वरवचन अर्थात् बहुतों के बीच में अधिक सामर्थ्य कहना हो, वहां कर्मप्रवचनीय शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति हो।

जैसे—प्रजायामुपराजः[1]।

'अधिक' ग्रहण इसलिये है कि—उपशाकटायनं वैयाकरणाः, यहां न हो, इत्यादि ॥ १५९ ॥

७८८—अपपरी वर्जने ॥ १६० ॥ अ० १ । ४ । ८८ ॥

वर्जन कहते हैं निषेध को, जो वर्जन अर्थ में वर्त्तमान अप और परि शब्द हैं, वे कर्मप्रवचनीयसंज्ञक हों ॥ १६० ॥

७८९—आङ् मर्य्यादावचने ॥ १६१ ॥ अ० १ । ४ । ८९ ॥

'मर्य्यादा' उस को कहते हैं कि यहां तक यह वस्तु है, उस का कहना 'मर्य्यादा-वचन' कहाता है। जो मर्य्यादावचन अर्थ में वर्त्तमान आङ् शब्द है, उस की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो ॥ १६१ ॥

इन दोनों का फल—

७९०—पञ्चम्यपाङ्परिभिः ॥ १६२ ॥ अ० २ । ३ । १० ॥

कर्मप्रवचनीयसंज्ञक अप, आङ् और परि शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है।

जैसे—अप ग्रामाद् वृष्टो मेघः। परि ग्रामाद्वा—ग्राम को छोड़ के मेघ वर्षा अर्थात् ग्राम पर नहीं वर्षा। मर्य्यादावचन में आङ्—आसमुद्रादार्य्यावर्त्तः—समुद्रपर्य्यन्त आर्य्यावर्त्त की अवधि है।

यहां 'वर्जन' ग्रहण इसलिये है कि—परिडतमप वदति। 'मर्य्यादा' ग्रहण इसलिये है कि—आगच्छन्ति वैयाकरणाः। यहां मर्य्यादा अर्थ के न होने से कर्म-प्रवचनीय संज्ञा न हुई।

तथा 'वचन' ग्रहण इसलिये है कि—अभिविधि अर्थ में भी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होवे—आकुमारमाकुमारेभ्यो यशः पाणिनेः। यहां अभिविधि अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो के दो प्रयोग बनते हैं। कारण यह है कि कर्मप्रवचनीयसंज्ञक आकार का पञ्चमी विभक्ति के साथ विकल्प करके अव्ययीभाव समास[3] होता है। जिस पक्ष में समास होजाता है वहां पञ्चमी विभक्ति के स्थान में अम्[4] आदेश होता है, और जहां अव्ययीभाव समास नहीं होता वहां पञ्चमी विभक्ति बनी रहती है ॥ १६२ ॥

---

१. यहां प्रजा के बीच राजा का अधिक सामर्थ्य है, इसलिये उप की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होकर उस के योग में प्रजा शब्द से सप्तमी विभक्ति हुई है ॥

२. शाकटायन से अन्य वैयाकरण न्यून हैं। यहां अधिक अर्थ के न होने से द्वितीया ही होती है ॥

३. अव्ययीभाव समास विकल्प—(आङ्मर्य्यादाऽभिविध्योः ॥ अ० २ । १ । १३) ॥

४. पञ्चमी के स्थान में अम्—(नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः ॥ अ० २ । ४ । ८३) ॥

७६१–लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्य्यनवः ॥ १६३ ॥ अ० १ । ४ । ६० ॥

जिससे अर्थ जाना जाय वह लक्षण, उस को इस प्रकार का कहना इत्थंभूताख्यान, भाग=अंश, वीप्सा=व्याप्ति इन अर्थों के जनानेवाले जो प्रति, परि और अनु शब्द हैं, वे कर्मप्रवचनीयसंज्ञक हों।

जैसे—लक्षण—वृक्षं प्रति वृक्षं परि वृक्षमनु विद्योतते विद्युत्—वृक्ष के सामने, ऊपर और पश्चात् बिजुली चमकती है। इत्थंभूताख्यान—परमात्मानं धर्मं च प्रति परमात्मानं परि परमात्मानमनु साधुरयं मनुष्यो वर्त्तते—सत्यप्रेम भक्ति से युक्त हो के यह मनुष्य परमात्मा और धर्म का उपासक है। भाग—यदत्र मां प्रति स्यात् मां परि स्यात् मामनु स्यात्—यहां जो कुछ मेरा भाग हो वह मुझको भी मिले, इत्यादि।

यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के दो प्रयोजन हैं—एक तो द्वितीया का होना; दूसरा षत्व का निषेध। जैसे—वीप्सा—वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति। परि सिञ्चति। अनु सिञ्चति।

(प्रश्न) परि शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति प्राप्त है, सो क्यों नहीं होती?

(उत्तर) जहां पञ्चमी का विधान है, वहां जो वर्जन अर्थवाले अप और परि एकत्र पढ़े हैं, उन्हीं का ग्रहण होता है, अन्य का नहीं ॥ १६३ ॥

७६२–अभिरभागे ॥ १६४ ॥ अ० १ । ४ । ६१ ॥

जो भाग को छोड़ के पूर्वसूत्र में कहे हुए अन्य लक्षण आदि तीन अर्थों में वर्त्तमान अभि शब्द हो, तो वह कर्मप्रवचनीयसंज्ञक हो।

जैसे—लक्षण—वृक्षमभि विद्योतते। इत्थंभूताख्यान—साधुर्बालो मातरमभि। वीप्सा—वृक्षं वृक्षमभिसिञ्चति, इत्यादि।

यहां 'अभाग' ग्रहण इसलिये है कि—यद्यत्रास्माकमभिष्यात्, इत्यादि। यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के न होने से षत्व हो जाता है ॥ १६४ ॥

७६३–प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः ॥ १६५ ॥ अ० १ । ४ । ६२ ॥

प्रतिनिधि कहते हैं किसी की अनुपस्थिति में दूसरे तुल्य स्वभाव गुण कर्म वा आकृतिवाले का स्थापन करना, और प्रतिदान अर्थात् एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु देना, जो इन दो अर्थों में वर्त्तमान प्रति शब्द हो, तो उस की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो ॥ १६५ ॥

इसका फल—

७६४–प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ॥ १६६ ॥ अ० २ । ३ । ११ ॥

जिस से प्रतिनिधि और प्रतिदान हों, वहां कर्मप्रवचनीय के योग में पंचमी विभक्ति हो।

जैसे—अभिमन्युरर्जुनात्प्रति—अभिमन्यु को अर्जुन के स्थान में रखा, यह प्रतिनिधि कहाता है। प्रतिदान—तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्—तिलों के बदले उड़द लेता है, यह प्रतिदान कहाता है।

यहां इन 'दोनों अर्थ' का ग्रहण इसलिये है कि—शास्त्राणि प्रत्येति, इत्यादि में प्रति शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा न हो ॥ १६६ ॥

७६५—अधिपरी अनर्थकौ ॥ १६७ ॥ अ० १ । ४ । ९३ ॥

धातु का जो अर्थ है उस से पृथक् अर्थ के कहनेवाले न हों, ऐसे जो अधि और परि शब्द हैं, उनकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो।

जैसे—कुतोऽध्यागम्यते। कुतः पर्य्यागम्यते। यहां पञ्चमी विभक्ति तो अपादान संज्ञा के होने से सिद्ध ही है, फिर कर्मप्रवचनीय संज्ञा करने का प्रयोजन यह है कि गति और उपसर्ग संज्ञा न हों।

यहां 'अनर्थक' ग्रहण इसलिये है कि—संज्ञामधिकुरुते, इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा न होके द्वितीया विभक्ति हो ॥ १६७ ॥

७६६—सुः पूजायाम् ॥ १६८ ॥ अ० १ । ४ । ९४ ॥

जो पूजा अर्थात् सत्कार अर्थ में वर्त्तमान सु शब्द है, उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो।

जैसे—सुस्तुतम्। सुस्मृतम्—अच्छी स्तुति और स्मरण आपने किया। यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्गकार्य्य षत्व नहीं हुआ।

'पूजा' ग्रहण इसलिये है कि—सुषिक्तं किं त्वया—क्या तूने अच्छा सींचा, इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं होती ॥ १६८ ॥

७६७—अतिरतिक्रमणे च ॥ १६९ ॥ अ० १ । ४ । ९५ ॥

जो अतिक्रमण अर्थात् उल्लङ्घन, च=और पूजा अर्थ में वर्त्तमान अति शब्द हो, तो वह कर्म्मप्रवचनीयसंज्ञक होवे।

जैसे—अतिक्रमण—अतिसिक्तमेव भवता—ठीक ठीक नहीं सींचा, किन्तु कीच कर दी। पूजा—अतिसेवितो गुरुस्त्वया—तू ने गुरु की अति सेवा की। यह पूजा कहाती है। इसका फल यह है कि षत्व का निषेध हो जाता है।

यहां इन 'दो अर्थों' का ग्रहण इसलिये है कि—सुष्टुतं मया—कोई अभिमान करता है कि मैंने बड़ी अच्छी स्तुति की, इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा के न होने से षत्व का निषेध न हुआ ॥ १६९ ॥

७६८—अपिः पदार्थसंभावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु ॥ १७० ॥ अ० १ । ४ । ९६ ॥

जो पदार्थ, संभावना, अन्ववसर्ग, गर्हा और समुच्चय इन पांच अर्थों में वर्त्तमान पद, उसके योग में अपि शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो।

जैसे—पदार्थ—सर्पिषोऽपि स्यात्—कुछ घृत भी होना चाहिये। संभावना=संभव होना–अपिसिंचेद्वृक्षशतम्—संभव है कि यह मनुष्य सौ वृक्ष तक सींच सके। अन्ववसर्ग=आज्ञा करना—अपिसिंच—तू सींच। गर्हा=निन्दा करना—धिक् ते जन्म यत्पाषाणमपिस्तौषि—तेरे मनुष्यजन्म को धिक्कार है, जो तू पत्थरों की भी स्तुति करता है। समुच्चय=क्रियाओं का इकट्ठा होना—अपिसेवस्व। अपिस्तुहि—सेवन भी कर, स्तुति भी कर।

इन सब अर्थों में अपि शब्द की उपसर्ग संज्ञा न होने के लिये कर्मप्रवचनीय संज्ञा की है, कि जिससे उक्त प्रयोगों में मूर्द्धन्य षकार न हो जावे।

यहां 'पदार्थादि अर्थों' का ग्रहण इसलिये है कि—अपिकृत्य, इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा होके ल्यप् का निषेध न हो ॥ १७० ॥

७९९–अधिरीश्वरे ॥ १७१ ॥ अ० १ । ४ । ९७ ॥

इस सूत्र में ईश्वर शब्द से समर्थ मनुष्य का ग्रहण समझना चाहिये। जो ईश्वर अर्थ में वर्त्तमान अपि शब्द है, उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो।

जैसे—अधिग्रामे क्षत्रियः—यह क्षत्रिय ग्राम में समर्थ अर्थात् उसका अधिष्ठाता है। यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के होने से सप्तमी विभक्ति[1] हो जाती है।

यहां 'ईश्वर' ग्रहण इसलिये है कि—खट्वामधिशेते। यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के नहीं होने से द्वितीया विभक्ति हुई है ॥ १७१ ॥

८००–विभाषा कृञि ॥ १७२ ॥ अ० १ । ४ । ९८ ॥

जो कृञ् धातु के प्रयोग में युक्त अधि शब्द हो, तो वह विकल्प करके कर्मप्रवचनीयसंज्ञक हो।

जैसे—अधिकृत्वा। अधिकृत्य। यहां जिस पक्ष[2] में कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है वहां समास के न होने से क्त्वा के स्थान में ल्यप् नहीं होता। और जिस पक्ष में कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं होती, उसमें समास हो के क्त्वा के स्थान में ल्यप् आदेश होजाता है। इसके अन्य भी बहुत प्रयोजन हैं ॥ १७२ ॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीव्याख्याकृतोऽष्टाध्याय्यां कारकीयोऽयं ग्रन्थः समाप्तः॥
वसुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे नभस्यस्यासिते दले। अष्टम्यां बुधवारेऽयं ग्रन्थः पूर्त्तिं गतः शुभः॥

संवत् १९३८ भाद्र वदी बुधवार के दिन यह कारकीय ग्रन्थ
श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने पूरा किया ॥

---

१. सप्तमी विभक्ति—(यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ॥ अ० २ । ३ । ९) सूत्र पूर्व (१५९) आये हैं ॥

२. जहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है, वहां गति संज्ञा नहीं होने पाती। उसके न होने (गतिश्च ॥ अ० १ । ४ । ६०) इससे समास भी नहीं होता। समास के न होने से (समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ॥ अ० ७ । १ । ३७) इससे ल्यप् भी नहीं होता ॥

भूमिका



यह अष्टाध्यायी का पांचवां भाग, और पठन पाठन में आठवां पुस्तक है। मैंने इसको बनाना आवश्यक इसलिये समझा है कि पढ़ने पढ़ानेवालों को 'स्त्री' और 'तद्धित' प्रत्ययों का भी बोध होना अवश्य उचित है। इसके जाने विना अन्य शास्त्रों का पढ़ना भी सुगम नहीं हो सकता। विशेष तो यह है कि संस्कृत में जैसा तद्धित प्रत्ययों से अधिक बोध होता है, वैसा अन्य से नहीं हो सकता। इसमें थोड़ा सा तो स्त्रीप्रत्यय का प्रकरण है, बाकी दोनों अध्याय तद्धित के ही हैं। इन में से मुख्य २ सूत्र, जो कि विशेष कर के वेदादि शास्त्रों और संस्कृत में उपयुक्त हैं, उन को लिख कर, भाष्य के वार्तिक, कारिका, उदाहरण, प्रत्युदाहरण भी लिखे हैं, जिस से 'स्त्री-प्रत्यय' और 'तद्धित' का भी यथावत् बोध हो।

[illegible]स में बहुत कर के 'उत्सर्ग' और 'अपवाद' के सूत्र हैं। जैसे—शैषिक के [illegible]पवाद सब तद्धित सूत्र, और अण् का अपवाद इञ्, और इञ् के अपवाद यञ् आदि प्रत्यय हैं। जो अपवाद सूत्र हैं, वे उत्सर्ग के विषय ही में प्रवृत्त होते हैं, उन से जो बाकी विषय रहता है, सो उत्सर्ग का होता है। परन्तु अपवाद सूत्र के विषय में उत्सर्ग सूत्र कभी प्रवृत्त नहीं होते। जैसे—चक्रवर्ती राजा के राज्य में माण्डलिक राजा, और माण्डलिक के राज्य में कुछ थोड़े ग्रामवाले, उनके विषय में कुछ थोड़ी भूमि वाले अपवादवत्, और बड़े राज्यवाले उत्सर्गवत् होते हैं, वैसे ही सूत्रों में भी समझना चाहिये।

कोटि २ धन्यवाद परमात्मा को देना चाहिये कि जिसने अपनी वेदविद्या को प्रसिद्ध कर के मनुष्यों का परमहित किया है, कि जिस को पढ़के महामुनि पाणिनि सदृश पुरुष हो गये। जिन्हों ने हज़ार श्लोकयुक्त छोटे ही ग्रंथ अष्टाध्यायी, और कुछ कम चौबीस हज़ार श्लोकों के बीच महाभाष्य ग्रंथ में समग्र वेद और लौकिक संस्कृत शब्दरूपी महासमुद्र को भी यथायोग्य सिद्ध करके विदित करा दिया है, कि जिस से एक शब्द भी बाकी नहीं रह गया। उन को भी अनेक धन्यवाद देना चाहिये, कि जो हम लोगों पर बड़ा उपकार कर गये हैं। वैसे उनको भी धन्यवाद देना चाहिये कि जो इन्हीं ग्रन्थों के पढ़ने पढ़ाने और प्रसिद्ध करके निष्कपट होकर तन मन धन से प्रवृत्त रहते हैं।

क्योंकि 'तदधीते तद्वेद' जो विद्वान् व्याकरण को पढ़ें और पढ़ावें उन्हीं को 'वैयाकरण' कहते हैं। और जो महायोगीप्रणीत संपूर्ण गुणयुक्त निर्दोष शास्त्र को छोड़ कर अपनी क्षुद्र बुद्धि से प्रतिष्ठा के लिये अकिंचित्कर वेदविद्यारहित 'सारस्वत-चन्द्रिका' 'मुग्धबोध' 'कातन्त्र' और 'सिद्धान्तकौमुदी' आदि अयुक्त ग्रन्थ रच के परमपुनीत ग्रन्थों की प्रवृत्ति के प्रतिबन्धक हो गये हैं, उन को न वैयाकरण और न हितकारी समझना चाहिये, प्रत्युत अहितकारी हैं। क्योंकि जो व्याकरण का संपूर्ण बोध तीन वर्षों में यथार्थ हो सकता है, उस को ऐसा कठिन और अव्यवस्थित किया है कि जिसको पचास वर्ष तक पढ़ के भी व्याकरण के पूर्ण विषय को यथार्थ नहीं जान सकते। उन के लिये धन्यवाद का विरुद्धार्थी शब्द देना ठीक है।

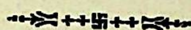
जो इस ग्रन्थ में सूत्र के आगे अङ्क है, सो इस की सूत्रसंख्या; और अ० संकेत से अष्टाऽध्यायी; एक (१) से अध्याय; दो (२) से पाद; तीन (३) से सूत्रसंख्या समझनी चाहिये॥

इति भूमिका॥



* ओ३म् *

अथ स्त्रैणताद्धितः



स्त्रियाम् ॥ १ ॥ अ० ४ । १ । ३ ॥

यह अधिकार सूत्र है । इस से आगे जो प्रत्यय विधान करेंगे, सो सब स्त्रीप्रकरण में जानना चाहिये ॥ १ ॥

अजाद्यतष्टाप् ॥ २ ॥ अ० ४ । १ । ४ ॥

जो स्त्री अभिधेय हो, तो अजादि गणपठित और अकारान्त प्रातिपदिकों से टाप् प्रत्यय हो ।

जैसे—अजादि—अजा; एडका; कोकिला; चटका इत्यादि । अदन्त—खट्वा; देवदत्ता; शाला; माला इत्यादि ।

अकारान्त शब्द जब स्त्रीलिङ्ग के वाचक होते हैं, तब सब से टाप् ही हो जाता है । अर्थात् स्त्रीलिङ्ग में अदन्त कोई शब्द नहीं रहता ॥ २ ॥

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्याऽत इदाप्यसुपः ॥ ३ ॥ अ० ७ । ३ । ४४ ॥

आप् परे हो, तो प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व जो अत् उस को इकार आदेश हो, परन्तु जो वह आप् सुप् से परे न हो तो ।

जैसे—जटिलिका; मुण्डिका; कारिका; हारिका; पाचिका; पाठिका इत्यादि ।

'प्रत्यय' ग्रहण इसलिये है कि—शक्नोतीति शका । 'ककार से पूर्व' इसलिये कहा है कि—नन्दना; रमणा । 'पूर्व को इत्व' इसलिये कहा है कि—कटुका, यहां पर को न हुआ । 'अकार को इत्व' इसलिये कहा है कि—गोका, यहां न हो । 'तपरकरण' इसलिये है कि—राका; धाका, यहां इत्व न हो । 'आप् के परे' इसलिये कहा है कि—कारकः; धारकः, यहां न हो । 'असुप्' इसलिये है कि—बहवः परिव्राजका अस्यामिति बहुपरिव्राजका वाराणसी ॥ ३ ॥

वा०—मामकनरकयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यमप्रत्ययस्थत्वात् ॥ ४ ॥

सुप्रहित आप् के परे मामक और नरक शब्द के अत् को भी इकार आदेश हो ।

जैसे—ममेयं मामिका; नरान् कायतीति नरिका ॥ ४ ॥

वा०—प्रत्ययप्रतिषेधे त्यकृत्यपोश्चोपसंख्यानम् + ॥ ५ ॥

सुप्रहित आप् परे हो तो त्यक् और त्यप् प्रत्ययान्त को इत् आदेश हो।

जैसे—दाक्षिणात्यिका; इहत्यिका × इत्यादि ॥ ५ ॥

न यासयोः ॥ ६ ॥ अ० ७। ३। ४५ ॥

स्त्रीविषय में या और सा इनके ककार से पूर्व अत् को इत् आदेश न हो।

जैसे—यका; सका। यहां 'यत्; तत्' शब्दों से 'अकच्' प्रत्यय हुआ है ॥ ६ ॥

वा०—यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम् ॥ ७ ॥

यत् और तत् शब्दों को जो इत्त्व का निषेध किया है, वहां त्यकन् प्रत्ययान्त को भी इत्त्व न हो।

जैसे—उपत्यका; अधित्यका * ॥ ७ ॥

वा०—पावकादीनां छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥ ८ ॥

पावका आदि वैदिक शब्दों में इत्त्व न हो।

जैसे—हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः; यासु अलोमकाः।

'छन्द' ग्रहण इसलिये है कि—पाविका; अलोमिका, यहां लोक में निषेध न हो जावे ॥ ८ ॥

वा०—आशिषि चोपसङ्ख्यानम् ॥ ९ ॥

आशीर्वाद अर्थ में वर्त्तमान शब्दों को इत्त्व न हो।

जैसे—जीवतात्=जीवका; नन्दतात्=नन्दका; भवतात्=भवका इत्यादि ॥ ९ ॥

वा०—उत्तरपदलोपे चोपसङ्ख्यानम् ॥ १० ॥

उत्तरपद का जहां लोप हो वहां इत्त्व न हो।

जैसे—देवदत्तिका=देवका; यज्ञदत्तिका=यज्ञका इत्यादि ॥ १० ॥

+ यह वार्तिक इसलिये कहा है कि (उदीचा०) इस अगले सूत्र से य पूर्व होने से विकल्प करके इत्त्व प्राप्त है, सो नित्य ही हो जावे ॥

× यहां दक्षिणा शब्द से (दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्) इस सूत्र से 'त्यक्' प्रत्यय, और इह अव्यय शब्द से (अव्ययात् त्यप्) इस सूत्र करके 'त्यप्' प्रत्यय हुआ है ॥

* यहां भी य पूर्व के होने से (उदीचा०) इसी अगले सूत्र से विकल्प प्राप्त है, सो निषेध कर दिया ॥

वा०—क्षिपकादीनां चोपसङ्ख्यानम् ॥ ११ ॥

क्षिपका आदि शब्दों में इत्त्व न हो।

जैसे—क्षिपका; ध्रुवका इत्यादि ॥ ११ ॥

वा०—तारका ज्योतिष्युपसङ्ख्यानम् ॥ १२ ॥

तारका शब्द जहां नक्षत्र का नाम हो, वहां उसको इकारादेश न हो।

जैसे—तारका।

'ज्योति' ग्रहण इसलिये है कि—तारिका दासी, यहां निषेध न हो ॥ १२ ॥

वा०—वर्णका तान्तव उपसङ्ख्यानम् ॥ १३ ॥

तन्तुओं के समुदाय में वर्तमान वर्णका शब्द को इत्त्व न हो।

जैसे—वर्णका प्रावरणभेदः।

'तान्तव' इसलिये कहा है कि—वर्णिका भागुरी लोकायते, यहां न हो ॥ १३ ॥

वा०—वर्त्तका शकुनौ प्राचामुपसङ्ख्यानम् ॥ १४ ॥

पक्षी का वाची जहां वर्त्तका शब्द हो, वहां उस को इकार आदेश न हो, प्राचीन आचार्यों के मत में।

जैसे—वर्त्तका शकुनिः। अन्यत्र वर्त्तिका।

'शकुनि' ग्रहण इसलिये है कि—वर्त्तिका भागुरी लोकायतस्य, यहां न हो ॥ १४ ॥

वा०—अष्टका पितृदैवत्ये ॥ १५ ॥

पितृ और देवताकर्म्म में वर्त्तमान अष्टका शब्द को इकार न हो।

जैसे—अष्टका।

'पितृदैवत्य' इसलिये है कि—अष्टिका खारी, यहां हो जावे ॥ १५ ॥

वा०—वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणामुपसङ्ख्यानम् ॥ १६ ॥

सूतका आदि शब्दों को विकल्प करके इकार हो।

जैसे—सूतिका, सूतका; पुत्रिका, पुत्रका; वृन्दारिका, वृन्दारका ॥ १६ ॥

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ॥ १७ ॥ अ० ७ । ३ । ४६ ॥

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जो स्त्रीविषयक यकार और ककार से पूर्व आकार के स्थान में अकार उस को इत् आदेश हो।

जैसे—यकारपूर्व—इभ्यका, इभ्यिका; क्षत्रियका, क्षत्रियिका। ककारपूर्व—चटकका, चटकिका; मूषकका, मूषकिका।

'आत्' ग्रहण इसलिये है कि—साङ्काश्ये भवा साङ्काश्यिका, यहां न हो। 'यकपूर्व' ग्रहण इसलिये है कि—अश्विका, यहां विकल्प न हो ॥ १७ ॥

वा०—यकपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

धातु के अन्त के यकार ककार जिस से पूर्व हों, ऐसे अकार को इकार हो। सूत्र से जो विकल्प प्राप्त है, उस का निषेध कर के नित्य विधान किया है।

जैसे—सुनयिका; सुशयिका; सुपाकिका; अशोकिका इत्यादि ॥ १८ ॥

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि ॥ १९ ॥ अ० ७ । ३ । ४७ ॥

स्त्रीविषय में जो भस्त्रा, एषा, जा, ज्ञा, द्वा, स्वा, ये शब्द नञ्पूर्वक हों, तो भी आकार के अकार को इत् आदेश न हो, उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में।

जैसे—भस्त्रका, भस्त्रिका; एषका, एषिका; जका, जिका; ज्ञका, ज्ञिका; द्वके, द्विके; स्वका, स्विका। नञ्पूर्वक—अभस्त्रिका, अभस्त्रका; अजका, अजिका; अज्ञका, अज्ञिका; अस्वका, अस्विका इत्यादि * ॥ १९ ॥

अभाषितपुंस्काच्च ॥ २० ॥ अ० ७ । ३ । ४८ ॥

जो अभाषितपुल्लिंग से परे, आत् के स्थान में अकार, उस को उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में इत् आदेश न हो।

जैसे—खट्वका, खट्विका; अखट्वका, अखट्विका; परमखट्वका, परमखट्विका इत्यादि ॥ २० ॥

आदाचार्य्याणाम् + ॥ २१ ॥ अ० ७ । ३ । ४९ ॥

आचार्यों के मत में, स्त्री विषय में अभाषितपुंस्क प्रातिपदिकों से परे जो आत् के स्थान में अकार, उस को आत् आदेश हो।

जैसे—खट्वाका, अखट्वाका; परमखट्वाका इत्यादि ॥ २१ ॥

ऋन्नेभ्यो ङीप् ॥ २२ ॥ अ० ४ । १ । ५ ॥

स्त्रीविषय में ऋकारान्त और नकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो।

जैसे—ऋकारान्त—कर्त्री; हर्त्री; पक्त्री इत्यादि। नकारान्त—हस्तिनी; मालिनी; दण्डिनी; छत्रिणी इत्यादि ॥ २२ ॥

---

* यहां एषा और द्वा इन दो नञ्पूर्वक शब्दों को इकारादेश इसलिये नहीं होता, कि जो समास की प्रातिपदिक संज्ञा होके विभक्ति आती है, उसी से परे टाप् होता है, इस कारण सुप्रहित आप् के न होने से प्राप्ति ही नहीं है ॥

+ यहां आचार्य्य शब्द के बहुवचन निर्देश से पाणिनि आचार्य्य का मत समझना चाहिये ॥

उगितश्च ॥ २३ ॥ अ० ४ । १ । ६ ॥

स्त्रीविषय में जो उगित् शब्द रूप है, उस से और तदन्त प्रातिपदिकों से भी ङीप् प्रत्यय हो।

जैसे—भवती; अतिभवती; पचन्ती; यजन्ती इत्यादि ॥ २३ ॥

वा०—धातोरुगितः प्रतिषेधः ॥ २४ ॥

उक् जिस का इत् गया हो, ऐसे क्विप् आदि अविद्यमान प्रत्ययान्त धातु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न हो।

जैसे—उखास्रत्; पर्णध्वत् + ब्राह्मणी ॥ २४ ॥

वा०—अञ्चतेश्चोपसङ्ख्यानम् ॥ २५ ॥

उगित् धातु से जो ङीप् का निषेध किया है, वहां अञ्चु का उपसङ्ख्यान, अर्थात् उससे ङीप् का निषेध न हो।

जैसे—प्राची; प्रतीची; उदीची ॥ २५ ॥

वनो र च ॥ २६ ॥ अ० ४ । १ । ७ ॥

स्त्रीलिंग में वन्नन्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो, और उस वन्नन्त को रेफ आदेश हो जावे।

जैसे—धीवरी; पीवरी; शर्वरी इत्यादि ॥ २६ ॥

वा०—वनो न हशः ॥ २७ ॥

हश् प्रत्याहार से परे जो वन्, तदन्त से ङीप् न हो।

जैसे—सहयुध्वा * ब्राह्मणी ॥ २७ ॥

पादोऽन्यतरस्याम् ॥ २८ ॥ अ० ४ । १ । ८ ॥

स्त्री अर्थ में पादशब्दान्त प्रातिपदिकों से विकल्प करके ङीप् प्रत्यय हो।

जैसे—द्विपदी, द्विपाद्; त्रिपदी, त्रिपाद्, चतुष्पदी, चतुष्पाद् इत्यादि ॥ २८ ॥

टाबृचि ॥ २९ ॥ अ० ४ । १ । ९ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान ऋग्वेदविषयक पादशब्दान्त प्रातिपदिकों से टाप् प्रत्यय हो।

+ यहां स्रंसु और ध्वंसु धातु से क्विप् प्रत्यय के परे सकार को पदान्त में दकार (वसुस्रंसुध्वंस्व०) इससे दकारादेश हो गया है ॥

* यहां सह उपपद युध् धातु से क्वनिप् प्रत्यय (सहे च) इस सूत्र से हुआ है, और हश् प्रत्याहार में धकार से परे वन् है ॥

जैसे—द्विपदा ऋक्; त्रिपदा ऋक्; चतुष्पदा ऋक्।

'ऋक्' ग्रहण इसलिये है कि—द्विपदी वृषली, यहां टाप् न हो ॥ २६ ॥

न षट्स्वस्रादिभ्यः ॥ ३० ॥ अ० ४ । १ । १० ॥

षट्संज्ञक और स्वसृ आदि गणपठित प्रातिपदिकों से स्त्रीप्रत्यय न हो।

जैसे—पञ्च ब्राह्मण्यः, सप्त नव दश वा। स्वसा; दुहिता; ननान्दा; याता; माता; तिस्रः; चतस्रः इत्यादि।

यहां ऋकारान्त शब्दों से ङीप्, और पञ्च आदि षट्संज्ञकों के अन्त्य नकार का लोप होके अदन्तों से टाप् प्रत्यय प्राप्त है, सो दोनों का निषेध समझना चाहिये ॥३०॥

मनः ॥ ३१ ॥ अ० ४ । १ । ११ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान मन्प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो।

जैसे—दामा, दामानौ, दामानः; पामा, पामानौ, पामान; सीमा, सीमानौ, सीमानः; अतिमहिमा; अतिमहिमानौ, अतिमहिमानः इत्यादि ॥ ३१ ॥

अनो बहुव्रीहेः ॥ ३२ ॥ अ० ४ । १ । १२ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान अन्नन्त बहुव्रीहि समास से ङीप् प्रत्यय न हो।

जैसे—सुपर्वा, सुपर्वाणौ, सुपर्वाणः; सुशर्म्मा, सुशर्माणौ, सुशर्म्माणः इत्यादि।

'बहुव्रीहि' ग्रहण इसलिये है कि—अतिक्रान्ता राजानमतिराज्ञी, यहां एकविभक्ति-समास में निषेध न लगे ॥ ३२ ॥

डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ॥ ३३ ॥ अ० ४ । १ । १३ ॥

जो मन्नन्त प्रातिपदिक और अन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकान्त बहुव्रीहिसमास हो, तो उनसे स्त्रीलिंग में विकल्प करके डाप् प्रत्यय होजाय।

जैसे—मन्नन्त—पामा, पामे, पामाः; सीमा, सीमे, सीमाः। पक्ष में—पामा, पामानौ, पामानः; सीमा, सीमानौ, सीमानः। अन्नन्त बहुव्रीहिसमास—बहवो राजानोऽस्यां नगर्य्यां सा बहुराजा नगरी, बहुराजे नगर्य्यौ, बहुराजा नगर्य्यः; बहुतक्षा, बहुतक्षे, बहुतक्षाः। पक्ष में—बहुराजा, बहुराजानौ, बहुराजानः; बहुतक्षा, बहुतक्षाणौ, बहुतक्षाणः।

यहां 'अन्तरस्याम्' ग्रहण इसलिये है कि—(वनो र च) इस सूत्र के विषय में भी विकल्प हो जावे। जैसे—बहुधीवा, बहुधीवरी; बहुपीवा, बहुपीवरी इत्यादि ॥ ३३ ॥

अनुपसर्जनात् ॥ ३४ ॥ अ० ४ । १ । १४ ॥

यहां से आगे जिस २ प्रत्यय का विधान करेंगे, सो २ अनुपसर्जन अर्थात् स्वार्थ में, मुख्य प्रातिपदिकों ही से होंगे। इसलिये यह अधिकार सूत्र है ॥ ३४ ॥

टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ॥ ३५ ॥
अ० ४ । १ । १५ ॥

यहां अदन्त की अनुवृत्ति सर्वत्र चली आती है। परन्तु जहां संभव होता है वहां विशेषण किया जाता है।

ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और क्वरप् ये प्रत्यय जिनके अन्त में हों उन, और अदन्त अनुपसर्जन टित् प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो।

जैसे—टित्—कुरुचरी; मद्रचरी। ढ—आग्नेयी; सौपर्णेयी; वैनतेयी। अण्—औपगवी; कुम्भकारी; नगरकारी। अञ्—औत्सी; औदपानी। द्वयसच्—उरुद्वयसी; जानुद्वयसी। दघ्नच्—ऊरुदघ्नी; जानुदघ्नी। मात्रच्—ऊरुमात्री; जानुमात्री। तयप्—द्वितयी; चतुष्टयी; पंचतयी। ठक्-आक्षिकी; शालाकिकी। ठञ्—लावणिकी। कञ्—यादृशी; तादृशी। क्वरप्—इत्वरी; नश्वरी।

यहां 'अनुपसर्जन' ग्रहण इसलिये है कि—बहुकुरुचरा; बहुमद्रचरा मथुरा इत्यादि से ङीप् न हो। यहां टित् आदि अदन्त शब्दों से टाप् प्राप्त है, इसलिये उसका अपवाद यह सूत्र समझना चाहिये ॥ ३५ ॥

वा०—नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम् ॥ ३६ ॥

नञ् स्नञ् ईकक् ख्युन् इन प्रत्ययान्त शब्दों, और तरुण तलुन शब्दों से स्त्रीविषय में ङीप् प्रत्यय होवे। जैसे—नञ्—स्त्रैणी; स्नञ्—पौंस्नी; ईकक्—शाक्तिकी, याष्टिकी; ख्युन्—आढ्यङ्करणी, सुभगङ्करणी; तरुणी; तलुनी इत्यादि।

यहां भी तदंत प्रातिपदिकों से टाप् ही प्राप्त है, उसका अपवाद यह भी वार्तिक है ॥ ३६ ॥

यञश्च ॥ ३७ ॥ अ० ४ । १ । १६ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—गार्गी; वात्सी इत्यादि। यहां गर्ग और वत्स शब्दों से यञ् प्रत्यय हुआ है ॥ ३७ ॥

वा०—अपत्यग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥ ३८ ॥

जिस यञ् प्रत्यय का पूर्व सूत्र में ग्रहण है, वह अपत्याधिकार का यञ् समझना। क्योंकि द्वैप्याः सिकताः * इत्यादि, यहां ङीप् न हो जावे ॥ ३८ ॥

---

* यहां शैषिक यञ् प्रत्यय (द्वीपादनुसमुद्रं यञ्) इससे हुआ है, इसलिये ङीप् न हुआ, उत्सर्ग टाप् हो गया ॥

२

प्राचां ष्फस्तद्धितः ॥ ३९ ॥ अ० ४ । १ । १७ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से प्राचीन आचार्य्यों के मत में तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय हो। जैसे—गार्ग्यायणी; वात्स्यायनी ‡। औरों के मत में—गार्गी; वात्सी ॥ ३९ ॥

सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः ॥ ४० ॥ अ० ४ । १ । १८ ॥

जो लोहित आदि कत पर्यन्त गर्गादिगणपठित अकारान्त शब्द हैं, उन से तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय होता है। जैसे—लोहितादि—लौहित्यायनी; शांशित्यायनी; बाभ्रव्यायणी। कतन्त—कात्यायनी इत्यादि ॥ ४० ॥

कौरव्यमाण्डूकाभ्याञ्च ॥ ४१ ॥ अ० ४ । १ । १९ ॥

कौरव्य और माण्डूक प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय हो। जैसे—कौरव्यायणी; माण्डूकायनी इत्यादि ॥ ४१ ॥

वा०—आसुरेरुपसङ्ख्यानम् ॥ ४२ ॥

आसुरि शब्द से भी तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय हो। जैसे—आसुरायणी।

यहां आसुरि शब्द में अपत्यसंज्ञक इञ् प्रत्यय हुआ है। पूर्व (प्राचां ष्फ०) इस सूत्र में 'तद्धित' ग्रहण का प्रयोजन भी यही है कि आसुरि शब्द के इकार का लोप होजावे ॥४२॥

वयसि प्रथमे ॥ ४३ ॥ अ० ४ । १ । २० ॥

जो प्रथम अवस्था विदित होती हो, तो अकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—कुमारी; किशोरी; कलभी; वर्करी।

यहां 'प्रथम अवस्था' ग्रहण इसलिये है कि—स्थविरा; वृद्धा इत्यादि से ङीप् न हो। 'अकारान्त' से इसलिये कहा है कि—शिशुः, यहां ङीप् प्रत्यय न हो ॥ ४३ ॥

वा०—वयस्यचरम इति वक्तव्यम् ॥ ४४ ॥

सूत्र से प्रथमावस्था में जो ङीप् कहा है, वहां चरम अर्थात् वृद्धाऽवस्था को छोड़ के कहना चाहिये। जैसे—वधूटी; चिरण्टी। ये प्राप्तयौवन द्वितीय अवस्था के नाम हैं। प्रथमाऽवस्था के कहने से यहां प्राप्ति नहीं थी ॥ ४४ ॥

‡ यहां ष्फ प्रत्यय के षित् होने से तदन्त से ङीप् प्रत्यय हो जाता है ॥

द्विगोः ॥ ४५ ॥ अ० ४ । १ । २१ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान द्विगुसंज्ञक अदन्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—पञ्चमूली; दशमूली; अष्टाध्यायी इत्यादि।

यहां 'अत्' ग्रहण इसलिये है कि—पञ्चबलिः, यहां ङीप् न हो ॥ ४५ ॥

अपरिमाणविस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि ॥ ४६ ॥
अ० ४ । १ । २२ ॥

जहां तद्धित का लुक् हुआ हो, वहां स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अपरिमाणान्त विस्तान्त आचितान्त और कम्बल्यान्त द्विगु प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो। जैसे—पञ्चभिरश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा, दशाश्वा, द्विवर्षा, त्रिवर्षा, द्विशता, त्रिशता; द्विविस्ता, त्रिविस्ता; द्व्याचिता, त्र्याचिता; द्विकम्बल्या, त्रिकम्बल्या।

यहां 'अपरिमाण' ग्रहण इसलिये है कि—द्व्याढकी, त्र्याढकी, यहां निषेध न हो। 'तद्धितलुक्' इसलिये है कि—पञ्चाश्वी, यहां भी होजावे ॥ ४६ ॥

काण्डान्तात्क्षेत्रे ॥ ४७ ॥ अ० ४ । १ । २३ ॥

तद्धित का लुक् हुआ हो, तो क्षेत्रवाची स्त्रीलिंग में वर्त्तमान काण्ड शब्दान्त द्विगु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न हो। जैसे द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः सा द्विकाण्डा।

'क्षेत्र' इसलिये कहा है कि—द्विकाण्डी रज्जुः, यहां निषेध न हो। 'काण्ड' शब्द के अपरिमाणवाची होने से पूर्वसूत्र से ही निषेध हो जाता, फिर क्षेत्रग्रहण नियमार्थ है ॥ ४७ ॥

पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम् ॥ ४८ ॥ अ० ४ । १ । २४ ॥

जो तद्धित का लुक् हुआ हो, तो प्रमाण अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पुरुषान्त द्विगु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे—द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः परिखायाः सा द्विपुरुषा, द्विपुरुषी; त्रिपुरुषा, त्रिपुरुषी *।

यहां 'प्रमाण' ग्रहण इसलिये है कि—द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रीता द्विपुरुषा; त्रिपुरुषा, यहां विकल्प करके ङीप् न हो। और 'तद्धितलुक्' इसलिये है कि—द्विपुरुषी; त्रिपुरुषी, यहां समाहार में निषेध न होवे ॥ ४८ ॥

---

* यहां अपरिमाणान्त पुरुष शब्द से नित्य ही निषेध प्राप्त है, इसलिये यह अप्राप्त विभाषा समझनी चाहिये ॥

बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ॥ ४६ ॥ अ० ४ । १ । २५ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—घट इव ऊधो यस्याः सा घटोध्नी; कुण्डोध्नी † ।

यहां 'बहुव्रीहि' ग्रहण इसलिये है कि—प्राप्ता ऊधः प्राप्तोधाः, यहां न हुआ ॥ ४६॥

सङ्ख्याऽव्ययादेर्ङीप् ॥ ५० ॥ अ० ४ । १ । २६ ॥

संख्या और अव्यय जिस के आदि में हों, ऐसा जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक है, उस से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—संख्या—द्व्यूध्नी; त्र्यूध्नी। अव्यय—अत्यूध्नी; निरूध्नी।

यहां 'आदि' ग्रहण से द्विविधोध्नी; त्रिविधोध्नी इत्यादि से भी ङीप् होजाता है ॥ ५०॥

दामहायनान्ताच्च ॥ ५१ ॥ अ० ४ । १ । २७ ॥

संख्या जिस के आदि में, दामन् तथा हायन अन्त में हों, ऐसे स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होवे। जैसे—द्वेदाम्नी यस्याः सा द्विदाम्नी बड़वा; त्रिदाम्नी। द्विहायनी; त्रिहायणी; चतुर्हायणी ‡ इत्यादि।

(क्वचिदेकदेशो०) इस परिभाषा के प्रमाण से यहां अव्यय की अनुवृत्ति नहीं आती ॥ ५१ ॥

अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ॥ ५२ ॥ अ० ४ । १ । २८ ॥

जो अन्नन्त उपधालोपी बहुव्रीहि प्रातिपदिक है, उससे स्त्रीलिङ्ग में विकल्प करके ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—बहुराजा, बहुराज्ञी, बहुराजे; बहुतक्षा, बहुतक्ष्णी, बहुतक्षे +।

'अन्नन्त' ग्रहण इसलिये है कि—बहुमत्स्या, यहां ङीप् न हो। और 'उपधालोपी' इसलिये है कि—सुपर्वा, सुपर्वाणौ, सुपर्वाणः इत्यादि में न हो ॥ ५२ ॥

---

† ऊधस् गाय आदि के ऐन को कहते हैं, कि जो दूध का स्थान है। इस ऊधस् शब्द से अब समासान्त 'नङ्' प्रत्यय होने से अन्नन्त हो जाता है, तब (अनो बहु०) इस पूर्वलिखित सूत्र से डाप् और निषेध प्राप्त होता है, उसका यह अपवाद है ॥

‡ यहां हायन शब्द अवस्था अर्थ में समझना चाहिये, सो चेतन के साथ सम्बन्ध रखती है, इसीलिये द्विहायना शाला इत्यादि में ङीप् नहीं होता ॥

+ यहां अन्नन्त बहुव्रीहि प्रातिपदिकों से पक्ष में (डाबुभाभ्या०) इस उक्त सूत्र से डाप् प्रत्यय विकल्प करके हो जाता है। इन दो विकल्पों के होने से तीन प्रयोग हो जाते हैं ॥

नित्यं संज्ञाछन्दसोः ॥ ५३ ॥ अ० ४ । १ । २६ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अन्नन्त उपधालोपी बहुव्रीहि प्रातिपदिक से संज्ञा और वेद-विषय में ङीप् प्रत्यय नित्य ही होवे । जैसे—संज्ञा में—सुराज्ञी; अतिराज्ञी नाम ग्रामः । छन्द में—गौः पञ्चदाम्नी; द्विदाम्नी; एकदाम्नी; एकमूर्ध्नी; समानमूर्ध्नी ।

पूर्वसूत्र में जो विकल्प है, उसके नित्यविधान के लिये यह अपवाद सूत्र है । जहां संज्ञा और वैदिकप्रयोग न होवें, वहां ङीप् न होगा । जैसे—सुराजा इत्यादि ॥ ५२ ॥

केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्य्यकृतसुमङ्गलभेषजाच्च ॥५४॥ अ० ४ । १ । ३० ॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान केवल मामक भागधेय पाप अपर समान आर्यकृत सुमङ्गल और भेषज शब्द हों, तो इन प्रातिपदिकों से संज्ञा और वेदविषय में ङीप् प्रत्यय हो । जैसे—केवली; मामकी; मित्रावरुणयोर्भागधेयी; पापी; उताऽपरीभ्यो मघवा विजिग्ये; समानी; आर्य्यकृती; सुमङ्गली; भेषजी ।

जहां संज्ञा और वेदविषय न हों, वहां टाप् होकर केवला इत्यादि प्रयोग होंगे ॥५४॥

रात्रेश्चाजसौ ॥ ५५ ॥ अ० ४ । १ । ३१ ॥

जस् विभक्ति से अन्यत्र स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान रात्रि शब्द से संज्ञा और वेदविषय में ङीप् प्रत्यय हो । जैसे—या रात्री सृष्टा; रात्रीभिः ।

'जस् में निषेध' इसलिये है कि—यास्ता रात्रयः, यहां ङीप् न होवे ॥ ५५ ॥

वा०—अजसादिष्विति वक्तव्यम् ॥ ५६ ॥

केवल जस् के परे जो ङीप् का निषेध किया है, सो जस् आदि के परे निषेध करना चाहिये । जैसे—रात्रिं सहोषित्वा इत्यादि से भी ङीप् न होवे ॥ ५६ ॥

अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ॥ ५७ ॥ अ० ४ । १ । ३२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान वैदिक प्रयोगों में अन्तर्वत् और पतिवत् शब्द से ङीप् और नुक् का आगम भी हो ॥ ५७ ॥

का०—अन्तर्वत्पतिवतोस्तु मतुब्वत्वे निपातनात् ।
गर्भिण्यां जीवत्पत्यां च वा छन्दसि तु नुग्भवेत् ॥५८॥

अन्तर्वत् शब्द में मतुप् और पतिवत् शब्द में मतुप् के मकार को वकारादेश निपातन किया है। तथा अन्तर्वत् शब्द से गर्भिणी अर्थ में, और पतिवत् शब्द से जिस का पति जीता हो, वहां वैदिक प्रयोग विषय में विकल्प करके नुक् और ङीप् नित्य ही होवे। जैसे—सान्तर्वत्नी देवानुपैत्, सान्तर्वती देवानुपैत्; पतिवत्नी तरुणवत्सा, पतिवती तरुणवत्सा ॥ ५८ ॥

पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ॥ ५६ ॥ अ० ४ । १ । ३३ ॥

जो यज्ञ का संयोग हो, तो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पति शब्द को नकारादेश और ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—यजमानस्य पत्नी; पत्नि वाचं यच्छ।

यहां 'यज्ञसंयोगे' इसलिये कहा है कि—ग्रामस्य पतिरियं ब्राह्मणी, यहां न हो ॥५६॥

विभाषा सपूर्वस्य * ॥ ६० ॥ अ० ४ । १ । ३४ ॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पूर्वपद सहित पति शब्द हो, तो उस को नकारादेश विकल्प करके हो। ङीप् तो नकारान्त के होने से सिद्ध ही है। जैसे—वृद्धपतिः, वृद्धपत्नी; स्थूलपतिः, स्थूलपत्नी; जीवपतिः, जीवपत्नी।

यहां 'सपूर्व' ग्रहण इसलिये है कि—पतिरियं ब्राह्मणी ग्रामस्य, यहां ङीप् न हुआ ॥ ६० ॥

नित्यं सपत्न्यादिषु ॥ ६१ ॥ अ० ४ । १ । ३५ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान सपत्नी आदि प्रातिपदिकों में पति शब्द को नकारादेश नित्य ही निपातन किया है। जैसे—समानः पतिरस्याः सा सपत्नी; एकपत्नी; वीरपत्नी इत्यादि ॥ ६१ ॥

पूतक्रतोरै च ॥ ६२ ॥ अ० ४ । १ । ३६ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पूतक्रतु शब्द से ङीप् और उस को ऐकारादेश भी होवे। जैसे—पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी।

यहाँ से लेके तीन सूत्रों में जो प्रत्ययविधान है, सो पुंयोग अर्थात् उस स्त्री के साथ पुरुषसंबन्ध की विवक्षा हो तो होवे। जैसे—यया हि पूताः क्रतवः पूतक्रतुः सा भवति यहां पुंयोग की विवक्षा नहीं, इस से ङीप् न हुआ ॥ ६२ ॥

* यह अप्राप्तविभाषा इसलिये समझनी चाहिये कि यज्ञसंयोग की अनुवृत्ति इस सूत्र में नहीं आती, अन्य किसी से नुक् पाता नहीं ॥

वृषाकप्यग्निकुसितकुसीदानामुदात्तः ॥ ६३ ॥ अ० ४ । १ । ३७ ॥

स्त्रीलिङ्ग और पुरुष के योग में वृषाकपि अग्नि कुसित और कुसीद शब्दों को ऐकारादेश, और इन से ङीप् प्रत्यय हो, और वह ङीप् प्रत्यय उदात्त भी होवे। जैसे—वृषाकपेः स्त्री वृषाकपायी; अग्नेः स्त्री अग्नायी; कुसितस्य स्त्री कुसितायी; कुसीदस्य स्त्री कुसीदायी।

यहां 'पुंयोग' इसलिये है कि—वृषाकपिः स्त्री इत्यादि में ङीप् न हो ॥ ६३ ॥

मनोरौ वा * ॥ ६४ ॥ अ० ४ । १ । ३८ ॥

पुंयोग में और स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मनु प्रातिपदिक से विकल्प करके ङीप् प्रत्यय होवे, और मनु शब्द को औकार, और पक्ष में ऐकारादेश हो, और वह उदात्त भी हो जावे। जैसे—मनोः स्त्री मनायी, मनावी, मनुः, ये तीन प्रयोग होते हैं ॥ ६४ ॥

वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ॥ ६५ ॥ अ० ४ । १ । ३९ ॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान वर्णवाची अनुदात्त तकारोपध प्रातिपदिक हैं, उन से विकल्प करके ङीप्, और उन के तकार को नकारादेश भी होवे। जैसे—एता, एनी; श्येता, श्येनी; हरिता, हरिणी।

यहां 'वर्णवाची से' इसलिये कहा है कि—प्रहृता, यहां ङीप् और नकार न होवे। 'अनुदात्त' इसलिये है कि—श्वेता, यहां न हो। 'तोपध' इसलिये है कि—अन्य प्रातिपदिक से ङीप् न हो। अदन्त की अनुवृत्ति इसलिये आती है कि—शितिर्ब्राह्मणी, यहां न हो ॥ ६५ ॥

वा०—पिशङ्गादुपसङ्ख्यानम् ॥ ६६ ॥

पिशङ्ग शब्द तोपध नहीं है, इस कारण ङीप् नहीं पाता था, इसलिये इसका उपसङ्ख्यान है। पिशङ्ग शब्द से भी स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होवे। जैसे—पिशङ्गी ॥ ६६ ॥

वा०—असितपलितयोः प्रतिषेधः ॥ ६७ ॥

असित और पलित प्रातिपदिकों से ङीप् और इनके तकार को नकारादेश न होवे। सूत्र से पाया था, उस का निषेधरूप यह अपवाद है। जैसे—असिता; पलिता ॥ ६७ ॥

---

* यह अप्राप्तविभाषा इस प्रकार है कि जो कार्य्य इस सूत्र से होते हैं, वे किसी से प्राप्त नहीं ॥

वा०—छन्दसि क्रमेके ॥ ६८ ॥

वेद में असित और पलित शब्द के तकार के स्थान में क्रम् आदेश और ङीप् प्रत्यय हो, ऐसी इच्छा कोई आचार्य करते हैं। जैसे—असिक्नी; पलिक्नी ॥ ६८ ॥

अन्यतो ङीष् ॥ ६९ ॥ अ० ४ । १ । ४० ॥

तोपध से भिन्न अनुदात्त वर्णवाची अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—सारङ्गी; कल्माषी; शबली इत्यादि।

यहां 'अनुदात्त' ग्रहण इसलिये है कि—कृष्णा; कपिला इत्यादि से न हो ॥ ६९ ॥

षिद्गौरादिभ्यश्च ॥ ७० ॥ अ० ४ । १ । ४१ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अकारान्त षित् और गौर आदि प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—नर्तकी; खनकी; रजकी। गौरी; मत्सी; शृङ्गी इत्यादि ॥ ७० ॥

जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्त्यमत्राऽऽवपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनाऽयोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु ॥ ७१ ॥ अ० ४ । १ । ४२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अकारान्त जानपद आदि ११ ग्यारह शब्दों से वृत्ति आदि ग्यारह (११) अर्थों में यथासंख्य करके ङीष् प्रत्यय होवे।

जैसे—जानपदी वृत्तिः, जानपदी रीतिः (यहां ङीष् होने से स्वर में भेद हो जाता है)। कुण्डी (अमत्रपात्रम्) अन्यत्र कुण्डा। गोणी (आवपन अर्थात् माप हो तो) अन्यत्र गोणा। स्थली (अकृत्रिमा भूमिः) अन्यत्र स्थला। भाजी (श्राणा=पकाने के योग्य शाक) अन्यत्र भाजा। नागी (स्थौल्यम्=अति मोटी हो तो) अन्यत्र नागा। काली (जो वर्ण हो) अन्यत्र काला। नीली (जो वस्त्र हो) नहीं तो नीला शाटी। कुशी (जो लोहे का कुछ विकार हो) नहीं तो कुशा। कामुकी (जो मैथुन की इच्छा रखती हो) नहीं तो कामुका। कबरी (जो बालों का सम्हालना हो) नहीं तो कबरा ॥ ७१ ॥

वा०—नीलादोषधौ ॥ ७२ ॥

नील शब्द से ओषधि अर्थ में भी ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—नीली ओषधिः ॥ ७२ ॥

वा०—प्राणिनि च ॥ ७३ ॥

प्राणी अर्थ में भी नील शब्द से ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—नीली गौः; नीली वडवा; नीली गवयी इत्यादि ॥ ७३ ॥

वा०—वा संज्ञायाम् ॥ ७४ ॥

संज्ञा अर्थ में विकल्प करके ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—नीली, नीला इत्यादि ॥ ७४ ॥

शोणात्प्राचाम् ॥ ७५ ॥ अ० ४ । १ । ४३ ॥

प्राचीन आचार्यों के मत में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान शोण प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होवे, अन्य आचार्य्यों के मत में नहीं। जैसे—शोणी, शोणा बडवा ॥ ७५ ॥

वोतो गुणवचनात् ॥ ७६ ॥ अ० ४ । १ । ४४ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान गुणवचन उकारान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय विकल्प करके हो जावे। जैसे—पट्वी, पटुः; मृद्वी, मृदुः इत्यादि।

'उत्' ग्रहण इसलिये है कि—शुचिः, यहां ङीष् न हो। 'गुणवचन' ग्रहण इसलिये है कि—आखुः, यहां न हो ॥ ७६ ॥

वा०—गुणवचनान्ङीबाद्युदात्तार्थम् ॥ ७७ ॥

गुणवचन प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय कहना चाहिये, क्योंकि ङीष् के होने से अन्तोदात्त स्वर प्राप्त है, सो आद्युदात्त होवे। जैसे—पट्वी; तन्वी इत्यादि।

यह विधान सर्वत्र नहीं, किन्तु जहां आद्युदात्त प्रयोग आवे वहीं ॥ ७७ ॥

वा०—खरुसंयोगोपधानां प्रतिषेधः ॥ ७८ ॥

खरु और संयोग जिस की उपधा में हो, ऐसे गुणवचन उकारान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय न हो। जैसे—खरुरियं ब्राह्मणी; पाण्डुरियं ब्राह्मणी इत्यादि ॥७८॥

बह्वादिभ्यश्च ॥ ७९ ॥ अ० ४ । १ । ४५ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान बहु आदि प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय विकल्प करके हो। जैसे—बह्वी, बहुः; पद्धती, पद्धतिः; अङ्कती, अङ्कतिः इत्यादि ॥ ७९ ॥

नित्यं छन्दसि ॥ ८० ॥ अ० ४ । १ । ४६ ॥

वेद में बहु आदि शब्दों से ङीष् प्रत्यय नित्य ही हो। जैसे—बह्वीषु हित्वा प्रपिबन्। बह्वी नाम ओषधी भवति ॥ ८० ॥

भुवश्च ॥ ८१ ॥ अ० ४ । १ । ४७ ॥

वेद में भू प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—विभ्वी च; प्रभ्वी च; सुभ्वी च इत्यादि ॥ ८१ ॥

पुंयोगादाख्यायाम् ॥ ८२ ॥ अ० ४ । १ । ४८ ॥

पुंसा योगः पुंयोगः। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पुरुष के योग के कहने में प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—गणकस्य स्त्री गणकी; महामात्री; प्रष्ठी; प्रचरी इत्यादि।

यहां 'पुंयोग' ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्ता, यहां ङीष् न हो ॥ ८२ ॥

वा०-गोपालिकादीनां प्रतिषेधः ॥ ८३ ॥

पुंयोग के कथन में गोपालिका आदि शब्दों से ङीष् प्रत्यय न हो। जैसे—गोपालकस्य स्त्री गोपालिका; पशुपालिका इत्यादि ॥ ८३ ॥

वा०-सूर्य्याद्देवतायां चाब् वक्तव्यः ॥ ८४ ॥

सूर्य्य शब्द से देवता अर्थ में चाप् प्रत्यय हो। जैसे—सूर्य्यस्य स्त्री देवता सूर्य्या।

यहां 'देवता' ग्रहण इसलिये है कि—सूरी, यहां न हो ॥ ८४ ॥

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाऽऽचार्य्याणामानुक् ॥ ८५ ॥ अ० ४ । १ । ४९ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान इन्द्रादि बारह (१२) प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय, और इन्द्र आदि शब्दों को आनुक् का आगम भी हो। जैसे—इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी; वरुणानी; भवानी; शर्वाणी; रुद्राणी; मृडानी + ॥ ८५ ॥

वा०-हिमारण्ययोर्महत्त्वे ॥ ८६ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान हिम और अरण्य प्रातिपदिकों से महत्त्व अर्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम हो। जैसे—महद्धिमं हिमानी; महदरण्यमरण्यानी ॥ ८६ ॥

+ यहां इन्द्रादि शब्दों से पुंयोग में ङीष् प्रत्यय तो पूर्व सूत्र से प्राप्त ही है, केवल आनुक् का आगम होने के लिये यह सूत्र है। सो सूत्र से सामान्य अर्थ में कार्य्य विधान है, इसलिये हिम आदि छः शब्दों से विशेष अर्थों में वार्तिकों से विधान किया है ॥

वा०—यवाद्दोषे ॥ ८७ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यव प्रातिपदिक से दुष्टता अर्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक का आगम हो। जैसे—दुष्टो यवो यवानी ॥ ८७ ॥

वा०—यवनाल्लिप्याम् ॥ ८८ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यवन प्रातिपदिक से लिपि अर्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम होवे। जैसे—यवनानी लिपिः ॥ ८८ ॥

वा०—उपाध्यायमातुलाभ्यां वा * ॥ ८९ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान उपाध्याय और मातुल प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम विकल्प करके होवे। जैसे—उपाध्यायानी, उपाध्यायी; मातुलानी, मातुली ॥ ८९ ॥

वा०—आचार्य्यादणत्वं च ॥ ९० ॥

यहां पूर्व वार्त्तिक से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान आचार्य्य प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम भी विकल्प करके होवे, और आनुक् के नकार को णत्व प्राप्त है सो न हो। जैसे—आचार्य्यानी, आचार्य्या। यहां पक्ष में टाप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९० ॥

वा०—अर्य्यक्षत्रियाभ्यां वा ‡ ॥ ९१ ॥

यहां फिर विकल्प ग्रहण इसलिये है कि णत्व की अनुवृत्ति न आवे।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अर्य्य और क्षत्रिय प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम विकल्प करके होवे। जैसे—अर्य्याणी, अर्य्या; क्षत्रियाणी, क्षत्रिया ॥ ९१ ॥

वा०—मुद्गलाच्छन्दसि लिच्च ॥ ९२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मुद्गल प्रातिपदिक से वैदिक प्रयोग विषय में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम हो, और ङीष् प्रत्यय लित् भी हो जावे। जैसे—रथीरभून्मुद्गलानी गविष्ठी ॥ ९२ ॥

क्रीतात् करणपूर्वात् ॥ ९३ ॥ अ० ४ । १ । ५० ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान करणकारकवाची पूर्वपदयुक्त क्रीत शब्दान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—वस्त्रेण क्रीता सा वस्त्रक्रीती; वसनक्रीती; रथक्रीती इत्यादि।

---

* इस वार्तिक में उपाध्याय शब्द से अपूर्व विधान और मातुल शब्द तो सूत्र में पढ़ा ही है ॥

‡ यहां से लेके दोनों वार्तिक अपूर्व विधायक इसलिये हैं कि अर्य्यादि शब्द सूत्र में नहीं पढ़े हैं ॥

यहां 'करण' कारक का ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्तक्रीता, इत्यादि से ङीष् न हो॥ ६३॥

क्तादल्पाख्यायाम् ॥ ६४ ॥ अ० ४ । १ । ५१ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अल्पाख्या अर्थ में करणकारक जिस के पूर्व हो ऐसे क्तान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—अभ्रविलिप्ती द्यौः; सूपविलिप्ती स्थाली इत्यादि।

यहां 'अल्पाख्या' ग्रहण इसलिये है कि—चन्दनाऽनुलिप्ता ब्राह्मणी, इत्यादि से ङीष् न होवे ॥ ६४ ॥

बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् ॥ ६५ ॥ अ० ४ । १ । ५२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान बहुव्रीहि समास में अन्तोदात्त क्तान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—शंखो भिन्नो यया सा शंखभिन्नी; ऊरुभिन्नी; गलोत्कृत्ती; केशलूनी इत्यादि।

यहां 'बहुव्रीहि' ग्रहण इसलिये है कि—पद्भ्यां पतिता पादपतिता, यहां ङीष् प्रत्यय न होवे ॥ ६५ ॥

वा०—अन्तोदात्ताजातप्रतिषेधः ॥ ६६ ॥

अन्तोदात्त बहुव्रीहि प्रातिपदिकों से जो ङीष् कहा है, सो जात शब्द जिस के अन्त में उस प्रातिपदिक से न हो। यह वार्त्तिक सूत्र का निषेधरूप अपवाद है। जैसे—दन्तजाता; स्तनजाता इत्यादि ॥ ६६ ॥

वा०—पाणिगृहीत्यादीनामर्थविशेषे ॥ ६७ ॥

विशेष अर्थात् जहां वेदोक्तरीति से पाणिग्रहण अर्थात् विवाह किया जावे, वहां पाणिगृहीती आदि शब्दों में ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—पाणिगृहीती भार्य्या।

और जहां किसी प्रकार पाणिग्रहण कर लेवे वहां पाणिगृहीता टाबन्त ही प्रयोग होवे॥६७॥

वा०—अबहुनञ्सुकालसुखादिपूर्वादिति वक्तव्यम् ॥ ६८ ॥

सूत्र ६५ में जो अन्तोदात्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीष् कहा है, सो यदि बहु नञ् सुकाल और सुखादि शब्द पूर्व हों तो न हो। जैसे—बहु—बहुकृता। नञ्—अकृता। सु—सुकृता। काल—मासजाता; संवत्सरजाता। सुखादि—सुखजाता; दुःखजाता इत्यादि॥६८॥

अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा ॥ ६९ ॥ अ० ४ । १ । ५३ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान स्वांग पूर्वपद से भिन्न अन्तोदात्त क्तान्त बहुव्रीहि समासयुक्त प्रातिपदिक से विकल्प करके ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—शार्ङ्गजग्धी, शार्ङ्गजग्धा; पलाण्डुभक्षिती, पलाण्डुभक्षिता; सुरापीती, सुरापीता।

यहां 'अस्वांग' पूर्वपद' इसलिये है कि—दन्तभिन्नी, यहां विकल्प न हो। और 'अन्तोदात्त' इसलिये है कि—वस्त्रछन्ना, यहां ङीष् न हो ॥ ९९ ॥

वा०—बहुलं संज्ञाछन्दसोः ॥ १०० ॥

संज्ञा और वैदिकप्रयोग विषय में वर्त्तमान क्तप्रत्ययान्त प्रातिपदिक से बहुल करके ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—प्रवृद्धविलूनी, प्रवृद्धविलूना। प्रवृद्धा चासौ विलूना चेति नायं बहुव्रीहिः। यहां बहुव्रीहि समास नहीं किन्तु कर्मधारय है ॥ १०० ॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ॥ १०१ ॥ अ० ४।१।५४ ॥

यहां बहुव्रीहि अन्तोदात्त क्तान्त ये तीन पद तो छूट गये, परन्तु एक विकल्प की अनुवृत्ति आती है।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान जिस के स्वांगवाची उपसर्जन संयोगोपध से भिन्न प्रातिपदिक अन्त में हो उस से ङीष् प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे—चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा; अतिक्रान्ता केशानतिकेशी, अतिकेशा माला।

यहां 'स्वांग' ग्रहण इसलिये है कि—बहुयवा *। 'उपसर्जन' इसलिये है कि—अशिखा। और 'असंयोगोपध' ग्रहण इसलिये है कि—सुगुल्फा; सुपार्श्वा, यहां ङीष् न हुआ ॥ १०१ ॥

वा०—अङ्गगात्रकण्ठेभ्य इति वक्तव्यम् ॥ १०२ ॥

पूर्व सूत्र से संयोगोपध के निषेध से अङ्ग आदि का निषेध प्राप्त है, उस का अपवादविधायक यह वार्त्तिक है।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जो स्वांगवाची उपसर्जन अंग गात्र और कण्ठ प्रातिपदिक हैं, उनसे ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—मृद्वंगी, मृद्वंगा; सुगात्री, सुगात्रा; स्निग्धकण्ठी, स्निग्धकण्ठा इत्यादि ॥ १०२ ॥

नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च ‡ ॥१०३॥ अ० ४।१।५५॥

विकल्प की अनुवृत्ति यहां भी आती है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान बहुव्रीहि समास में जिस के अन्त में स्वांगसंज्ञक उपसर्जन अर्थात् अप्रधानार्थवाची नासिका, उदर, ओष्ठ, जंघा, दन्त, कर्ण वा शृङ्ग शब्द हो, उस प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय विकल्प करके होवे।

* यहां स्वांग उस को कहते हैं कि जिस समासान्त समुदाय प्रातिपदिक से प्रत्ययविधान हो उस के वाच्य अर्थ का जो शरीरावयव होवे। जैसे—बिम्बोष्ठी, बिम्ब के समान जिस के ओष्ठ हों। यहां ओष्ठ स्वांग है, इसका विशेष व्याख्यान महाभाष्य में है ॥

‡ इस सूत्र में नासिका और उदर दो शब्दों से तो बह्वच् के होने से अगले सूत्र से ङीष् का निषेध प्राप्त और ओष्ठ आदि शब्दों से संयोगपध के होने से ङीष् का निषेध पाता है, उन दोनों का विधायक यह अपवाद सूत्र है ॥

जैसे—तुंगनासिकी, तुंगनासिका; कृशोदरी, कृशोदरा; बिम्बोष्ठी, बिम्बोष्ठा; दीर्घजंघी, दीर्घजंघा; समदन्ती, समदन्ता; चारुकर्णी, चारुकर्णा; तीक्ष्णशृङ्गी, तीक्ष्णशृङ्गा इत्यादि ॥ १०३ ॥

वा०—पुच्छाच्च ॥ १०४ ॥

पुच्छ शब्द भी संयोगोपध स्वांगवाची है, इस कारण निषेध का बाधक यह वार्त्तिक है। पुच्छान्त स्वांगवाची प्रातिपदिक से विकल्प करके ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—कल्याणपुच्छी, कल्याणपुच्छा ॥ १०४ ॥

वा०—कबरमणिविषशरेभ्यो नित्यम् ॥ १०५ ॥

कबर मणि विष और शर शब्दों से परे जो स्वांगवाची पुच्छ प्रातिपदिक उस से स्त्रीलिङ्ग में नित्य ही ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—कबरपुच्छी; मणिपुच्छी; विषपुच्छी, शरपुच्छी इत्यादि ॥ १०५ ॥

वा०—उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च ॥ १०६ ॥

उपमानवाची शब्दों से परे जो स्वांगवाची पक्ष और पुच्छ प्रातिपदिक उन से नित्य ही ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—उलूकपक्षी सेना; उलूकपुच्छी शाला इत्यादि ॥ १०६ ॥

न क्रोडादिबह्वचः ॥ १०७ ॥ अ० ४ । १ । ५६ ॥

क्रोड आदि प्रातिपदिक और बहुत अच् जिस में हों, ऐसे प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय न होवे। जैसे—कल्याणक्रोडा; कल्याणखुरा; कल्याणबाला; कल्याणशफा। बह्वच्—पृथुजघना; महाललाटा इत्यादि ॥ १०७ ॥

सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च ॥ १०८ ॥ अ० ४ । १ । ५७ ॥

सह नञ् विद्यमान ये हों पूर्व जिसके, उस स्वांगवाची स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय न हो॥ जैसे—सकेशा; अकेशा; विद्यमानकेशा; सनासिका; अनासिका; विद्यमाननासिका इत्यादि ॥ १०८ ॥

नखमुखात्संज्ञायाम् ॥ १०९ ॥ अ० ४ । १ । ५८ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान नखान्त और मुखान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय न हो। जैसे—शूर्पणखा; वज्रणखा; गौरमुखा; कालमुखा।

'संज्ञा' ग्रहण इसलिये है कि—ताम्रमुखी कन्या, यहां ङीष् हो ॥ १०९ ॥

दीर्घजिह्वी च छन्दसि ॥ ११० ॥ अ० ४ । १ । ५९ ॥

वेद में 'दीर्घजिह्वी' निपातन किया है। जैसे—दीर्घजिह्वी वै देवानां हव्यमलेट्। 'दीर्घजिह्वी' शब्द नित्य ङीष् होने के लिये निपातन किया है ॥ ११० ॥

दिक्पूर्वपदान्ङीप् ॥ १११ ॥ अ० ४ । १ । ६० ॥

दिक् पूर्वपद हो जिस के उस स्वांगवाची स्त्रीलिंग में वर्त्तमान प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—प्राङ्मुखी; प्रत्यङ्मुखी; प्राङ्नासिकी इत्यादि ॥ १११ ॥

वाहः ॥ ११२ ॥ अ० ४ । १ । ६१ ॥

वाहन्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—दित्यौही; प्रष्ठौही; विश्वौही इत्यादि ॥ ११२ ॥

सख्यशिश्वीति भाषायाम् ॥ ११३ ॥ अ० ४ । १ । ६२ ॥

भाषा अर्थात् लौकिक प्रयोग विषय में सखी और अशिश्वी ये दोनों ङीष् प्रत्ययान्त निपातन किये हैं। जैसे—सखीयं मे ब्राह्मणी; नास्याः शिशुरस्तीति अशिश्वी।

यहां 'भाषा' ग्रहण इसलिये है कि—सखे सप्तपदी भव, यहां न हो ॥ ११३ ॥

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ॥ ११४ ॥ अ० ४ । १ । ६३ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जो यकारोपधवर्जित जातिवाची अकारान्त और नियत स्त्रीलिंग न हो, ऐसे प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—कुक्कुटी; सूकरी; ब्राह्मणी; वृषली; नाडायनी; चारायणी; बह्वृची।

यहां 'जाति' ग्रहण इसलिये है कि—मुण्डा। 'अस्त्रीविषय' इसलिये है कि—मक्षिका। 'अयोपध' इसलिये है कि—क्षत्रिया; वैश्या। 'अनुपसर्जन' ग्रहण इसलिये है कि—बहुकुक्कुटा; बहुसूकरा, इससे ङीष् न हुआ ॥ ११४ ॥

वा०—योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमत्स्यमनुष्याणामप्रतिषेधः ॥ ११५ ॥

यकारोपध का निषेध जो सूत्र से किया है, वहां हय गवय मुकय मत्स्य और मनुष्य प्रातिपदिकों का निषेध न होवे, अर्थात् इनसे ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—हयी; गवयी; मुकयी; मत्सी; मनुषी ॥ ११५ ॥

पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलबालोत्तरपदाच्च ॥ ११६ ॥ अ० ४ । १ । ६४ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जिस प्रातिपदिक के उत्तरपद पाक आदि शब्द हो, उससे ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—ओदनपाकी; मुद्गपर्णी; षट्पर्णी; शङ्खपुष्पी; बहुफली; दर्भमूली; गोबाली ॥ ११६ ॥

वा०—सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्प्रतिषेधः ॥ ११७ ॥

सत् अंचु काण्ड प्रान्त शत एक इन प्रातिपदिकों से परे जो स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पुष्प प्रातिपदिक उस से ङीष् प्रत्यय न हो।

सूत्र ११६ से प्राप्त है, उसका विशेष शब्दों के योग में निषेध किया है। जैसे—सत्पुष्पा; प्राक्पुष्पा; प्रत्यक्पुष्पा; काण्डपुष्पा; प्रान्तपुष्पा; शतपुष्पा; एकपुष्पा ॥११७॥

वा०—सम्भस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् ॥ ११८ ॥

सम् भस्त्र अजिन शण और पिण्ड शब्दों से परे जो फल प्रातिपदिक उस से ङीष् प्रत्यय न हो। यहां सर्वत्र ङीष् का निषेध होने से टाप् हो जाता है।

जैसे—सम्फला; भस्त्रफला; अजिनफला; शणफला; पिण्डफला ॥ ११८ ॥

वा०—श्वेताच्च ॥ ११९ ॥

श्वेत शब्द से परे जो फल उससे भी ङीष् न हो। जैसे—श्वेतफला ॥ ११९ ॥

वा०—त्रेश्च ॥ १२० ॥

त्रि शब्द से परे जो फल उससे भी ङीष् न हो। जैसे—त्रिफला ॥ १२० ॥

वा०—मूलान्नञः ॥ १२१ ॥

नञ् से परे जो मूल प्रातिपदिक उससे भी ङीष् प्रत्यय न होवे। जैसे—न मूलमस्याः सा अमूला इत्यादि ॥ १२१ ॥

इतो मनुष्यजातेः ॥ १२२ ॥ अ० ४ । १ । ६५ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मनुष्यजातिवाची इकारान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—अवन्ती; कुन्ती; दाक्षी; प्लाक्षी इत्यादि।

यहां 'इकारान्त' ग्रहण इसलिये है कि—विट्; दरत्, यहां ङीष् न होवे। 'मनुष्य' ग्रहण इसलिये है कि—तित्तिरिः, यहां न हो। और पूर्वसूत्र से जाति की अनुवृत्ति चली आती, फिर 'जाति' ग्रहण का प्रयोजन यह है कि—यकारोपध से भी ङीष् प्रत्यय हो जावे, जैसे—औदमेयी इत्यादि ॥ १२२ ॥

वा०—इञ उपसङ्ख्यानमजात्यर्थम् ॥ १२३ ॥

जाति के न होने से स्त्रीलिंग में वर्त्तमान इञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—सौतङ्गमी; मौनचित्ती * इत्यादि ॥ १२३ ॥

* सुतङ्गम आदि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक प्रकरण का इञ् प्रत्यय है, इस कारण जाति नहीं।

ऊङुतः ॥ १२४ ॥ अ० ४ । १ । ६६ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान मनुष्यजातिवाची उकारान्त प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—कुरूः; ब्रह्मबन्धूः; वीरबन्धूः।

यकारोपध के निषेध की अनुवृत्ति यहां आती है, इसी कारण अध्वर्युर्ब्राह्मणी, इत्यादि में ऊङ् प्रत्यय नहीं होता॥ १२४॥

वा०—अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनाम् ॥ १२५ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान अप्राणिजातिवाची [उकारान्त] प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे, परन्तु रज्जु आदि प्रातिपदिकों से न हो। जैसे—अलाबूः; कर्कन्धूः।

यहां 'अप्राणि' ग्रहण इसलिये है कि—कृकवाकुः, यहां न हो। और 'अरज्वादि' ग्रहण इसलिये है कि—रज्जुः; हनुः, इत्यादि से ऊङ् न हो॥ १२५॥

बाह्वन्तात्संज्ञायाम् ॥ १२६ ॥ अ० ४ । १ । ६७ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान बाहु शब्दान्त प्रातिपदिक से संज्ञाविषय में ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—भद्रबाहूः; जालबाहूः।

यहां 'संज्ञा' ग्रहण इसलिये है कि—वृत्तबाहुः; सुबाहुः, इत्यादि से न होवे॥ १२६॥

पङ्गोश्च ॥ १२७ ॥ अ० ४ । १ । ६८ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पंगु प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—पंगूः॥ १२७॥

वा०—श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च वक्तव्यः ॥ १२८ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान श्वशुर शब्द से ऊङ् प्रत्यय और उस के उकार अकार का लोप हो जावे। जैसे—श्वश्रूः।

यहां किसी से ऊङ् प्राप्त नहीं, इसलिये यह वार्त्तिक अपूर्वविधायक है॥ १२८॥

ऊरूत्तरपदादौपम्ये ॥ १२९ ॥ अ० ४ । १ । ६९ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान ऊरु उत्तरपद में है जिस के, उस प्रातिपदिक से उपमान अर्थ में ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—कदलीस्तम्भ इवोरू अस्याः स्त्रियाः सा कदलीस्तम्भोरूः; नागनासोरूः।

यहां 'औपम्य' ग्रहण इसलिये है कि—वृत्तोरुः स्त्री, यहां न होवे॥ १२९॥

संहितशफलक्षणवामादेश्च ॥ १३० ॥ अ० ४ । १ । ७० ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान संहित शफ लक्षण वा वाम शब्द जिस के आदि में हो, ऐसे ऊरूत्तर प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—संहितोरूः; शफोरूः; लक्षणोरूः; वामोरूः।

यहां उपमान अर्थ नहीं है, इसलिये इस सूत्र का पृथक् आरम्भ है, नहीं तो पूर्व सूत्र से ही हो जाता ॥ १३० ॥

वा०—सहितसहाभ्यां च ॥ १३१ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान सहित और सह शब्द से परे जो ऊरु प्रातिपदिक उस से ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—सहितोरूः; सहोरूः इत्यादि ॥ १३१ ॥

कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि ॥ १३२ ॥ अ० ४। १। ७१ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान कद्रु और कमण्डलु प्रातिपदिकों से वैदिक प्रयोग विषय में ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—कद्रूश्च वै सुपर्णी च; मा स्म कमण्डलूं शूद्राय दद्यात्।

यहां 'छन्दो' ग्रहण इसलिये है कि—कद्रुः; कमण्डलुः, यहां न हो ॥ १३२ ॥

वा०—गुग्गुलुमधुजतुपतयालूनामुपसङ्ख्यानम् ॥ १३३ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान वैदिक प्रयोगविषय में गुग्गुलु मधु जतु और पतयालु प्रातिपदिकों से ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—गुग्गुलूः; मधूः; जतूः; पतयालूः ॥ १३३ ॥

संज्ञायाम् ॥ १३४ ॥ अ० ४। १। ७२ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान संज्ञाविषय में कद्रु और कमण्डलु प्रातिपदिकों से ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—कद्रूः; कमण्डलूः।

यहां 'संज्ञा' इसलिये है कि—कद्रुः; कमण्डलुः, यहां ऊङ् न होवे ॥ १३४ ॥

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ॥ १३५ ॥ अ० ४। १। ७३ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जाति अर्थ में शार्ङ्गरव आदि और अञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से ङीन् प्रत्यय होवे। जैसे—शार्ङ्गरवी; कापटवी। अञन्त—बैदी; और्वी।

यहां जाति की अनुवृत्ति आने से पुंयोग में प्राप्त ङीष् का बाधक यह सूत्र नहीं होता। जैसे—वैदस्य स्त्री वैदी, यहां ङीष् होता ही है ॥ १३५ ॥

यङश्चाप् ॥ १३६ ॥ अ० ४। १। ७४ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जातिवाची यङ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से चाप् प्रत्यय हो। जैसे—आम्बष्ठ्या; सौवीर्या; कारीषगन्ध्या; वाराह्या इत्यादि ॥ १३६ ॥

वा०—षाच्च यञः ॥ १३७ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जो षकार से परे यञ् तदन्त प्रातिपदिक से चाप् प्रत्यय हो। जैसे—शार्कराक्ष्या; पौतिमाष्या; गौकक्ष्या इत्यादि ॥ १३७ ॥

आवट्याच्च * ॥ १३८ ॥ अ० ४ । १ । ७५ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जातिवाची आवट्य शब्द से चाप् प्रत्यय होवे। जैसे—आवट्या ॥ १३८ ॥

तद्धिताः ॥ १३९ ॥ अ० ४ । १ । ७६ ॥

यह अधिकार सूत्र है। पञ्चमाऽध्याय पर्यन्त इसका अधिकार जायगा। इससे आगे जो २ प्रत्यय विधान करें, सो २ तद्धितसंज्ञक जानने चाहियें ॥ १३९ ॥

यूनस्तिः ॥ १४० ॥ अ० ४ । १ । ७७ ॥

जो स्त्रीलिंग में वर्त्तमान युवन् शब्द से ति प्रत्यय होता है, वह तद्धितसंज्ञक भी हो जावे। जैसे—युवतिः ॥ १४० ॥

अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे ॥१४१॥ अ० ४।१।७८॥

जो स्त्रीलिंग में वर्त्तमान गोत्र अर्थ में विहित ऋषिभिन्न अण् और इञ् हैं, ये जिनके अन्त में हों, ऐसे गुरूपोत्तम अर्थात् जो तृतीय आदि अन्त्यवर्ण के पूर्व गुरुसंज्ञक वर्ण हों, उन प्रातिपदिकों के स्थान में ष्यङ् आदेश हो, वह तद्धितसंज्ञक भी हो जावे।

जैसे—अण्—करीषस्येव गन्धोऽस्य स करीषगन्धिः; कुमुदगन्धिः। तस्य [अपत्यं] स्त्री कारीषगन्ध्या; कौमुदगन्ध्या। इञ्—वाराह्या; बालाक्या ‡।

यहां 'अण् और इञ्' इसलिये है कि—ऋतभागस्यापत्यं स्त्री आर्त्तभागी, यहां विदादिकों से अञ् हुआ है, इस कारण ष्यङ् नहीं होता। 'अनार्ष' इसलिये कहा है कि—वाशिष्ठी; वैश्वामित्री, यहां न हो। 'गुरूपोत्तम' ग्रहण इसलिये है कि—औपगवी; कापटवी, यहां न हो। और 'गोत्र' इसलिये है कि—आहिच्छत्री, यहां न हो ॥ १४१ ॥

गोत्रावयवात् ॥ १४२ ॥ अ० ४ । १ । ७९ ॥

इस सूत्र का आरम्भ गुरूपोत्तम विशेषण न घटने के लिये है।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान गोत्र का अवयव अर्थात् गोत्राभिमतकुल में मुख्य पुणिक भुणिक और मुखर आदि प्रातिपदिक से विहित जो गोत्र अर्थ में अण् और इञ् हैं,

* यह अवट शब्द गर्गादिकों में पढ़ा है, इसलिये यञ् प्रत्ययान्त से ङीष् प्रत्यय (यञश्च) इस उक्त सूत्र से प्राप्त है उसका अपवाद है। परन्तु प्राचीन आचार्य्यों के मत में तो ष्फ होता ही है। जैसे—आवट्यायनी।

‡ यहां करीषगन्धि और कुमुदगन्धि शब्दों से (तस्यापत्यम्) इस से अण् और वराह तथा बलाका शब्दों से (अतइञ्) इस आगामी सूत्र से इञ् हुआ है ॥

उनके स्थान में ष्यङ् आदेश हो, वह तद्धितसंज्ञक भी होवे। जैसे—पौणिक्या; भौणिक्या; मौखर्य्या इत्यादि ॥ १४२ ॥

क्रौड्यादिभ्यश्च ॥ १४३ ॥ अ० ४ । १ । ८० ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान क्रौडि आदि प्रातिपदिकों से ष्यङ् प्रत्यय, और उसकी तद्धित-संज्ञा भी हो। जैसे—क्रौड्या; लाड्या; व्याड्या इत्यादि ॥ १४३ ॥

दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम् ॥१४४॥ अ० ४ । १ । ८१ ॥

गोत्र अर्थ में वर्त्तमान दैवयज्ञि शौचिवृक्षि सात्यमुग्रि और काण्ठेविद्धि प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में ष्यङ् प्रत्यय हो, उसकी तद्धितसंज्ञा भी हो।

जैसे—दैवयज्ञ्या; शौचिवृक्ष्या; सात्यमुग्र्या; काण्ठेविद्ध्या।

और पक्ष में (इतो मनुष्यजातेः) इस उक्त सूत्र से ङीष् होता है। जैसे—दैवयज्ञी; शौचिवृक्षी; सात्यमुग्री; काण्ठेविद्धी इत्यादि ॥ १४४ ॥

इति स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् ॥



समर्थानां प्रथमाद्वा ॥ १४५ ॥ अ० ४ । १ । ८२ ॥

समर्थानाम् प्रथमात् वा इन तीन पदों का अधिकार करते हैं। इससे आगे जो २ प्रत्यय कहे हैं, वे समर्थों की प्रथम प्रकृति से विकल्प करके होंगे, पक्ष में वाक्य भी बना रहे। यह अधिकार छः पाद अर्थात् पञ्चमाध्याय के द्वितीय पाद के अन्तपर्य्यन्त जावेगा। जैसे—उपगोरपत्यम् औपगवः।

यहां 'समर्थानाम्' इसलिये है कि—कम्बल उपगोरपत्यं देवदत्तस्य, यहां उपगु शब्द से प्रत्यय नहीं होता। 'प्रथमात्' इसलिये है कि—षष्ठ्यन्त ही से होवे प्रथमान्त से नहीं हो। जैसे—उपगु से होता है, अपत्य से नहीं हो। 'वा' इसलिये है कि वाक्य भी बना रहे। जैसे—उपगोरपत्यम् ॥ १४५ ॥

प्राग्दीव्यतोऽण् ॥ १४६ ॥ अ० ४ । १ । ८३ ॥

(तेन दीव्यति०) इस सूत्र पर्य्यन्त 'अण्' प्रत्यय का अधिकार करते हैं। यहां से आगे जो २ विधान करेंगे, वहां २ अपवाद विषयों को छोड़ के अण् ही प्रवृत्त होगा।

जैसे—(तस्यापत्यम्) यहां प्रत्यय विधान किया है, सो अधिकार के होने से अण् ही होता है। जैसे—उपगोरपत्यम् औपगवः; कापटवः इत्यादि ॥ १४६ ॥

अश्वपत्यादिभ्यश्च * ॥ १४७ ॥ अ० ४ । १ । ८४ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों, अर्थात् 'तेन दीव्यति०' इस सूत्र से पूर्व २ जो २ अर्थ विधान किये हैं, उन २ में अश्वपति आदि प्रातिपदिकों से अण् ही होवे। जैसे—आश्वपतम्; शातपतम्; धानपतम्; गाणपतम् इत्यादि ॥ १४७ ॥

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ॥१४८॥ अ० ४ । १ । ८५ ॥

यहां भी प्राग्दीव्यतीय की अनुवृत्ति आती है। और यह सूत्र अण् का अपवाद है।

दिति अदिति आदित्य और पत्युत्तरपद प्रातिपदिक से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में तद्धितसंज्ञक एय प्रत्यय होवे। जैसे—दैत्यः; आदित्यः; आदित्यम्। पत्युत्तरपद—प्राजापत्यम्; सैनापत्यम् इत्यादि ॥ १४८ ॥

वा०—यमाच्च ॥ १४९ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में यम प्रातिपदिक से भी तद्धितसंज्ञक एय प्रत्यय होवे। जैसे—याम्यम् ॥ १४९ ॥

वा०—वाङ्मतिपितृमतां छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥ १५० ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में वाक् मति और पितृमत् प्रातिपदिकों से [वैदिक प्रयोग विषय में] तद्धितसंज्ञक एय प्रत्यय हो। जैसे—वाच्यम्; मात्यम्; पैतृमत्यम् ॥ १५० ॥

वा०—पृथिव्या ञाञौ ॥ १५१ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में पृथिवी प्रातिपदिक से ञ और अञ् प्रत्यय होवें। जैसे—पार्थिवा; पार्थिवी ‡ ॥ १५१ ॥

वा०—देवाद्यञञौ ॥ १५२ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में देव प्रातिपदिक से यञ् और अञ् प्रत्यय होवें। जैसे—दैव्यम्; दैवम् ॥ १५२ ॥

---

* पति जिनके उत्तरपद में हो उन प्रातिपदिकों से अगले सूत्र में एय प्रत्यय कहा है, उस का पुरस्तात् अपवाद यह सूत्र है ॥

‡ यहां ञ और अञ् प्रत्ययों में इतना ही भेद है कि ञान्त से ङीप् प्राप्त नहीं, और अञन्त से ङीप् हो जाता है ॥

वा०—बहिषष्टिलोपश्च ॥ १५३ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में बहिष् प्रातिपदिक से एय प्रत्यय और उस के टि का लोप भी होवे। जैसे—बहिर्भवो बाह्यः ॥ १५३ ॥

वा०—ईकक् च ॥ १५४ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में बहिष् प्रातिपदिक से ईकक् प्रत्यय और उसके टि का लोप भी होवे। जैसे—बाहीकः ॥ १५४ ॥

वा०—ईकञ् छन्दसि ॥ १५५ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में वैदिक प्रयोगविषयक बहिष् प्रातिपदिक से ईकञ् प्रत्यय और उसके टि का लोप भी होवे। जैसे—बाहीकः * ॥ १५५ ॥

वा०—स्थाम्नोऽकारः ॥ १५६ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में स्थामन् शब्दान्त प्रातिपदिक से अकार प्रत्यय होवे। जैसे—अश्वत्थामः ॥ १५६ ॥

वा०—लोम्नोऽपत्येषु बहुषु ॥ १५७ ॥

बहुत अपत्य वाच्य हों, तो लोमन् शब्दान्त प्रातिपदिक से अकार प्रत्यय हो जावे। जैसे—उडुलोम्नोऽपत्यानि उडुलोमाः; शरलोमाः इत्यादि।

यहां 'बहुत अपत्य' ग्रहण इसलिये है कि—उडुलोम्नोऽपत्यम् औडुलोमिः; शारलोमिः, यहां अकार प्रत्यय न होवे ॥ १५७ ॥

वा०—सर्वत्र गोरजादिप्रसङ्गे यत् ॥ १५८ ॥

सर्वत्र अर्थात् प्राग्दीव्यतीय अर्थों में गो प्रातिपदिक से अण् आदि अजादि प्रत्ययों की प्राप्ति में यत् प्रत्यय ही होवे। जैसे—गव्यम्।

यहां 'अजादिप्रसंग' इसलिये कहा है कि—गोरूप्यम्; गोमयम्, इत्यादि में यत् न होवे ॥ १५८ ॥

उत्सादिभ्योऽञ् ॥ १५९ ॥ अ० ४ । १ । ८६ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में उत्स आदि प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—औत्सः; औदपानः; नैकरः इत्यादि।

* पूर्व वार्तिक में ईकक् और यहां ईकञ् इन दो प्रत्ययों में केवल स्वर का ही भेद है। अर्थात् लोक में अन्तोदात्त और वेद में आद्युदात्त स्वर होता है ॥

अण् और उस के अपवादों का भी यह सूत्र अपवाद है ॥ १५९ ॥

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ॥ १६० ॥ अ० ४ । १ । ८७ ॥

(धान्यानां भवने०) इस सूत्र से पूर्व २ सब अर्थों में स्त्री और पुंस् प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके नञ् और स्नञ् प्रत्यय हों।

जैसे—स्त्रीषु भवम् स्त्रैणम्; पौंस्नम्। स्त्रीभ्य आगतम् स्त्रैणम्; पौंस्नम्। स्त्रिया प्रोक्तम् स्त्रैणम्; पौंस्नम्। स्त्रीभ्यो हितम् स्त्रैणम्; पौंस्नम् इत्यादि ॥ १६० ॥

द्विगोर्लुगनपत्ये ॥ १६१ ॥ अ० ४ । १ । ८८ ॥

द्विगु का सम्बन्धी निमित्त, अर्थात् जिसको मानके द्विगु किया हो, उस अपत्यवर्जित प्राग्दीव्यतीय तद्धितसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होवे। जैसे—पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः पञ्चकपालः; दशकपालः; द्वौ वेदावधीते द्विवेदः; त्रिवेदः।

[यहां 'अनपत्य' ग्रहण इसलिये है कि—द्वैदेवदत्तिः,] इत्यादि में लुक् न हो ॥१६१॥

गोत्रेऽलुगचि ॥ १६२ ॥ अ० ४ । १ । ८९ ॥

जो (यस्कादिभ्यो गोत्रे) इत्यादि सूत्रों से जिन गोत्र प्रत्ययों का लुक् कह चुके हैं सो न हो, प्राग्दीव्यतीय अजादिप्रत्यय परे हों तो। जैसे—गर्गाणां छात्राः गार्गीयाः; वात्सीयाः; आत्रेयीयाः; खारपायणीयाः।

यहां 'गोत्र' [ग्रहण] इसलिये है कि—कौबलम्; बादरम्, यहां निषेध न हो। और 'अच्' ग्रहण इसलिये है कि—गर्गेभ्य आगतं गर्गरूप्यम्; गर्गमयम्, यहां हलादि प्रत्ययों के परे लुक् होजावे ॥ १६२ ॥

यूनि लुक् ॥ १६३ ॥ अ० ४ । १ । ९० ॥

जब प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय की विवक्षा होवे, तब युवापत्य अर्थ में विहित जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय उसका लुक् हो, फिर जिस प्रकृति से जो प्रत्यय प्राप्त हो सो होवे।

जैसे—फाण्टाहृतस्यापत्यं फाण्टाहृतिः। तस्य युवापत्यम्, यहां (फाण्टाहृतिमिम०) इससे युवापत्य में ण होकर=फाण्टाहृतः। फाण्टाहृतस्य यूनश्छात्राः इस अर्थ की विवक्षा होते ही युवापत्य का लुक् होके उस इञ् प्रत्ययान्त फाण्टाहृति प्रातिपदिक से (इञश्च) इस सूत्र से शैषिक अण् प्रत्यय हो जाता है=जैसे—फाण्टाहृताः।

तथा भगवित्तस्यापत्यं भागवित्तिः, यहां प्रथम गोत्र में इञ। तस्य भागवित्तेरपत्यं माणवको भागवित्तिकः, यहां युवापत्य में ठक् हुआ है। भागवित्तिकस्य यूनश्छात्राः, इस अर्थ की अपेक्षा में यहां भी पूर्व के समान युव प्रत्यय ठक् की निवृत्ति होकर इञन्त

से अण् हो जाता है=जैसे—भागवित्ताः। [तिकस्यापत्यं तैकायनिः। तस्य] तैकायनेरपत्यं माणवकः तैकायनीयः। तैकायनीयस्य यूनश्छात्राः तैकायनीयाः, यहां युव प्रत्यय छ की निवृत्ति में फिञ् प्रत्ययान्त तैकायनि वृद्ध प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हुआ है, इत्यादि।

यहां 'अजादि के परे लोप' इसलिये कहा है कि—फाण्टाहृतरूप्यम्; फाण्टाहृतमयम्, यहां लुक् न हो। प्राग्दीव्यतीय अर्थों में लोप होता है, अन्यत्र नहीं—भागवित्तिकाय हितं भागवित्तिकीयम्, यहां न हो॥ १६३॥

फक्फिञोरन्यतरस्याम्॥ १६४॥ अ० ४। १। ६१॥

जो प्राग्दीव्यतीय अर्थवाची अजादि प्रत्यय परे हों, तो फक् और फिञ् युवप्रत्ययों का लुक् विकल्प करके होवे।

जैसे—गर्गस्यापत्यं गार्ग्यः (गर्ग शब्द से यञ्), तस्य युवापत्यम् (तदन्त से फक्)= गार्ग्यायणः, तस्य छात्राः, इस विवक्षा में फक् का लुक्=गार्गीयाः। और जिस पक्ष में लुक् न हुआ वहां गार्ग्यायणीयाः; वात्सीयाः, वात्स्यायनीयाः इत्यादि। फिञ्—यस्कस्यापत्यम् (शिवादिकों से अण्) यास्कः, तस्य युवापत्यम् (अणन्त द्व्यच् प्रातिपदिक से फिञ्) यास्कायनिस्तस्य छात्राः, इस विवक्षा में फिञ् का विकल्प से लुक्= यास्कीयाः, यास्कायनीयाः इत्यादि॥ १६४॥

तस्यापत्यम्॥ १६५॥ अ० ४। १। ९२॥

समर्थों में प्रथम षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में अण् आदि प्रत्यय विकल्प करके होवें। जैसे—उपगोरपत्यम् औपगवः; आश्वपतः; दैत्यः; औत्सः; स्त्रैणः; पौंस्नः इत्यादि॥ १६५॥

ओर्गुणः॥ १६६॥ अ० ६। ४। १४६॥

जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हो, तो उवर्णान्त भसंज्ञक अङ्ग को गुण हो। जैसे— उपगोरपत्यम् औपगवः इत्यादि॥ १६६॥

तद्धितेष्वचामादेः॥ १६७॥ अ० ७। २। ११७॥

जो ञित् णित् और कित् तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो अचों के बीच में जो आदि अच् उसके स्थान में वृद्धि हो। जैसे—औपगवः; वाभ्रव्यः; माण्डव्यः इत्यादि॥ १६७॥

यस्येति च॥ १६८॥ अ० ६। ४। १४८॥

जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय और ईकार परे हों, तो भसंज्ञक इवर्ण और अवर्ण का लोप होवे। जैसे—ईकार—दाक्षी; साक्षी। तद्धित में इवर्ण का लोप—दौलेयः; बालेयः; आत्रेयः

इत्यादि । अवर्ण का लोप—कुमारी; किशोरी; दैत्यः; आश्वपतः; औत्सः; स्त्रैणः; पौंस्नः इत्यादि ॥ १६८ ॥

एको गोत्रे ॥ १६९ ॥ अ० ४ । १ । ९३ ॥

गोत्र अर्थ में एक ही प्रत्यय होवे, अर्थात् द्वितीय प्रत्यय न हो। अथवा प्रकृति का नियम करना चाहिये कि जहां गोत्रापत्य की विवक्षा हो, वहां एक ही प्रथम मुख्य जिससे अपत्याधिकार में कोई प्रत्यय न हुआ हो, उससे प्रत्यय की उत्पत्ति हो। जैसे—गार्ग्यः; नाडायनः इत्यादि ॥ १६९ ॥

गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ॥ १७० ॥ अ० ४ । १ । ९४ ॥

और जब युवापत्य की विवक्षा हो, तो गोत्रप्रत्ययान्त प्रकृति ही से दूसरा प्रत्यय होवे। जैसे—गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः; वात्स्यायनः; दाक्षायणः; प्लाक्षायणः, यहां युवापत्य में 'फक्' और औपगविः; नाडायनिः, यहां युवापत्य में 'इञ्' हुआ है।

यहां 'स्त्री का निषेध' इसलिये है कि—दाक्षी; प्लाक्षी, यहां गोत्रप्रत्ययान्त से स्त्रीप्रत्यय हुआ है ॥ १७० ॥

अत इञ् ॥ १७१ ॥ अ० ४ । १ । ९५ ॥

जो समर्थों का प्रथम षष्ठीसमर्थ अकारान्त प्रातिपदिक है, उससे अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे—दक्षस्यापत्यं माणवको दाक्षिः; दाशरथिः।

यह सूत्र अण् का अपवाद है। यहां 'तपरकरण' इसलिये है कि—शुभंयाः; कीलालपाः, इत्यादि से 'इञ्' न हो, अर्थात् आकारान्त से निषेध हो जाय ॥ १७१ ॥

बाह्वादिभ्यश्च ॥ १७२ ॥ अ० ४ । १ । ९६ ॥

समर्थों के प्रथम षष्ठी समर्थ बाहु आदि प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे—बाहविः; औपबाहविः इत्यादि ॥ १७२ ॥

सुधातुरकङ् च ॥ १७३ ॥ अ० ४ । १ । ९७ ॥

समर्थों के प्रथम षष्ठीसमर्थ सुधातु प्रातिपदिक से इञ् प्रत्यय विकल्प करके और उसको अकङ् आदेश भी हो। जैसे—सुधातुरपत्यं सौधातकिः ॥ १७३ ॥

वा०—व्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानामिति वक्तव्यम् ॥१७४॥

व्यास, वरुड, निषाद, चण्डाल और बिम्ब प्रातिपदिकों से इञ् प्रत्यय होवे। जैसे—

व्यासस्यापत्यं माणवको वैयासकिः; वारुडकिः; नैषादकिः; चाण्डालकिः; बैम्बकिः * इत्यादि ॥ १७४ ॥

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् † ॥ १७५ ॥ अ० ४ । १ । ९८ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। गोत्रसंज्ञक अपत्य अर्थ में ‡ प्रथम प्रकृति कुञ्ज आदि प्रातिपदिकों से च्फञ् प्रत्यय हो। जैसे—कुञ्जस्य गोत्रापत्यं कौञ्जायन्यः, कौञ्जायन्यौ, कौञ्जायनाः; ब्राध्नायन्यः, ब्राध्नायन्यौ, ब्राध्नायनाः इत्यादि।

यहां 'गोत्र' इसलिये कहा है कि—कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौञ्जिः, यहां अनन्तरापत्य में च्फञ् न हो। गोत्र का अधिकार (शिवादि०) इस सूत्रपर्यन्त जानना चाहिये ॥१७५॥

नडादिभ्यः फक् ॥ १७६ ॥ अ० ४ । १ । ९९ ॥

यह सूत्र भी इञ् का अपवाद है। नड आदि प्रातिपदिकों से गोत्राऽपत्य अर्थ में फक् प्रत्यय होवे। जैसे—नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः; चारायणः इत्यादि।

यहां भी गोत्र की अनुवृत्ति आने से अनन्तरापत्य में नाडिः, [यहां] फक् नहीं होता, किन्तु इञ् हो जाता है ॥ १७६ ॥

हरितादिभ्योऽञः + ॥ १७७ ॥ अ० ४ । १ । १०० ॥

यह भी सूत्र इञ् का ही अपवाद है, और जो शब्द हरितादिकों में अदन्त न हों उनसे अण् का अपवाद समझना चाहिये।

जो विदाद्यन्तर्गत अञन्त हरितादि प्रातिपदिक हैं, उनसे युवापत्य अर्थ में फक् प्रत्यय हो। जैसे—हरितस्य युवापत्यं हारितायनः; कैदासायनः इत्यादि ॥ १७७ ॥

---

* इन व्यास आदि प्रातिपदिकों से अदन्तों के होने से इञ् तो हो जाता, पर अकङ् आदेश होने के लिये यह वार्त्तिक पढ़ा है ॥

† यहां च्फञ् प्रत्यय में चकार का अनुबन्ध (व्रातच्फञो०) इस सूत्र में सम्बन्ध होने के और ञकार वृद्धि के लिये है। और इन च्फञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय हो जाता है। उस ञ्य प्रत्यय की तद्राजसंज्ञा होने से बहुवचन में लुक् हो जाता है ॥

‡ विकल्प, समर्थों का प्रथम इन दो का अधिकार छः पाद में, और तद्धितसंज्ञा का अधिकार पंचमाध्याय पर्य्यन्त तथा षष्ठीसमर्थ का अधिकार इसी पाद में जाता है। सो इन सब का प्रतिसूत्र में सम्बन्ध समझना चाहिये, अब बार २ नहीं लिखेंगे ॥

+ इस सूत्र में गोत्राऽपत्य की विवक्षा यों नहीं है कि हरितादिकों से प्रथम गोत्रापत्य में अञ् विधान है, फिर दूसरा प्रत्यय गोत्रापत्य में नहीं हो सकता, किन्तु युवापत्य में ही होगा ॥

यञिञोश्च ॥ १७८ ॥ अ० ४ । १ । १०१ ॥

युवापत्य अर्थ में यञन्त और इञन्त प्रातिपदिकों से फक् प्रत्यय हो। जैसे—यञन्त—गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः; वात्स्यायनः। इञन्त से—दाक्षायणः; प्लाक्षायणः इत्यादि।

यह सूत्र यञन्त से इञ् का और इञन्त से अण् का बाधक समझना चाहिये ॥१७८॥

शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु ॥१७९॥ अ० ४ । १ । १०२॥

जो गोत्रापत्य अर्थ में भृगु, वत्स, आग्रायण ये अपत्य विशेष अर्थ वाच्य हों, तो यथासंख्य करके शरद्वत् शुनक और दर्भ प्रातिपदिक से फक् प्रत्यय हो।

जैसे—शारद्वतायनः, जो भृगु का गोत्र हो, नहीं तो शारद्वतः। शौनकायनः, जो वत्स का गोत्र हो, नहीं तो शौनकः। दार्भायणः, जो आग्रायण का गोत्र हो, नहीं तो दार्भिः।

यह भी सूत्र अण् और इञ दोनों का अपवाद है ॥ १७९ ॥

द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम् ॥ १८० ॥ अ० ४ । १ । १०३ ॥

द्रोण पर्वत और जीवन्त प्रातिपदिक से फक् प्रत्यय विकल्प करके होवे।

यह सूत्र इञ् का ही अपवाद है। और एक विकल्प चला ही आता है, दूसरा ग्रहण इसलिये है कि—पक्ष में इञ् प्रत्यय भी हो जावे। और यह अप्राप्त विभाषा समझनी चाहिये। जैसे—द्रोणस्य गोत्रापत्यं द्रौणायनः, द्रौणिः; पार्वतायनः, पार्वतिः; जैवन्तायनः, जैवन्तिः ॥ १८० ॥

अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् * ॥ १८१ ॥ अ० ४ । १ । १०४ ॥

गोत्राऽपत्य अर्थ में विद आदि प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय होवे। जैसे विदस्य गोत्रापत्यं वैदः; और्वः इत्यादि।

परन्तु विदादिगण में जो ऋषिवाची से भिन्न पुत्र आदि शब्द पढ़े हैं, उनसे अनन्तरापत्य अर्थ ही में अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—पौत्रः; दौहित्रः; नानान्द्रः इत्यादि।

यह सूत्र भी इञ् आदि प्रत्ययों का अपवाद है ॥ १८१ ॥

गर्गादिभ्यो यञ् ॥ १८२ ॥ अ० ४ । १ । १०५ ॥

यह सूत्र भी अण् आदि प्रत्ययों का ही अपवाद है।

---

* इस प्रकरण में अपत्य तीन प्रकार के समझने चाहियें—अर्थात् गोत्रापत्य, युवापत्य और अनन्तरापत्य। इनमें से गोत्रापत्य और युवापत्य का आगे इसी प्रकरण में व्याख्यान किया है। अनन्तरापत्य पिता की अपेक्षा में पुत्र को कहते हैं कि जिसमें कुछ अन्तर नहीं होता। सो इस विदादिगण में जो ऋषिवाची प्रातिपदिक हैं, उन्हीं से गोत्रापत्य में हो, अन्य प्रातिपदिकों से अनन्तरापत्य में अञ् होता है॥

गोत्रापत्य अर्थ में गर्ग आदि प्रातिपदिकों से यञ् प्रत्यय होवे। जैसे—गार्ग्यः; वात्स्यः; वैयाघ्रपद्यः इत्यादि ॥ १८२ ॥

मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः * ॥ १८३ ॥ अ० ४ । १ । १०६ ॥

ब्राह्मण और कौशिक गोत्रापत्य अर्थ वाच्य हों, तो मधु और बभ्रु प्रातिपदिकों से यञ् प्रत्यय होवे। जैसे—मधोर्गोत्रापत्यं माधव्यः; जो ब्राह्मण होवे, नहीं तो माधवः। बाभ्रव्यः, जो कौशिक होवे, नहीं तो बाभ्रवः ॥ १८३ ॥

कपिबोधादाङ्गिरसे ॥ १८४ ॥ अ० ४ । १ । १०७ ॥

आङ्गिरस गोत्रापत्य विशेष अर्थ में कपि और बोध प्रातिपदिक से यञ् प्रत्यय होवे। जैसे—कपेर्गोत्रापत्यं काप्यः; बौध्यः, जो अङ्गिरा का गोत्र होवे। नहीं तो कापेयः; बौधिः, यहां ढक् और इञ् प्रत्यय हो जाते हैं।

और इन्हीं दोनों का यह अपवाद भी है ॥ १८४ ॥

वतण्डाच्च ॥ १८५ ॥ अ० ४ । १ । १०८ ॥

आङ्गिरस गोत्रापत्य विशेष अर्थ में वतण्ड प्रातिपदिक से यञ् प्रत्यय होवे। जैसे—वतण्डस्य गोत्रापत्यं वातण्ड्यः, यहां भी जो अङ्गिरा का गोत्र होवे। नहीं तो वातण्डः, यहां अण् हो जाता है।

और अण् का ही अपवाद यह सूत्र भी है ॥ १८५ ॥

लुक् स्त्रियाम् ॥ १८६ ॥ अ० ४ । १ । १०९ ॥

जहां आङ्गिरसी स्त्रीवाच्य रहे, वहां वतण्ड शब्द से विहित यञ् प्रत्यय का लुक् होवे।

जब लुक् हो जाता है, तब शार्ङ्गरवादि गण में पढ़ने से ङीन् प्रत्यय हो जाता है। जैसे—वतण्डी, जो अङ्गिरा के गोत्र की स्त्री होवे। नहीं तो वातण्ड्यायनी × यहां ष्फ प्रत्यय हो जाता है ॥ १८६ ॥

अश्वादिभ्यः फञ् ॥ १८७ ॥ अ० ४ । १ । ११० ॥

यह सूत्र अण् और इञ् का ही बाधक है।

---

* यह सूत्र अण् का अपवाद है। और बभ्रु शब्द गर्गादि के अन्तर्गत लोहितादिकों में पढ़ा है, वहां पढ़ने से इससे स्त्रीलिङ्ग में ष्फ प्रत्यय हो जाता है। जैसे—बाभ्रव्यायणी। और इस सूत्र में इस बभ्रु शब्द का पाठ नियमार्थ है कि कौशिक गोत्र में ही यञ् प्रत्यय हो, अन्यत्र नहीं॥

× यह वतण्ड शब्द गर्गादि के अन्तर्गत लोहितादिकों में पढ़ा है, इस कारण इससे स्त्रीगोत्र में ष्फ प्रत्यय होके यह प्रयोग होता है। और वतण्ड शब्द शिवादिगण में भी पढ़ा है, इससे स्त्रीलिङ्ग में वातण्डी भी प्रयोग होता है॥

गोत्राऽपत्य अर्थ में अश्व आदि प्रातिपदिकों से फञ् प्रत्यय होवे। जैसे—अश्वस्य गोत्रापत्यम् आश्वायनः; आश्मायनः; शांखायनः इत्यादि ॥ १८७ ॥

भर्गात् त्रैगर्ते ॥ १८८ ॥ अ० ४ । १ । १११ ॥

यह केवल इञ् का ही अपवाद है। भर्ग प्रातिपदिक से गोत्रापत्य त्रैगर्त्त अर्थ में फञ् प्रत्यय होवे। जैसे—भर्गस्य गोत्रापत्यं भार्गायणः, जो त्रिगर्त्त का गोत्र हो। नहीं तो भार्गिः, [यहां] इञ् प्रत्यय हो जावे ॥ १८८ ॥

शिवादिभ्योऽण् ॥ १८९ ॥ अ० ४ । १ । ११२ ॥

यहां से गोत्र की निवृत्ति होगई। अब सामान्याऽपत्य में प्रत्ययविधान करेंगे। यह सूत्र इञ् आदि का अपवाद यथायोग्य समझना चाहिये।

अपत्य अर्थ में शिव आदि प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे। जैसे—शिवस्य गोत्रापत्यं शैवः; प्रौष्ठः; प्रौष्ठिकः * इत्यादि ॥ १८९ ॥

अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ॥१९०॥ अ० ४।१।११३॥

यह सूत्र ढक् प्रत्यय का अपवाद है। अपत्य अर्थ में अवृद्ध नदी मानुषीवाचक तन्नामक प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे। जैसे—यमुनाया अपत्यं यामुनः; इरावत्या अपत्यम् ऐरावतः; वैतस्तः; नार्मदः इत्यादि।

यहां 'वृद्ध से निषेध' इसलिये है कि— चान्द्रभाग्याया अपत्यं चान्द्रभागेयः; वासवदत्तेयः, इत्यादि में अण् न हुआ। 'नदी मानुषी' इसलिये कहा है कि—सौपर्णेयः; वैनतेयः. यहां अण् न होवे। और 'तन्नामिका' ग्रहण इसलिये है कि - शोभनाया अपत्यं शौभनेयः, यहां भी न हो ॥ १९० ॥

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ॥ १९१ ॥ अ० ४ । १ । ११४ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में ऋषिवाची वसिष्ठ आदि तथा अन्धक वृष्णि कुरुवंशवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो।

* तक्षन् शब्द शिवादिगण में पढ़ा है, उससे (उदीचामिञ्) इस आगामी सूत्र से उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में इञ् प्राप्त है, उसका बाधक होने के लिये। परन्तु यञ प्रत्यय का बाधक नहीं होता। जैसे—ताक्षणः; ताक्षण्यः। और गङ्गा शब्द इस गण में पढ़ा है, यहां उससे अण्, तिकादि होने से फिञ् और शुभ्रादिगण में पढ़ने से ढक् प्रत्यय हो जाते हैं। इस प्रकार तीन प्रयोग होते हैं। जैसे—गाङ्गः; गाङ्गायनिः; गाङ्गेयः। तथा विपाशा शब्द यहां और कुञ्जादिगण में भी पढ़ा है, इससे उसके दो प्रयोग होते हैं। जैसे—वैपाशः; वैपाशायन्यः ॥

जैसे—[ऋषिः—] वसिष्ठस्याऽपत्यं वासिष्ठः; वैश्वामित्रः। अन्धकः—श्वाफल्कः; राान्धसः। वृष्णिः—वासुदेवः; आनिरुद्धः। कुरुः—नाकुलः; साहदेवः * इत्यादि ॥१६१॥

मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः ॥ १६२ ॥ अ० ४ । १ । ११५ ॥

इस मातृ प्रातिपदिक से अण् तो प्राप्त ही है, उकारादेश होने के लिये यह सूत्र है। अपत्य अर्थ में संख्या, सम् और भद्रपूर्वक मातृशब्द को उत् आदेश और अण् प्रत्यय भी हो। जैसे—द्वयोर्मात्रोरपत्यं द्वैमातुरः; त्रैमातुरः; षाण्मातुरः; साम्मातुरः; भाद्रमातुरः॥।

यहां 'संख्या आदि' का ग्रहण इसलिये है कि—सौमात्रः, यहां केवल अण् ही हुआ है ॥ १६२ ॥

कन्यायाः कनीन च ॥ १६३ ॥ अ० ४ । १ । ११६ ॥

यह सूत्र ढक् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में कन्या शब्द से अण् प्रत्यय और उसको कनीन आदेश भी होवे। जैसे—कन्याया अपत्यं कानीनः ‡ ॥ १६३ ॥

विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजाऽत्रिषु ॥१६४॥ अ० ४ । १ । ११७॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। यथासंख्य करके वत्स भरद्वाज और अत्रि अपत्य वाच्य हों, तो विकर्ण शुङ्ग और छगल प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय हो।

जैसे—विकर्णस्यापत्यं वैकर्णः, जो वत्स का गोत्र हो, नहीं तो वैकर्णिः। शौङ्गः, जो भरद्वाज का गोत्र हो, नहीं तो शौङ्गिः। छागलः, जो आत्रेय गोत्र हो, नहीं तो छागलिः। यहां सर्वत्र पक्ष में इञ् प्रत्यय होता है ॥ १६४ ॥

पीलाया वा ॥ १६५ ॥ अ० ४ । १ । ११८ ॥

द्व्यच् पीला प्रातिपदिक से ढक् प्राप्त है, उसका यह अपवाद है। और पक्ष में ढक् भी होता है। और इसको अप्राप्त विभाषा समझना चाहिये, क्योंकि अण् किसी से प्राप्त नहीं है। अपत्य अर्थ में पीला प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होवे। जैसे - पीलाया अपत्यं पैलः; पक्ष में ढक्=पैलेयः ॥ १६५ ॥

* यहां संशय होता है कि शब्द तो सब नित्य हैं, फिर अन्धक आदि वंशों के आश्रय से इन का व्याख्यान कैसे बन सकता है, क्योंकि वंश तो अनित्य है। (उत्तर) प्रवाहरूप से कल्पकल्पान्त में भी नित्य है, और अन्धक आदि अधिकारी शब्द हैं कि इस प्रकार के कुल का नाम अन्धक होना चाहिये, सो अन्धक आदि वंश प्रतिकल्प में अनादि चले आते हैं। इस प्रकार इन अन्धक आदि शब्दों का वंशों के साथ अनादि सम्बन्ध बना हुआ है, कभी नवीन नहीं हुआ ॥

॥ विमातृ शब्द शुभ्रादिगण में पढ़ा है, उससे वैमात्रेयः, यह भी प्रयोग होता है ॥

‡ विचार यह है कि कन्या जिसका विवाह न हो उसको कहते हैं, उसका अपत्य कैसे हो सकता है। महाभाष्य में इसका समाधान किया है कि जो विवाह होने से प्रथम ही प्रमत्त होकर किसी पुरुष के साथ व्यभिचार से गर्भवती हो जावे, उसका जो पुत्र हो उसको 'कानीन' कहना चाहिये ॥

ढक् च मण्डूकात् ॥ १९६ ॥ अ० ४ । १ । ११९ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में मण्डूक प्रातिपादिक से ढक् प्रत्यय हो, और चकार से अण् विकल्प करके होवे, पक्ष में इञ् भी हो जावे। जैसे—मण्डूकस्याऽपत्यं माण्डूकेयः, माण्डूकः, माण्डूकिः ॥ १९६ ॥

स्त्रीभ्यो ढक् ॥ १९७ ॥ अ० ४ । १ । १२० ॥

यह सूत्र अण् और उसके अपवादों का भी अपवाद है। अपत्य अर्थ में टाबादि स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय विकल्प करके होवे ॥ १९७ ॥

आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ॥१९८॥ अ० ७। १ । २॥

जो प्रत्यय के आदि फ ढ ख छ और घ हैं, उनके स्थान में यथासंख्य करके आयन्, एय्, ईन्, ईय् और इय् आदेश हों। जैसे-–फ—नाडायनः; ढ—सौपर्णेयः, वैनतेयः; ख—कुलीनः; छ—शालीयः, पैतृष्वस्त्रीयः; घ—क्षत्रियः; शुक्रियम् इत्यादि ॥ १९८ ॥

वा०—वडवाया वृषे ❀ वाच्ये ॥ १९९ ॥

वडवा प्रातिपदिक से बैल अपत्य वाच्य हो, तो ढक् प्रत्यय होवे। जैसे—वडवाया अपत्यं वृषो वाडवेयः ॥ १९९ ॥

वा०—अण् क्रुञ्चाकोकिलात्स्मृतः ॥ २०० ॥

सामान्यापत्य में क्रुञ्चा और कोकिला शब्द से ढक् का बाधक अण् प्रत्यय होवे। जैसे—क्रुञ्चाया अपत्यं क्रौञ्चः; कोकिलाया अपत्यं कौकिलः ॥ २०० ॥

द्व्यचः ॥ २०१ ॥ अ० ४ । १ । १२१ ॥

नदी और मानुषीवाची जो से अण् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है।

अपत्यार्थ में टाबादि स्त्रीप्रत्ययान्त द्व्यच् प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय होवे। जैसे—दत्ताया अपत्यं दात्तेयः; गौपेयः इत्यादि।

यहां 'द्व्यच्' ग्रहण इसलिये है कि—यमुनाया अपत्यं यामुनः, यहां ढक् न होवे ॥२०१॥

❀ यद्यपि वड़वा शब्द घोड़ी का भी वाचक है, तथापि यहां वड़वा शब्द से बलिष्ठ गौ का ग्रहण होता है, क्योंकि वड़वा शब्द केवल घोड़ी का ही वाचक नहीं, किन्तु ब्राह्मणी अश्वा कुंभदासी तथा अन्य भी स्त्रीजाति का नाम है। तद्यथा—

रौरवो नरके घोरे वड़वा द्विजयोषिति।
अश्वायां कुम्भदास्यां च नारीजात्यन्तरेपि च ॥ इति भाष्यप्रदीपकार कैय्यटः ॥

वृष शब्द से वीर्यवान् अश्व का ग्रहण भी करते हैं। जैसे—वृषो वीजाश्वः। तेन चार्थेन विशेषविहितेनापत्यलक्षणोऽर्थो ढको बाध्यते। तेनापत्ये वाडव इति भवति। उस पक्ष में वड़वा शब्द से घोड़ी का ग्रहण कर वृष शब्द से पूर्वोक्त प्रकार अश्व अपत्य समझना चाहिये ॥

इतश्चानिञः ॥ २०२ ॥ अ० ४ । १ । १२२ ॥

यह सूत्र सामान्य अण् का अपवाद है। अपत्यार्थ में इञ् प्रत्ययान्तभिन्न इकारान्त प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय होवे। जैसे—अत्रेरपत्यं आत्रेयः; नैध्रेयः; वार्ष्णेयः; कापेयः इत्यादि।

यहां 'इकारान्त' इसलिये कहा है कि—दाक्षिः; प्लाक्षिः। 'इञ्भिन्न' इसलिये कहा है कि—दाक्षायणः; प्लाक्षायणः, यहां इञन्त से ढक् न होवे। और 'द्व्यच्' की अनुवृत्ति इसलिये है कि—मरीचेरपत्यं मारीचः, यहां ढक् को बाध के अण् हो जावे ॥ २०२ ॥

शुभ्रादिभ्यश्च * ॥ २०३ ॥ अ० ४ । १ । १२३ ॥

यह सूत्र इञ् आदि का यथायोग्य अपवाद समझना चाहिये।

अपत्यार्थ में शुभ्र आदि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होवे। जैसे—शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः; वैष्टपुरेयः इत्यादि ॥ २०३ ॥

विकर्णकुषीतकात् काश्यपे ॥ २०४ ॥ अ० ४ । १ । १२४ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। [काश्यप] अपत्य अर्थ में विकर्ण और कुषीतक प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय हो। जैसे—विकर्णस्यापत्यं वैकर्णेयः; कौषीतकेयः।

यहां 'काश्यप' ग्रहण इसलिये है कि—वैकर्णिः; कौषीतकिः, यहां ढक् न होवे ॥२०४॥

भ्रुवो वुक् च ॥ २०५ ॥ अ० ४ । १ । १२५ ॥

यह अण् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में भ्रू प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय और इस को वुक् का आगम भी हो। जैसे—भ्रुवोऽपत्यं भ्रौवेयः ॥ २०५ ॥

कल्याण्यादीनामिनङ् च ॥ २०६ ॥ अ० ४ । १ । १२६ ॥

अपत्यार्थ में कल्याणी आदि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय और इनको इनङ् आदेश भी होवे। जैसे—कल्याण्या अपत्यं काल्याणिनेयः; ज्यैष्ठिनेयः; कानिष्ठिनेयः × इत्यादि ॥२०६॥

हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च ॥ २०७ ॥ अ० ७ । ३ । १९ ॥

जो ञित् णित् और कित् तद्धित प्रत्यय परे हों, तो हृद् भग और सिन्धु जिनके अन्त हों, उन प्रातिपदिकों के पूर्व और उत्तरपदों में अचों के आदि अच् को वृद्धि होवे।

---

* इस चकार से इस शुभ्रादिगण को आकृतिगण समझना चाहिये, कि जिससे [गाङ्गेयः] पाण्डवेयः, इत्यादि अपठित शब्दों में भी ढक् प्रत्यय हो जावे ॥

× यहां स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय तो हो ही जाता, फिर यह सूत्र इनङ् आदेश होने के लिये है।

जैसे—सुभगाया अपत्यं सौभागिनेयः; दौर्भागिनेयः; सौहार्दम्; दौर्हार्दम्; साक्तुसैन्धवः इत्यादि ॥ २०७ ॥

कुलटाया वा ॥ २०८ ॥ अ० ४ । १ । १२७ ॥

यहां इनङ् आदेश की अनुवृत्ति चली आती है।

अपत्यार्थ में कुलटा प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय और इसको [विकल्प से] इनङ् आदेश होवे। जैसे—कुलटाया अपत्यं कौलटिनेयः, कौलटेयः ॥ २०८ ॥

चटकाया ऐरक् ॥ २०९ ॥ अ० ४ । १ । १२८ ॥

यह सूत्र ढक् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में चटका शब्द से ऐरक् प्रत्यय हो। जैसे—चटकाया अपत्यं चाटकैरः ॥ २०९ ॥

वा०—चटकाच्च ॥ २१० ॥

यह वार्त्तिक इञ् का अपवाद है। चटक प्रातिपदिक से ऐरक् प्रत्यय होवे। जैसे—चटकस्याऽपत्यं चाटकैरः ॥ २१० ॥

वा०—स्त्रियामपत्ये लुक् ॥ २११ ॥

स्त्री अपत्य होवे तो ऐरक् प्रत्यय का लुक् हो जावे। जैसे—चटकाया अपत्यं स्त्री चटका ॥ २११ ॥

गोधाया ढ्रक् ॥ २१२ ॥ अ० ४ । १ । १२९ ॥

यह भी ढक् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में गोधा प्रातिपदिक से ढ्रक् प्रत्यय होवे। जैसे—गोधाया अपत्यं गौधेरः।

शुभ्रादिग में गोधा शब्द पढ़ा है, इस कारण गौधेयः, यह भी प्रयोग होजाता ॥२१२॥

आरगुदीचाम् ॥ २१३ ॥ अ० ४ । १ । १३० ॥

गोधा की अनुवृत्ति आती है। अपत्य अर्थ में गोधा प्रातिपदिक से आरक् प्रत्यय होवे, उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में। जैसे—गोधाया अपत्यं गौधारः * ॥ २१३ ॥

क्षुद्राभ्यो वा + ॥ २१४ ॥ अ० ४ । १ । १३१ ॥

यह भी ढक् का अपवाद है। और पूर्वसूत्र से ढ्रक् की अनुवृत्ति आती है।

अपत्य अर्थ में क्षुद्रा आदि प्रातिपदिकों से ढ्रक् प्रत्यय होवे, पक्ष में ढक् हो। जैसे—काणेरः, काणेयः; दासेरः, दासेयः इत्यादि ॥ २१४ ॥

---

* रक् प्रत्यय के कहने से गौधारः प्रयोग बन ही जाता, फिर आकारग्रहण से यह ज्ञापक होता है कि अन्य प्रातिपदिकों से भी 'आरक्' प्रत्यय होता है। जैसे—जाडारः; पाण्डारः इत्यादि ॥

+ क्षुद्रा उन स्त्रियों को कहते हैं जो अङ्गों से, धर्म से और अच्छे स्वभाव से रहित होवें ॥

पितृष्वसुश्छण् ॥ २१५ ॥ अ० ४ । १ । १३२ ॥

यह सूत्र अण् प्रत्यय का बाधक है। अपत्य अर्थ में पितृष्वसृ प्रातिपदिक से छण् प्रत्यय होवे। जैसे—पितृष्वसुरपत्यं पैतृष्वस्रीयः ॥ २१५ ॥

ढकि लोपः ॥ २१६ ॥ अ० ४ । १ । १३३ ॥

अपत्य अर्थ में जो ढक् प्रत्यय परे हो, तो पितृष्वसृ शब्द के अन्त का लोप होवे। जैसे—पैतृष्वसेयः * ॥ २१६ ॥

मातृष्वसुश्च ॥ २१७ ॥ अ० ४ । १ । १३४ ॥

यह भी अण् का अपवाद है।

अपत्य अर्थ में मातृष्वसृ शब्द से छण् प्रत्यय और ढक् के परे मातृष्वसृ शब्द के अन्त का लोप भी होवे। जैसे—मातृष्वसुरपत्यं मातृष्वस्रीयः, मातृष्वसेयः ॥ २१७ ॥

चतुष्पाद्भ्यो ढञ् ॥ २१८ ॥ अ० ४ । १ । १३५ ॥

यह अण् आदि का अपवाद है।

अपत्यार्थ में चतुष्पाद्वाची प्रातिपदिकों से ढञ् प्रत्यय होवे। जैसे—कामण्डलेयः; शौन्तिवाहेयः; यामेयः; माहिषेयः; शौरभेयः इत्यादि ॥ २१८ ॥

गृष्ट्यादिभ्यश्च ॥ २१९ ॥ अ० ४ । १ । १३६ ॥

यह सूत्र केवल अण् का ही अपवाद है।

अपत्य अर्थ में गृष्टि आदि प्रातिपदिकों से ढञ् प्रत्यय होवे। जैसे—गृष्ट्या अपत्यं गार्ष्टेयः; हार्ष्टेयः; हालेयः; वालेयः; त्रैश्रेयः इत्यादि ॥ २१९ ॥

राजश्वशुराद्यत् ॥ २२० ॥ अ० ४ । १ । १३७ ॥

यह अण् और इञ् दोनों का बाधक है। अपत्यार्थ में राजन् और श्वशुर प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो। जैसे—राज्ञोऽपत्यं राजन्यः; श्वशुर्य्यः ॥ २२० ॥

वा०-राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणम् ॥ २२१ ॥

सूत्र में जो राजन् शब्द से यत् कहा है, सो जातिवाची राजन् शब्द का ग्रहण समझना चाहिये। जैसे—राजन्यः, जो क्षत्रिय होवे, नहीं तो राजनः ॥ २२१ ॥

---

* यहां ढक् प्रत्यय के परे जो लोप कहा है, सो इसी ज्ञापक से पितृष्वसृ शब्द से ढक् प्रत्यय होता है ॥

क्षत्राद् घः ॥ २२२ ॥ अ० ४ । १ । १३८ ॥

यह सूत्र इञ् का बाधक है। अपत्यार्थ में क्षत्र प्रातिपदिक से घ प्रत्यय होवे। जैसे—क्षत्रियः, यहां भी जाति ही समझनी चाहिये, क्योंकि जहां जाति न हो वहां क्षात्रिः, इञन्त प्रयोग होवे ॥ २२२ ॥

कुलात् खः ॥ २२३ ॥ अ० ४ । १ । १३९ ॥

यह भी इञ् का ही अपवाद है। अपत्य अर्थ में कुल शब्द से ख प्रत्यय हो। उत्तर-सूत्र में अपूर्वपद ग्रहण करने से इस सूत्र में पूर्वपदसहित और केवल का भी ग्रहण होता है। जैसे—श्रोत्रियकुलीनः; आढ्यकुलीनः; कुलीनः इत्यादि ॥ २२३ ॥

अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ * ॥२२४॥ अ० ४ । १ । १४० ॥

अपत्यार्थ में पूर्वपदरहित कुल शब्द से यत् और ढकञ् प्रत्यय विकल्प करके होवें। जैसे—कुल्यः; कौलेयकः; कुलीनः।

यहां 'पद' ग्रहण इसलिये है कि बहुच् पूर्वपद हो तो भी ख प्रत्यय होजावे। जैसे—बहुकुल्यः; बहुकौलेयकः; बहुकुलीनः ॥ २२४ ॥

महाकुलादञ्खञौ ॥ २२५ ॥ अ० ४ । १ । १४१ ॥

यहां विकल्प की अनुवृत्ति आती है।

अपत्यार्थ में महाकुल प्रातिपदिक से अञ् और खञ् प्रत्यय विकल्प करके होवें, पक्ष में ख होवे। जैसे—माहाकुलः; माहाकुलीनः; महाकुलीनः ॥ २२५ ॥

दुष्कुलाड् ढक् ॥ २२६ ॥ अ० ४ । १ । १४२ ॥

अपत्यार्थ में दुष्कुल शब्द से ढक् प्रत्यय विकल्प करके हो, पक्ष में ख हो जावे। जैसे—दौष्कुलेयः; दुष्कुलीनः ॥ २२६ ॥

स्वसुश्छः ॥ २२७ ॥ अ० ४ । १ । १४३ ॥

अपत्य अर्थ में स्वसृ प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हो। जैसे—स्वसुरपत्यं स्वस्रीयः। यह अण का बाधक है ॥ २२७ ॥

भ्रातुर्व्यच्च ॥ २२८ ॥ अ० ४ । १ । १४४ ॥

यह सूत्र भी अण् का अपवाद है। अपत्यार्थ में भ्रातृ शब्द से व्यत् और चकार से छ प्रत्यय भी होवे। जैसे—भ्रातृव्यः; भ्रात्रीयः ॥ २२८ ॥

* यह अप्राप्तविभाषा इसलिये है कि कुल शब्द से यत् और ढकञ् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है ॥

व्यन् सपत्ने * ॥ २२९ ॥ अ० ४ । १ । १४५ ॥

सपत्न अर्थात् शत्रु वाच्य हो, तो भ्रातृ प्रातिपदिक से व्यन् प्रत्यय हो। जैसे—पाप्मना भ्रातृव्येण; भ्रातृव्यः कण्टकः ॥ २२९ ॥

रेवत्यादिभ्यष्ठक् ॥ २३० ॥ अ० ४ । १ । १४६ ॥

यह सूत्र ढक् आदि का अपवाद है। अपत्यार्थ में रेवती आदि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—रेवत्या अपत्यं रैवतिकः; आश्वपालिकः; माणिपालिकः इत्यादि ॥२३०॥

गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च ॥ २३१ ॥ अ० ४ । १ । १४७ ॥

यह ढक् का अपवाद है। निन्दित युवापत्य अर्थ में गोत्रसंज्ञक स्त्रीवाची प्रातिपदिक से ण, और चकार से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—गार्ग्या अपत्यं जाल्मो गार्ग्यः, गार्गिकः; ग्लुचुकायन्या अपत्यं ग्लौचुकायनः, ग्लौचुकायनिकः।

यहां 'गोत्र' ग्रहण इसलिये है कि—कारिकेयो जाल्मः, यहां कारिका शब्द गोत्रप्रत्ययान्त नहीं है। 'स्त्रीवाची' इसलिये है कि—औपगविर्जाल्मः, यहां न होवे। 'कुत्सन' इसलिये है कि—गार्गेयो माणवकः, यहां निन्दा के न होने से उत्सर्ग ढक् हो गया, किन्तु ण और ठक् नहीं हुए ॥ २३१ ॥

वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम् ॥ २३२ ॥ अ० ४ । १ । १४८ ॥

यहां कुत्सन पद की अनुवृत्ति आती है। अपत्य और कुत्सन अर्थ में वृद्धसंज्ञक सौवीर गोत्रवाची प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय बहुल करके हो। जैसे—भागवित्तेर्युवापत्यं भागवित्तिकः; तार्णविन्दवस्य युवापत्यं तार्णविन्दविकः। पक्ष में फक् और इञ् हो जाते हैं भागवित्तायनः; तार्णविन्दविः।

यहां 'वृद्ध' ग्रहण स्त्री की निवृत्ति के लिये है। 'सौवीर' ग्रहण इसलिये है कि—औपगविः, यहां न होवे। और 'कुत्सन' की अनुवृत्ति इसलिये है कि—भागवित्तायनो माणवकः, यहां भी ठक् न होवे ॥ २३२ ॥

फेश्छ च ॥ २३३ ॥ अ० ४ । १ । १४९ ॥

कुत्सन और सौवीर पदों की अनुवृत्ति आती है। अपत्यार्थ में फिञन्त सौवीर गोत्रवाची प्रातिपदिक से छ और चकार से ठक् प्रत्यय भी होवे। जैसे—यामुन्दायनीयः, यामुन्दायनिकः।

* यहां अपत्यार्थ की विवक्षा नहीं है, क्योंकि भ्राता का पुत्र शत्रु नहीं हो सकता, और इसी कारण भ्रातृ शब्द का प्रकृत्यर्थ यहां प्रधान नहीं रहता है, किन्तु प्रत्ययार्थ जो शत्रु है, वही प्रधान रहता है॥

यहां 'कुत्सन' ग्रहण इसलिये है कि—यामुन्दायनिः, यहां अण् का लुक् हो गया है। 'सौवीर' इसलिये है कि—तैकायनिः, यहां छ न होवे ॥ २३३ ॥

फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ ॥२३४॥ अ० ४ । १ । १५० ॥

सौवीर पद की अनुवृत्ति यहां आती है, और कुत्सन पद की निवृत्ति हुई। और यह सूत्र फक् प्रत्यय का अपवाद है।

अपत्य अर्थ में सौवीर गोत्रवाची फाण्टाहृति और मिमत प्रातिपदिकों से ण और फिञ् प्रत्यय होवे। जैसे—फाण्टाहृतेरपत्यं फाण्टाहृतः, फाण्टाहृतायनिः; मैमतः, मैमतायनिः।

यहां 'सौवीर' का ग्रहण इसलिये है कि—फाण्टाहृतायनः; मैमतायनः, यहां ण और फिञ् न हुए ॥ २३४ ॥

कुर्वादिभ्यो ण्यः ॥ २३५ ॥ अ० ४ । १ । १५१ ॥

यह भी इञ् आदि का बाधक यथायोग्य समझना चाहिये।

अपत्यार्थ में कुरु आदि प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय हो। जैसे—कुरोरपत्यं कौरव्यः; गार्ग्यः; माङ्गुष्यः; आजमारक्यः इत्यादि ॥ २३५ ॥

सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च ॥ २३६ ॥ अ० ४ । १ । १५२ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। अपत्यार्थ में सेनान्त लक्षण और कारि अर्थात् कुंभार आदि कारीगरवाची प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय होवे। जैसे—सेनान्त—भीमसेनस्यापत्यं भैमसेन्यः*; कारिषेण्यः; हारिषेण्यः; वैष्वक्सेन्यः; औग्रसेन्यः इत्यादि। लक्षण—लाक्षण्यः। कारि—तान्तुवाय्यः; कौम्भकार्य्यः इत्यादि ॥ २३६ ॥

उदीचामिञ् ॥ २३७ ॥ अ० ४ । १ । १५३ ॥

यहां सेनान्त आदि की अनुवृत्ति आती है।

अपत्यार्थ में उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में सेनान्त लक्षण और कारिवाची प्रातिपदिकों से इञ् प्रत्यय होवे। जैसे—भीमसेनस्यापत्यं भैमसेनिः; हारिषेणिः; लाक्षणिः; तान्तुवायिः; कौम्भकारिः; नापितिः इत्यादि ॥ २३७ ॥

तिकादिभ्यः फिञ् ॥ २३८ ॥ अ० ४ । १ । १५४ ॥

यह भी यथायोग्य इञ् आदि का बाधक है।

अपत्यार्थ में तिक आदि प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय होवे। जैसे—तिकस्यापत्यं तैकायनिः; कैतवायनिः; सांज्ञायनिः इत्यादि ॥ २३८ ॥

---

* यद्यपि कुरुवाची होने से भीमसेन शब्द से अण् प्राप्त हैं, तो भी परविप्रतिषेध से ण्य ही होता है ॥

कौसल्यकार्मार्य्याभ्यां च ॥ २३९ ॥ अ० ४ । १ । १५५ ॥

यह यञ् प्रत्यय का बाधक है । अपत्यार्थ में कौसल्य और कार्मार्य शब्दों से फिञ् प्रत्यय हो । जैसे—कौसल्यस्यापत्यं कौसल्यायनिः; कार्मार्य्यायणिः ॥ २३९ ॥

वा०—फिञ्प्रकरणे दगुकोसलकर्मारच्छागवृषाणां युट् च ॥२४०॥

फिञ् प्रकरण में दगु कोसल कर्मार छाग और वृष प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय और प्रत्यय को युट् का आगम होवे । जैसे—दागव्यायनिः; कौसल्यायनिः; कार्मार्य्यायणिः छाग्यायनिः; वार्ष्यायणिः ॥ २४० ॥

अणो द्व्यचः ॥ २४१ ॥ अ० ४ । १ । १५६ ॥

यह सूत्र इञ् प्रत्यय का अपवाद है । अपत्यार्थ में अणन्त द्व्यच् प्रातिपदिक से फिञ् प्रत्यय हो । जैसे—कार्त्रस्यापत्यं कार्त्रायणिः; हात्रायणिः; यास्कायनिः इत्यादि।

यहां 'अणन्त' इसलिये है कि—दाक्षायणः, यहां न हो । और 'द्व्यच्' इसलिये कहा है कि—औपगविः, यहां भी फिञ न होवे ॥ २४१ ॥

वा०—त्यदादीनां वा फिञ् वक्तव्यः * ॥ २४२ ॥

अपत्य अर्थ में त्यदादि प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय विकल्प करके होवे । जैसे—त्यादायनिः, त्यादः; यादायनिः, यादः; तादायनिः, तादः इत्यादि ॥ २४२ ॥

उदीचां वृद्धादगोत्रात् ॥ २४३ ॥ अ० ४ । १ । १५७ ॥

यह भी इञ् आदि का बाधक है । अपत्यार्थ में गोत्रभिन्न वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से उत्तरदेशीय आचार्य्यों के मत में फिञ् प्रत्यय होवे । जैसे—आम्रगुप्तस्यापत्यं आम्रगुप्तायनिः; शालगुप्तायनिः; ग्रामरक्षायणिः; नापितायनिः इत्यादि ।

यहां 'उत्तरदेशीय आचार्य्यों का मत' इसलिये कहा है कि—आम्रगुप्तिः, यहां फिञ् न होवे । 'वृद्ध संज्ञक' इसलिये है कि—याज्ञदत्तिः, यहां भी न हो । और 'गोत्र का निषेध' इसलिये है कि—औपगविः, यहां भी न होवे ॥ २४३ ॥

वाकिनादीनां कुक् च ॥ २४४ ॥ अ० ४ । १ । १५८ ॥

उत्तरदेशीय आचार्य्यों के मत में अपत्य अर्थ में वाकिन आदि प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय, और इनको कुक् का आगम भी होवे । जैसे—वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः पक्ष में वाकिनिः; गारेधकायनिः, गारेधिः इत्यादि ।

यह अण् और इञ् दोनों का अपवाद है ॥ २४४ ॥

---

* यह वार्त्तिक अण् प्रत्यय का बाधक है । और इसमें अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि फिञ् किसी वार्त्तिक से प्राप्त नहीं । फिञ् के विकल्प से पक्ष में अण् भी हो जाता है ॥

पुत्रान्तादन्यतरस्याम् ॥ २४५ ॥ अ० ४ । १ । १५९ ॥

यह अण् का अपवाद और इसमें अप्राप्तविभाषा है।

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में पुत्रान्त प्रातिपदिक से फिञ् प्रत्यय और इनको कुक् का आगम विकल्प करके होवे। जैसे—गार्गीपुत्रस्यापत्यं गार्गीपुत्रकायणिः; गार्गीपुत्रायणिः, गार्गीपुत्रिः; वात्सीपुत्रकायणिः, वात्सीपुत्रायणिः, वात्सीपुत्रिः* इत्यादि ॥२४५॥

प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम् ॥ २४६ ॥ अ० ४ । १ । १६० ॥

अपत्यार्थ और प्राचीन आचार्यों के मत में वृद्धसंज्ञारहित प्रातिपदिक से फिन् प्रत्यय बहुल करके हो जावे। जैसे—ग्लुचुकस्यापत्यं ग्लुचुकायनिः; अहिचुम्बकायनिः।

यहां 'प्राचीनों का' ग्रहण इसलिये है कि—ग्लौचुकिः, आहिचुम्बकिः, यहां इञ् हो जाता है। और 'वृद्ध का निषेध' इसलिये किया है कि—राजदन्तिः, यहां फिन् न होवे ॥ २४६ ॥

मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च ॥ २४७ ॥ अ० ४ । १ । १६१ ॥

जाति अर्थ हो, तो मनु शब्द से अञ् और यत् प्रत्यय और मनु शब्द को षुक् का आगम हो जावे। जैसे—मानुषः, मनुष्यः।

यहां प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय से जाति का बोध होता है। यहां अपत्य अर्थ की विवक्षा नहीं है। और जहां अपत्य अर्थ विवक्षित होता है, वहां अण् ही हो जाता है। जैसे—मनोरपत्यं मानवी प्रजा ॥ २४७ ॥

का०—अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः।
नकारस्य च मूर्द्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः ॥ २४८ ॥

मूढ निन्दित अपत्य अर्थ में मनु प्रातिपदिक से औत्सर्गिक अण् प्रत्यय का स्मरण करना चाहिये। अर्थात् अण् प्रत्यय हो जावे और मनु शब्द के नकार को णत्व होवे। जैसे—मनोरपत्यं कुत्सितो मूढो माणवः ॥ २४८ ॥

अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ॥ २४९ ॥ अ० ४ । १ । १६२ ॥

जो पौत्रप्रभृति अर्थात् नाती से आदि लेकर अपत्य नाम सन्तान होता है, वह गोत्रसंज्ञक होवे। जैसे—गर्गस्याऽपत्यं पौत्रप्रभृति गार्ग्यः; वात्स्यः।

---

* यहां (उदीचां वृद्धा०) इससे फिञ् प्रत्यय तो हो ही जाता, फिर 'कुक्' का आगम विकल्प से होने के लिये यह सूत्र है। एक कुक् के आगम का विकल्प, और उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में फिञ् का विकल्प इन दो विकल्पों से तीन प्रयोग होते हैं ॥

यहां 'पौत्रप्रभृति' इसलिये कहा है कि—अनन्तरापत्य अर्थात् पुत्र अर्थ में गोत्र का प्रत्यय न होवे। जैसे—कौञ्जिः; गार्गिः * इत्यादि ॥ २४९ ॥

जीवति तु वंश्ये युवा ॥ २५० ॥ अ० ४ । १ । १६३ ॥

जो उत्पत्ति का प्रबन्ध है सो वंश, और जो उस वंश में होवे वह वंश्य कहाता है।

जब तक पिता आदि कुटुम्ब के वृद्ध पुरुष जीवते हों, तब तक जो पौत्र आदि सन्तानों के अपत्य हैं, वे युवसंज्ञक होवें।

यहां तु शब्द निश्चयार्थ है कि उस समय युवसंज्ञा ही हो, गोत्रसंज्ञा न हो। जैसे—गार्ग्यायणः; वात्स्यायनः इत्यादि ॥ २५० ॥

भ्रातरि च ज्यायसि ॥ २५१ ॥ अ० ४ । १ । १६४ ॥

जो बड़ा भाई जीता हो और पिता आदि मर भी गये हों, तो छोटे भाई की युवसंज्ञा जाननी चाहिये। जैसे—गार्ग्यायणः; वात्स्यायनः; दाक्षायणः; प्लाक्षायणः इत्यादि ॥२५१॥

वाऽन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति + ॥ २५२ ॥

जो भ्राता से अन्य सात पीढ़ी में चाचा दादा आदि अधिक अवस्थावाले पुरुष जीते हों, तो भी पौत्रप्रभृति के अपत्यों की विकल्प करके युवसंज्ञा होवे। जैसे—गर्गस्यापत्यं गार्ग्यो वा गार्ग्यायणः; वात्स्यो वा वात्स्यायनः; दाक्षिर्वा दाक्षायणः इत्यादि ॥ २५२ ॥

वा०—वृद्धस्य च पूजायाम् ‡ ॥ २५३ ॥

वृद्ध अर्थात् जिस प्रशंसित की वृद्धसंज्ञा विधान की है, सो भी पूजा अर्थ में विकल्प करके युवसंज्ञक होवे। जैसे—तत्रभवान् गार्ग्यायणः, गार्ग्यो वा; तत्रभवान् वात्स्यायनः, वात्स्यो वा; तत्रभवान् दाक्षायणः, दाक्षिर्वा इत्यादि।

यहां पूजाग्रहण इसलिये है कि—गार्ग्यः, यहां युवसंज्ञा न हो ॥ २५३ ॥

---

* यहां गोत्र में कुञ्ज शब्द से च्फञ्, और गर्ग शब्द से यञ् विहित हैं, सो नहीं होते। अनन्तरापत्य में इञ् होजाता है ॥

+ यहां जीवति शब्द की अनुवृत्ति (जीवति तु०) इस पूर्व सूत्र से चली आती, फिर जीवति शब्द का ग्रहण इसलिये है कि संज्ञी का विशेषण यह जीवति होवे। और पूर्व का जो जीवति है, वह सपिण्ड का विशेषण समझना चाहिये ॥

‡ (वृद्धस्य च०) और (यूनश्च०) ये दोनों काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र करके लिखे और व्याख्यात भी हैं, परन्तु महाभाष्य में वार्त्तिकरूप से इनका व्याख्यान किया है, इसलिये यहां वार्त्तिक ही लिखे हैं ॥

वा०—यूनश्च कुत्सायाम् ॥ २५४ ॥

कुत्सा नाम निन्दा अर्थ में युवा की युवसंज्ञा विकल्प करके होवे। जैसे—गार्ग्यो जाल्मः, गार्ग्यायणो वा; वात्स्यो जाल्मः, वात्स्यायनो वा; दाक्षिर्जाल्मः, दाक्षायणो वा इत्यादि ॥ २५४ ॥

जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् * ॥ २५५ ॥ अ० ४ । १ । १६८ ॥

जो क्षत्रियवाची जनपद शब्द हो, तो उससे अपत्यार्थ में अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—पाञ्चालः; ऐक्ष्वाकः; वैदेहः इत्यादि।

यहां 'जनपद शब्द से' इसलिये कहा है कि—द्रुह्योरपत्यं द्रौह्यवः; पौरवः, यहां अञ् न होवे। 'क्षत्रियवाची' का ग्रहण इसलिये है कि—ब्राह्मणस्य पाञ्चालस्यापत्यं पाञ्चालिः; वैदेहिः, इत्यादि में भी अञ् प्रत्यय न होवे ॥ २५५ ॥

वा०—क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदशब्दात् तस्य राजन्यापत्यवत् × ॥२५६

जो क्षत्रिय के तुल्य जनपदवाची शब्द है, उससे राजा के सम्बन्ध में अपत्य के तुल्य प्रत्यय होवे। जैसे—पञ्चालानां राजा पाञ्चालः; वैदेहः; मागधः + इत्यादि ॥ २५६ ॥

साल्वेयगान्धारिभ्यां च ॥ २५७ ॥ अ० ४ । १ । १६९ ॥

यह वक्ष्यमाण ञ्यङ् प्रत्यय का अपवाद है।

अपत्य और तद्राज अर्थ में साल्वेय और गान्धारि इन शब्दों से अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—साल्वेयानामपत्यं तेषां राजा वा साल्वेयः; गान्धारः ॥ २५७ ॥

द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ॥ २५८ ॥ अ० ४ । १ । १७० ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में क्षत्रियवाची दो स्वर वाले शब्द मगध कलिङ्ग और सूरमस प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे। जैसे—अङ्गानामपत्यं तेषां राजा वा आङ्गः; वाङ्गः; मागधः; कालिङ्गः; सौरमसः इत्यादि ॥ २५८ ॥

---

* यह जनपद शब्द मुख्य देश का पर्य्यायवाची है सो इससे देशविशेष पञ्चाल आदि का ग्रहण होता है। वे पञ्चाल आदि शब्द क्षत्रियों और देशविशेष के नाम एक ही से बने रहते हैं ॥

× यहां तक अपत्याधिकार केवल चला आता है। अब जो देशविशेष और क्षत्रियविशेष के नाम पञ्चाल आदि शब्द हैं, उन देश के नामों से तद्राज अर्थात् उन देशों का राजा इस अर्थ में और क्षत्रियवाची शब्दों से अपत्य अर्थ में यहां से पाद के अन्त पर्यन्त प्रत्ययविधान समझना चाहिये ॥

+ इन पञ्चाल आदि शब्दों से तद्राज अर्थ में (अवृद्धादपि०) इस सूत्र से शैषिक वुञ् प्रत्यय प्राप्त है, उसका अपवाद यहां अञ् विधान है ॥

वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् ॥ २५६ ॥ अ० ४ । १ । १७१ ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में जनपद क्षत्रियवाची वृद्धसंज्ञक इकारान्त कोसल और अजाद प्रातिपदिक से ञ्यङ् प्रत्यय होवे ।

यह सूत्र अञ् का अपवाद है । जैसे—वृद्ध—आम्बष्ठानामपत्यं तेषां राजा वा आम्बष्ठ्यः; सौवीर्यः । इकारान्त—आवन्त्यः; कौन्त्यः । कौसल्यः; आजाद्यः * ॥२५६॥

वा०—पाण्डोर्जनपदशब्दात् क्षत्रियशब्दाड्ड्यण् वक्तव्यः ॥२६०॥

जो जनपदवाची पाण्डु क्षत्रिय शब्द है, उससे अपत्य और तद्राज अर्थ में ड्यण् प्रत्यय होवे । जैसे—पाण्डूनामपत्यं तेषां राजा वा पाण्ड्यः ॥ २६० ॥

कुरुनादिभ्यो ण्यः ॥ २६१ ॥ अ० ४ । १ । १७२ ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में जनपद क्षत्रियवाची कुरु और नकारादि प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय होवे । यह अण् और अञ् का अपवाद है । जैसे—कुरूणामपत्यं तेषां राजा वा कौरव्यः । नकारादि—नैषध्यः; नैपथ्यः इत्यादि ॥ २६१ ॥

साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् ॥२६२॥ अ० ४।१।१७३॥

यह सूत्र अञ् का अपवाद है । अपत्य और तद्राज अर्थ में साल्व नाम देशविशेष के अवयव प्रत्यग्रथ कलकूट और अश्मक प्रातिपदक से इञ् प्रत्यय होवे । जैसे—औदुम्बरिः; तैलखलिः; माद्रकारिः; यौगन्धरिः; भौलिङ्गिः; शारदण्डिः; प्रात्यग्रथिः; कालकूटिः; आश्मकिः इत्यादि ॥ २६२ ॥

ते तद्राजाः ॥ २६३ ॥ अ० ४ । १ । १७४ ॥

(जनपदशब्दात्०) इस सूत्र से लेके यहां तक जो २ प्रत्यय कहे हैं, वे तद्राजसंज्ञक होते हैं । इस का यह प्रयोजन है कि बहुवचन में लुक् होजावे । जैसे—पाञ्चालः, पाञ्चालौ, पञ्चालाः इत्यादि ॥ २६३ ॥

कम्बोजाल्लुक् ॥ २६४ ॥ अ० ४ । १ । १७५ ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में कम्बोज शब्द से विहित जो अञ् प्रत्यय उसका लुक् हो । जैसे—कम्बोजस्यापत्यं तेषां राजा वा कम्बोजः ॥ २६४ ॥

वा०—कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनं चोलाद्यर्थम् ॥ २६५ ॥

कम्बोज शब्द से जो लुक् कहा है, सो कम्बोज आदि से कहना चाहिये । जैसे—कम्बोजः; चोलः; केरलः; शकः; यवनः ॥ २६५ ॥

---

* यहां इकार में 'तपरकरण' इसलिये है कि जो कुमारी जनपद शब्द दीर्घ ईकारान्त है, उससे ञ्यङ् प्रत्यय न होवे, किन्तु अञ् प्रत्यय हो जावे । जैसे—कौमारः ॥

स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ॥ २६६ ॥ अ० ४ । १ । १७६ ॥

जो स्त्री अपत्य वा राज्ञी अभिधेय हो, तो अवन्ति कुन्ति और कुरु शब्द से जो उत्पन्न तद्राजसंज्ञक प्रत्यय उस का लुक् हो। जैसे—अवन्तीनामपत्यं तेषां राज्ञी वा अवन्ती; कुन्ती; कुरूः।

यहां 'स्त्री' ग्रहण इसलिये है कि—आवन्त्यः; कौन्त्यः; कौरव्यः +, यहां लुक् न होवे॥ २६६ ॥

अतश्च * ॥ २६७ ॥ अ० ४ । १ । १७७ ॥

जो स्त्रीवाच्य हो, तो तद्राजसंज्ञक अकार प्रत्यय का लुक् होवे। जैसे—मद्राणामपत्यं तद्राज्ञी वा मद्री; शूरसेनी इत्यादि।

यहां जातिवाची से (जातेरस्त्री०) इस करके ङीष् प्रत्यय हो जाता है॥ २६७॥

न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ॥ २६८ ॥ अ० ४ । १ । १७८ ॥

प्राच्य पूर्वदेशों के विशेषनाम भर्गादि और यौधेयादि प्रातिपदिकों से विहित तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् न होवे। जैसे—प्राच्य—अङ्गानामपत्यं तद्राज्ञी वा आङ्गी; वाङ्गी; मागधी इत्यादि। भर्गादि—भार्गी; कारूषी; कैकयी इत्यादि। यौधेयादि—यौधेयी; शौभ्रयी; शौक्रेयी इत्यादि ॥ २६८ ॥ —इति प्रथमः पादः ॥

अथ द्वितीयः पादः—

तेन रक्तं रागात् ॥ २६९ ॥ अ० ४ । २ । १ ॥

यहां समर्थों का प्रथम आदि सब की अनुवृत्ति चली आती है।

तृतीयासमर्थ रङ्गवाची प्रातिपदिक से रंगा है, इस अर्थ में, जिस से जो प्रत्यय प्राप्त हो वह हो जावे। जैसे—कुसुम्भेन रक्तं वस्त्रं कौसुम्भम्; काषायम्; माञ्जिष्ठम् इत्यादि।

यहां 'रंग वाची' का ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम्, यहां प्रत्यय की उत्पत्ति न होवे ॥ २६९ ॥

\+ यहां अवन्ति और कुन्ति शब्द से इकारान्त के होने से (वृद्धेत्को०) इस से ञ्यङ्, और कुरु शब्द से ण्य प्रत्यय (कुरुना०) इस उक्त सूत्र से होजाते हैं॥

* इस सूत्र में तदन्तविधि अर्थात् अकारान्त प्रत्यय का लुक् इसलिये नहीं होता कि पूर्व सूत्र में अवन्ति आदि शब्दों से लुक् कहा है, वही ज्ञापक है। जो यहां अदन्त का लुक् होवे, तो पूर्व सूत्र में लुक् व्यर्थ होजावे॥

लाक्षारोचनाट्ठक् ॥ २७० ॥ अ० ४ । २ । २ ॥

यहां पूर्वसूत्र के सब पदों की अनुवृत्ति चली आती है। लाक्षादि और रोचन प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—लाक्षया रक्तं वस्त्रं लाक्षिकम्; रौचनिकम्।

अधिकार होने से अण् प्रत्यय पाता है, उस का बाधक यह सूत्र है ॥ २७० ॥

वा०—ठक्प्रकरणे शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् ॥ २७१ ॥

अण् का ही अपवाद यह भी वार्तिक है। शकल और कर्दम प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—शकलेन रक्तं शाकलिकम्; कार्दमिकम् ॥ २७१ ॥

वा०—नील्या अन् ॥ २७२ ॥

नीली प्रातिपदिक से अन् प्रत्यय होवे। जैसे—नील्या रक्तं नीलम् ॥ २७२ ॥

वा०—पीतात्कन् ॥ २७३ ॥

पीत प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होवे। जैसे—पीतेन रक्तं पीतकम् ॥ २७३ ॥

वा०—हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् ॥ २७४ ॥

हरिद्रा और महारजना प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—हरिद्रया रक्तं हारिद्रम् *; माहारजनम् ॥ २७४ ॥

नक्षत्रेण युक्तः कालः ॥ २७५ ॥ अ० ४ । २ । ३ ॥

युक्त काल अर्थ जो अभिधेय हो, तो तृतीयासमर्थ नक्षत्रविशेषवाची प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होवे। जैसे—पुष्येण युक्तः कालः=पौषी रात्रिः; पौषमहः; माघी रात्रिः माघमहः इत्यादि।

यहां 'नक्षत्रवाची' का ग्रहण इसलिये है कि—चन्द्रमसा युक्ता रात्रिः, यहां प्रत्यय न होवे ॥ २७५ ॥

लुबविशेषे ॥ २७६ ॥ अ० ४ । २ । ४ ॥

जहां काल का अवयवरूप कोई विशेष अर्थ विहित न हो, वहां पूर्व सूत्र से जो विहित प्रत्यय उसका लुप् हो जावे। जैसे—पुष्येण युक्तः कालोऽद्य पुष्यः; अद्य कृत्तिकाः अद्य रोहिणी।

यहां 'अविशेष' इसलिये कहा है कि—पौषी रात्रिः; पौषमहः, यहां लुप् न होवे ॥ २७६ ॥

---

* 'हारिद्रौ कुक्कुटस्य पादौ' हरिद्रा से रङ्गे हुए के समान मुर्गे के पग हैं। इस प्रयोजन में उपमानवाची नाम के अञ् प्रत्यय हो जाता है ॥

दृष्टं साम ॥ २७७ ॥ अ० ४ । २ । ७ ॥

सामवेद का देखना अर्थात् पढ़ना पढ़ाना विचारना अर्थ हो, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से अण् आदि यथाप्राप्त प्रत्यय होवें। जैसे—वसिष्ठेन दृष्टं साम वासिष्ठम्; वैश्वामित्रम्; देवेन दृष्टं साम दैव्यं दैवं वा; प्रजापतिना दृष्टं साम प्राजापत्यम् इत्यादि ॥२७७॥

वा०—सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढक् * ॥ २७८ ॥

यहां से आगे जितने प्राग्दीव्यतीय अर्थ हैं, वे इस वार्त्तिक में सर्वत्र शब्द से विवक्षित हैं।

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अग्नि और कलि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होवे। जैसे—अग्निना दृष्टं सामाग्नेयम्; अग्नेरागतमाग्नेयम्; अग्नेः स्वमाग्नेयम्; अग्निर्देवताऽस्याग्नेयम् इत्यादि। इसी प्रकार कलिना दृष्टं साम कालेयम्, इत्यादि भी समझो ॥ २७८ ॥

का०—दृष्टे सामनि जाते च द्विरण् डिद्वा विधीयते।
तीयादीकङ् न विद्याया गोत्रादङ्कवदिष्यते ॥ २७९ ॥

सामवेद के देखने अर्थ में अण् प्रत्यय विकल्प करके डित्संज्ञक होवे। जैसे—उशनसा दृष्टं साम औशनसम्, औशनम्। यहां डित् पक्ष में टि का लोप हो जाता है।

तथा (तत्र जातः) इस आगामी प्रकरण में अपने अपवाद का अपवाद होके फिर विधान किया अण् प्रत्यय विकल्प करके डित् होवे। जैसे—शतभिषजि जातः शातभिषजः, शातभिषः। डित् का प्रयोजन यहां भी पक्ष में टि लोप है। यहां शतभिषज् नक्षत्रवाची प्रातिपदिक से युक्त काल अर्थ में अण् प्रत्यय होकर उसका अविशेष अर्थ में लुप् हो जाता है, पीछे शैषिक जात अर्थ में अण् का बाधक कालवाची से ठञ् प्राप्त होता है, फिर ठञ् का बाधक (सन्धिवेला०) इससे अण् विधान किया है।

तीयप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ईकक् प्रत्यय होवे। जैसे—द्वैतीयीकम्; तार्तीयीकम्। और विद्यावाची तीयप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ईकक न होवे। जैसे—द्वितीया विद्या; तृतीया विद्या।

और गोत्रवाची प्रातिपदिकों से सामवेद के देखने अर्थ में अङ्क आदि अर्थों में जो प्रत्यय होते हैं, वे यहां भी होवें। जैसे—(गोत्रचरणा०) इस सूत्र से गोत्रवाची शब्दों से अङ्क अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है, वैसे ही यहां भी होवे। जैसे—गार्ग्येण दृष्टं साम गार्ग्यकम्; वात्स्यकम्; औपगवेन दृष्टं साम औपगवकम्; कापटवकम् इत्यादि ॥ २७९ ॥

---

* इस वार्त्तिक को काशिका आदि पुस्तकों में (अग्नेर्ढक्) इतना सूत्र लिखा है। फिर वार्त्तिक भी ऐसा ही लिखा है, सो महाभाष्य से विरुद्ध होने के कारण अशुद्ध जानना चाहिये ॥

परिवृतो रथः ॥ २८० ॥ अ० ४ । २ । ६ ।

जो परिवृत अर्थात् किसी चाम आदि से मढ़ा रथ आदि यान अर्थ वाच्य हो, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे । जैसे—चर्मणा परिवृतो रथश्चार्मणः, काम्बलः; वास्त्रः इत्यादि ।

यहां 'रथ' का ग्रहण इसलिये किया है कि—वस्त्रेण परिवृतं शरीरम्, यहां प्रत्यय न होवे ॥ २८० ॥

कौमाराऽपूर्ववचने ॥ २८१ ॥ अ० ४ । २ । १२ ॥

पूर्व जिसका किसी के साथ विवाहविषयक कथन भी न हुआ हो, उस अपूर्ववचन अर्थ मे कुमारी शब्द से अण्प्रत्ययान्त कौमार निपातन किया है ॥ २८१ ॥

वा०–कौमारापूर्ववचन इत्युभयतः स्त्रिया अपूर्वत्वे ॥ २८२ ॥

स्त्री का अपूर्ववचन अर्थ हो तो स्त्री और पुल्लिङ्ग में कौमार शब्द निपातन किया है । जैसे—अपूर्वपतिं कुमारीमुपपन्नः कौमारो भर्त्ता; अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना कौमारी भार्य्या * ॥ २८२ ॥

तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ॥ २८३ ॥ अ० ४ । २ । १३ ॥

उद्धृत अर्थात् रखने अर्थ में सप्तमीसमर्थ पात्रवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे। जैसे—पञ्चकपालेषूद्धृत ओदनः पञ्चकपालः ×; शरावेषूद्धृतः शारावः इत्यादि ।

यहां 'पात्रवाची' का ग्रहण इसलिये है कि—पाणावुद्धृत ओदनः, यहां प्रत्यय न होवे ॥ २८३ ॥

साऽस्मिन् पौर्णमासीति ॥ २८४ ॥ अ० ४ । २ । २० ॥

अधिकरण अर्थ वाच्य होवे, तो पौर्णमासी विशेषवाची प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें । जैसे—पुष्येण युक्ता पौर्णमासी पौषी, पौषी पौर्णमासी अस्मिन् मासे स पौषो मासः; पौषोऽर्धमासः; पौषः संवत्सरः । इसी प्रकार मघानक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी माघी, साऽस्मिन्वर्त्तत इति माघो मासः; फाल्गुनः; चैत्रः; वैशाखः; ज्यैष्ठः; आषाढः; श्रावणः; भाद्रपदः; आश्विनः; कार्त्तिकः; मार्गशीर्षः ।

इस सूत्र में 'इतिकरण' से संज्ञाग्रहण का प्रयोजन सूत्रकार का है ॥ २८४ ॥

---

* इस वार्त्तिक का प्रयोजन यह है कि प्रत्यय विधान तो कुमारी शब्द से ही होवे, परन्तु प्रत्ययार्थ दोनों लिङ्ग में रहे । अपूर्ववचन अर्थ का सम्बन्ध कुमारी के साथ ही रहे । जैसे—पूर्व जिस का कोई पति कहने मात्र भी न हुआ हो, ऐसी कुमारी को प्राप्त हुआ पुरुष कौमार, और वैसी ही कुमारी पति को प्राप्त हुई कौमारी ॥

× यहां पञ्चकपाल शब्द में (द्विगोर्लुगनपत्ये) इस पूर्वलिखित सूत्र से प्राग्दीव्यतीय अनपत्य प्रत्यय का लुक् द्विगु संज्ञा के होने से हो जाता है ॥

वा०—साऽस्मिन् पौर्णमासीति संज्ञाग्रहणम् ‡ ॥ २८५ ॥

(साऽस्मिन्०) इस सूत्र में संज्ञाग्रहण करना चाहिये। अर्थात् जहां प्रकृति प्रत्यय के समुदाय से महीनों की संज्ञा प्रकट हो, वहीं प्रत्यय होवे। और—पौषी पौर्णमास्यस्मिन् पञ्चदशरात्रे, यहां प्रत्यय न हो ॥ २८५ ॥

आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् ॥ २८६ ॥ अ० ४ । २ । २१ ॥

यह सूत्र पूर्वसूत्र से प्राप्त अण् का अपवाद है ॥

पौर्णमासी समानाधिकरण आग्रहायणी और अश्वत्थ प्रातिपदिकों से अधिकरण अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—आग्रहायणी पौर्णमास्यस्मिन् मासे स आग्रहायणिको मासः अर्द्धमासो वा; आश्वत्थिकः ॥ २८६ ॥

विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः* ॥२८७॥ अ० ४।२।२२॥

पौर्णमासी समानाधिकरण फाल्गुनी श्रवणा × कार्तिकी और चैत्री प्रातिपदिकों से अधिकरण अर्थ में विकल्प करके ठक् प्रत्यय हो, और पक्ष में अण् हो जावे। जैसे—फाल्गुनी पौर्णमास्यस्मिन् मासे स फाल्गुनिको मासः. फाल्गुनो मासः; श्रावणिको मासः, श्रावणो मासः; कार्तिकिको मासः, कार्तिको मासः; चैत्रिको मासः, चैत्रो मासः ॥२८७॥

साऽस्य देवता ॥ २८८ ॥ अ० ४ । २ । २३ ॥

शेषकारक वाच्य हो, तो प्रथमासमर्थ देवताविशेषवाची प्रातिपदिकों से यथायोग्य प्रत्यय हो। जैसे—प्रजापतिर्देवताऽस्य प्राजापत्यम् +; इन्द्रो देवताऽस्य ऐन्द्रं हविः, ऐन्द्रो मन्त्रः, ऐन्द्री ऋक् इत्यादि ॥ २८८ ॥

कस्येत् ॥ २८९ ॥ अ० ४ । २ । २४ ॥

यहां पूर्वसूत्र से अण् प्रत्यय हो ही जाता, फिर इकारादेश होने के लिये यह सूत्र है।

देवता समानाधिकरण क प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय और प्रकृति को इकारादेश भी होवे। जैसे—को देवताऽस्य कायं हविः, कायो मन्त्रः, कायी ऋक्।

---

‡ काशिका आदि पुस्तकों में संज्ञाग्रहण सूत्र में ही मिला दिया है, सो ठीक नहीं है. क्योंकि वार्त्तिक पढ़ने से। और यहां कैयट ने भी लिखा है कि—"संज्ञाग्रहणं सूत्रेऽनार्षमिति वार्त्तिकमारम्भ" ॥

* इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा इसलिये है कि ठक् किसी से प्राप्त नहीं, अण् प्राप्त है, उसी का यह अपवाद है ॥

× नक्षत्रवाची श्रवणा शब्द से युक्त काल अर्थ में (संज्ञायां श्रवणा० ४ । २ । ५) इस सूत्र से प्रत्यय का लुप् हो जाता है, पौर्णमासी का विशेषण प्रत्ययार्थ बना रहता है ॥

+ यहां अण् का अधिकार भी है, तथापि उसको बाध कर (दित्यदित्या०) इस सूत्र से पत्युत्तरपद प्रातिपदिक से यण प्रत्यय हो जाता है ॥

यहां 'इत् में तपरकरण' तत्काल का बोध होने के लिये है ॥ २८९ ॥

वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ॥ २९० ॥ अ० ४ । २ । ३० ॥

प्रथमासमर्थ देवता समानाधिकरण वायु ऋतु पितृ और उषस् प्रातिपदिकों से, षष्ठी के अर्थ में अण् का बाधक यत् प्रत्यय होवे। जैसे—वायुर्देवताऽस्य वायव्यम्; ऋतव्यम्; पित्र्यम्; उषस्यम् ॥ २९० ॥

द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च ॥२९१॥ अ० ४ । २ । ३१ ॥

यहां यत् की अनुवृत्ति पूर्वसूत्र से चली आती है।

प्रथमासमर्थ देवता समानाधिकरण द्यावापृथिवी आदि प्रातिपदिकों से, षष्ठी के अर्थ में छ और यत् प्रत्यय होवें। जैसे—द्यावापृथिव्यौ देवते अस्य द्यावापृथिवीयम्, द्यावापृथिव्यम्; शुनासीरीयम्, शुनासीर्यम; मरुत्वतीयम्, मरुत्वत्यम्; अग्नीषोमीयम्, अग्नीषोम्यम्; वास्तोष्पतीयम्, वास्तोष्पत्यम्; गृहमेधीयम्, गृहमेध्यम् ॥ २९१ ॥

कालेभ्यो भववत् ॥ २९२ ॥ अ० ४ । २ । ३३ ॥

(तत्र भवः) इस अधिकार में जिस कालवाची प्रातिपदिक से जो प्रत्यय प्राप्त है, वही यहां देवता समानाधिकरण काल विशेषवाची प्रातिपदिक से होवे। जैसे—संवत्सरो देवताऽस्य सांवत्सरिकः, यहां सामान्य कालवाची से ठञ् है; प्रावृड् देवताऽस्य प्रावृषेण्यः यहां एय; ग्रीष्मो देवताऽस्य ग्रैष्मम्, ग्रीष्म शब्द का उत्सादिकों में पाठ होने से अञ् होता है। इत्यादि प्रकरण की योजना करलेनी चाहिये ॥ २९२ ॥

महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ् ॥ २९३ ॥ अ० ४ । २ । ३४ ॥

देवता समानाधिकरण महाराज और प्रोष्ठपद शब्दों से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—महाराजो देवताऽस्य माहाराजिकम्; प्रौष्ठपदिकम् ॥ २९३ ॥

वा०-ठञ्प्रकरणे तदस्मिन् वर्त्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम् २९४

काल अधिकरण अभिधेय होवे, तो नवयज्ञादि प्रातिपदिकों से ठञ प्रत्यय होवे। जैसे—नवयज्ञोऽस्मिन् काले वर्त्तते नावयज्ञिकः; पाकयज्ञिकः इत्यादि ॥ २९४ ॥

वा०-पूर्णमासादण् ॥ २९५ ॥

पूर्व वार्त्तिक से कालाधिकरण की अनुवृत्ति आती है। कालाधिकरण अर्थ में पूर्णमास प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय हो। जैसे—पूर्णमासोऽस्मिन् काले वर्त्तते इति पौर्णमासी तिथिः, यहां अपने अपवाद ठञ को बाध के अण् है ॥ २९५ ॥

पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ॥२६६॥ अ० ४ । २ । ३५ ॥

भ्राता अर्थ वाच्य हो, तो पितृ और मातृ शब्दों से व्यत् तथा डुलच् प्रत्यय यथासंख्य करके निपातन किये हैं। जैसे—पितुर्भ्राता पितृव्यः; मातुर्भ्राता मातुलः। पिता का भाई 'पितृव्य' और माता का भाई 'मातुल' कहाता है।

और मातृ तथा पितृ प्रातिपदिकों से पिता अर्थ में डामहच् प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—मातुः पिता मातामहः; पितुः पिता पितामहः। माता का पिता मातामह=नाना, और पिता का पिता पितामह=दादा कहाते हैं ॥ २६६ ॥

वा०—मातरि षिच्च ॥ २६७ ॥

मातृ अर्थ अभिधेय होवे, तो पूर्व प्रातिपदिकों से कहा डामहच् प्रत्यय षित् हो जावे। जैसे—मातुर्माता मातामही; पितुर्माता पितामही। माता की माता नानी और पिता की माता दादी।

यहां 'षित्' करने का प्रयोजन यह है कि—स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय होजावे ॥२६७॥

वा०—अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचः ॥ २६८ ॥

अवि प्रातिपदिक से दुग्ध अर्थ में सोढ दूस और मरीसच् प्रत्यय होवें। जैसे—अवेर्दुग्धमविसोढम्; अविदूसम्; अविमरीसम् ॥ २६८ ॥

वा०—तिलान्निष्फलात् पिञ्जपेजौ ॥ २६६ ॥

निष्फल समानाधिकरण तिल प्रातिपदिक से पिञ्ज और पेज प्रत्यय होवें। जैसे—निष्फलं तिलं तिलपिञ्जम्; तिलपेजम् ॥ २६६ ॥

वा०—पिञ्जश्छन्दसि डिच्च ॥ ३०० ॥

पूर्वोक्त पिञ्ज प्रत्यय वैदिकप्रयोग विषय में डित् होवे। जैसे—तिलपिञ्जं दण्डानतम्, यहां डित् होने से टिसंज्ञक अकार का लोप हो जाता है ॥ ३०० ॥

तस्य समूहः ॥ ३०१ ॥ अ० ४ । २ । ३६ ॥

यह अधिकार सूत्र है। षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में यथाप्राप्त प्रत्यय होवें। जैसे—वनस्पतीनां समूहो वानस्पत्यम्; स्त्रीणां समूहः स्त्रैणम्; पौंस्नम् इत्यादि ॥३०१॥

गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ् ॥३०२॥ अ० ४ । २ । ३८ ॥

षष्ठीसमर्थ जो गोत्रवाची उक्ष उष्ट्र उरभ्र राज राजन्य राजपुत्र वत्स मनुष्य और अज प्रातिपदिक हैं, उन से समूह अर्थ में अण् का बाधक वुञ् प्रत्यय होवे।

जैसे—ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लौचुकायनकम्; गार्ग्यकम्; वात्स्यकम्; गार्ग्यायणकम्*
इत्यादि। उक्ष्णां समूह औक्षकम्; औष्ट्रकम्; औरभ्रकम्; राजकम्; राजन्यकम्; राजपुत्रकम्; वात्सकम्; मानुष्यकम् +; आजकम् ॥ ३०२ ॥

वा०—वृद्धाच्च ॥ ३०३ ॥

वृद्ध शब्द से भी समूह अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो। जैसे—वृद्धानां समूहो वार्द्धकम् ॥३०३॥

ब्राह्मणमाणवबाडवाद्यन् ॥ ३०४ ॥ अ० ४ । २ । ४१ ॥

ब्राह्मण माणव और बाडव प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में यन् प्रत्यय होवे। जैसे—ब्राह्मणानां समूहो ब्राह्मण्यम्; माणव्यम्; बाडव्यम् ॥ ३०४ ॥

वा०—यन्प्रकरणे पृष्ठादुपसङ्ख्यानम् ॥ ३०५ ॥

पृष्ठ शब्द से भी यन् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—पृष्ठानां समूहः पृष्ठ्यम् ॥ ३०५॥

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ॥ ३०६ ॥ अ० ४ । २ । ४२ ॥

समूह अर्थ में ग्राम जन और बन्धु प्रातिपदिकों से तल् प्रत्यय होवे। जैसे—ग्रामाणां समूहो ग्रामता; जनता; बन्धुता ॥ ३०६ ॥

वा०—गजसहायाभ्यां च ॥ ३०७ ॥

गज और सहाय प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में तल् प्रत्यय होवे। जैसे—गजानां समूहो गजता; सहायता।

इस वार्तिक का सहाय शब्द काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र में मिला दिया है ॥३०७॥

वा०—अह्नः खः क्रतौ ॥ ३०८ ॥

यज्ञ अर्थ में अहन् प्रातिपदिक से ख प्रत्यय हो। जैसे—अह्नां समूहोऽहीनः क्रतुः ॥३०८॥

वा०—पर्श्वा णस् ॥ ३०९ ॥

पर्शु प्रातिपदिक से समूह अर्थ में णस् प्रत्यय होवे। जैसे—पर्शूनां समूहः पार्श्वम्।

---

* यहां महाभाष्य के प्रमाण से लोक में युवा को भी गोत्र कहते हैं। इसलिये युव प्रत्ययान्त को गोत्र मान के गार्ग्यायण आदि शब्दों से वुञ् प्रत्यय होता है ॥

\+ यहां राजन्य और मनुष्य शब्द के यकार का लोप प्राप्त है, सो (प्रकृत्या के०) इस वार्तिक से प्रकृतिभाव हो जाने से लोप नहीं होता ॥

एस् प्रत्यय में सित्करण के होने से पदसंज्ञा होकर भसंज्ञा का कार्य्य उवर्णान्त अङ्ग को गुण नहीं होता ॥ ३०६ ॥

अनुदात्तादेरञ् ॥ ३१० ॥ अ० ४ । २ । ४३ ॥

अनुदात्तादि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में अञ् प्रत्यय हो । जैसे—कुमारीणां समूहः कौमारम्; कैशोरम्; बाधूटम्; चैरणटम्; कपोतानां समूहः कापोतम्, मायूरम् इत्यादि ॥ ३१० ॥

खण्डिकादिभ्यश्च ॥ ३११ ॥ अ० ४ । २ । ४४ ॥

खण्डिका आदि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में अञ् प्रत्यय हो । जैसे—खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम्; बाडवम् इत्यादि । यह सूत्र ठक् का बाधक है ॥ ३११ ॥

वा०—अञ्प्रकरणे क्षुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायाम् ॥ ३१२ ॥

क्षुद्रक और मालव ये दोनों शब्द जनपद क्षत्रियवाची हैं । उनसे उत्पन्न हुए तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् हो जाता है । फिर दोनों का समाहारद्वन्द्व समास होके अन्तोदात्तस्वर हो जाता है । फिर अनुदात्तादि के होने से अञ् प्रत्यय हो ही जाता, फिर गोत्रवाची से (गोत्रोक्षो०) इस से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है, उस का अपवाद अञ्विधान किया है ।

और यह वार्त्तिक नियमार्थ भी है कि क्षुद्रकमालव प्रातिपदिक से सेना की संज्ञा अर्थ ही में अञ् प्रत्यय होवे, अन्यत्र नहीं । जैसे—क्षौद्रकमालवी सेना । और जहां सेनासंज्ञा न हो, वहां क्षौद्रकमालवकम्; गोत्रवाची से वुञ् प्रत्यय हो जावे ॥ ३१२ ॥

अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ॥ ३१३ ॥ अ० ४ । २ । ४६ ॥

समूह अर्थ में चित्तवर्जित हस्ति और धेनु प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—अपूपानां समूहः आपूपिकम्; शाष्कुलिकम्; साक्तुकम् इत्यादि । हास्तिकम् *; धैनुकम् ॥ ३१३ ॥

विषयो देशे ॥ ३१४ ॥ अ० ४ । २ । ५१ ॥

जो वह विषय देश होवे, तो षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो । जैसे—शिबीनां विषयो देशः शैबः; औष्ट्रः; पाशवः इत्यादि ।

यहां 'देश' ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्तस्य विषयोऽनुवाकः, यहां प्रत्यय न हो ॥ ३१४ ॥

---

* यहां (प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गवि०) इस परिभाषा से स्त्रीलिङ्ग हस्तिनी शब्द से भी प्रत्यय होजाता है । जैसे—हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम् । और (भस्याढे तद्धिते) इस वार्त्तिक से पुंवद्भाव होता है ॥

सङ्ग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः ॥ ३१५ ॥ अ० ४ । २ । ५५ ॥

संग्राम अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रयोजनवाची और योद्धृवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो। जैसे—भद्रा प्रयोजनमस्य संग्रामस्य भाद्रः संग्रामः; सौभद्रः; गौरिमित्रः। योद्धृभ्यः—अहिमाला योद्धारोऽस्य संग्रामस्य स आहिमालः; स्यान्दनाऽश्वः; भारतः इत्यादि।

यहां 'संग्राम' का ग्रहण इसलिये है कि—सुभद्रा प्रयोजनमस्य दानस्य, यहां प्रत्यय न होवे। और 'प्रयोजनयोद्धृ' ग्रहण इसलिये है कि—सुभद्रा प्रेक्षिकाऽस्य संग्रामस्य, यहां भी न हो ॥ ३१५ ॥

तदधीते तद्वेद * ॥ ३१६ ॥ अ० ४ । २ । ५८ ॥

द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से अधीत और वेद अर्थात् पढ़ने और जानने अर्थों में अण् प्रत्यय हो। जैसे—यश्छन्दोऽधीते वेद वा स छान्दसः; व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः; नैरुक्तः; निमित्तानि वेद नैमित्तः; मौहूर्त्तः इत्यादि ॥ ३१६ ॥

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ॥ ३१७ ॥ अ० ४ । २ । ५९ ॥

यह सूत्र अण् का बाधक है। क्रतुविशेषवाची उक्थ आदि और सूत्रान्त प्रातिपदिकों से अधीत और वेद अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे।

जैसे—क्रतुवाची—अग्निष्टोममधीते वेद वा आग्निष्टोमिकः; अश्वमेधमधीते वेद वा आश्वमेधिकः; वाजपेयिकः; राजसूयिकः। उक्थादि—उक्थं सामगानमधीते वेद वा औक्थिकः; लौकायतिकः इत्यादि। सूत्रान्त—योगसूत्रमधीते वेद वा यौगसूत्रिकः; गौभिलीयसूत्रिकः; श्रौतसूत्रिकः; पाराशरसूत्रिकः इत्यादि ॥ ३१७ ॥

वा०—विद्यालक्षणकल्पसूत्रान्तादकल्पादेरिकक् स्मृतः ॥ ३१८ ॥

विद्या लक्षण कल्प और सूत्र ये चार शब्द जिनके अन्त में हों, और कल्प शब्द आदि में न होवे, ऐसे प्रातिपदिकों से पढ़ने और जानने अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे।

जैसे—विद्या—वायसविद्यामधीते वेत्ति वा वायसविद्यिकः; सार्पविद्यिकः। लक्षण—गोलक्षणमधीते वेद वा गौलक्षणिकः; आश्वलक्षणिकः। कल्प—पराशरकल्पमधीते वेत्ति वा पाराशरकल्पिकः; मातृकल्पिकः। सूत्र—वार्त्तिकसूत्रमधीते वेद वा वार्त्तिकसूत्रिकः; साङ्ग्रहसूत्रिकः इत्यादि।

यहां 'अकल्पादि का निषेध' इसलिये है कि—कल्पसूत्रमधीते वेद वा काल्पसूत्रः, यहां ठक् न हो, किन्तु अण् प्रत्यय ही हो जावे ॥ ३१८ ॥

* इस सूत्र में दो वार तत् शब्द का पाठ इसलिये है कि एक शास्त्र को पढ़ रहा और दूसरा पढ़ा हुआ शास्त्र का वेत्ता, ये दोनों पृथक् २ समझे जावें ॥

वा०—विद्या चानङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वा ॥ ३१९ ॥

अङ्ग क्षत्र धर्म और त्रि ये चार शब्द जिसके पूर्व हों, ऐसे विद्या प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय न होवे, किन्तु अण् ही हो जावे। अन्य कोई शब्द पूर्व हो तो विद्या शब्द से ठक् ही हो, यह नियम इस वार्त्तिक से समझो। जैसे—अङ्गविद्यामधीते वेत्ति वा आङ्गविद्यः; क्षात्रविद्यः; धार्मविद्यः; त्रैविद्यः ॥ ३१९ ॥

वा०—आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च ॥ ३२० ॥

आख्यान आख्यायिका इतिहास और पुराण इन चार के विशेषवाची प्रातिपदिकों से पढ़ने और जानने अर्थ में ठक् प्रत्यय हो।

जैसे—आख्यान—यवक्रीतमधीते वेत्ति वा यावक्रीतिकः; प्रैयङ्गविकः; यायातिकः। आख्यायिका—वासवदत्तामधीते वेद वा वासवदत्तिकः; सौमनोत्तरिकः। इतिहासमधीते वेद वा ऐतिहासिकः; पौराणिकः इत्यादि ॥ ३२० ॥

का०—अनुसूर्लक्ष्यलक्षणे सर्वसादेर्द्विगोश्च लः।
इकन् पदोत्तरपदात् शतषष्टेः षिकन् पथः ॥ ३२१ ॥

अनुसू लक्ष्य और लक्षण ये तीनों ग्रन्थविशेषों के नाम हैं। इनसे ठक् प्रत्यय हो। जैसे—अनुसूमधीते आनुसुकः, यहां (इसुसु०) इस सूत्र से प्रत्यय को ककारादेश हो जाता है। लक्ष्यमधीते वेद वा लाक्षियकः; लाक्षणिकः।

सर्व और स शब्द जिसके आदि में हों ऐसे द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से विहित प्रत्यय का लुक् हो जावे। जैसे—सर्ववेदमधीते वेत्ति वा सर्ववेदः; सर्वतन्त्रः। सवार्त्तिकमधीते वेद वा सवार्त्तिकः; ससङ्ग्रहः।

पद शब्द जिसके अन्त में हो ऐसे प्रातिपदिक से इकन् प्रत्यय होवे। जैसे—पूर्वपदमधीते वेद वा पूर्वपदिकः; उत्तरपदिकः।

पथ शब्द जिनके अन्त में हो, ऐसे शत और षष्टि प्रातिपदिकों से षिकन् प्रत्यय हो। प्रत्यय में षित्करण स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होने के लिये है। जैसे—शतपथमधीते वेत्ति वा शतपथिकः, शतपथिकी; षष्टिपथिकः, षष्टिपथिकी इत्यादि ॥ ३२१ ॥

प्रोक्ताल्लुक् ॥ ३२२ ॥ अ० ४। २। ६३ ॥

अध्येतृ वेदितृ अर्थ में प्रोक्त प्रत्ययान्त से विहित तद्धितसंज्ञक प्रत्यय का लुक् हो जावे। जैसे—पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयमधीते वेद वा पाणिनीयः, पाणिनीया ब्राह्मणी; काशकृत्स्नेन प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी, काशकृत्स्नीं मीमांसामधीते ब्राह्मणी काशकृत्स्ना, यहां अनुपसर्जन के न होने से फिर ङीप् नहीं होता ॥ ३२२ ॥

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ॥ ३२३ ॥ अ० ४ । २ । ६५ ॥

छन्द और ब्राह्मण ये दोनों प्रोक्तप्रत्ययान्त अध्येतृ वेदितृ प्रत्ययार्थविषयक हों, अर्थात् पढ़ने और जानने अर्थों के विना प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मणों का पृथक् प्रयोग न होवे । जैसे—कठेन प्रोक्तं छन्दोऽधीयते ते कठाः; मौदाः; पैप्पलादाः; आचार्यिनः; वाजसनेयिनः । ब्राह्मण—ताण्डिनः; भाल्लविनः; शाट्यायनिनः; ऐतरेयिणः ।

यहां 'छन्दोब्राह्मण' ग्रहण इसलिये है कि—पाणिनीयं व्याकरणम्; पैङ्गी कल्पः, यहां तद्विषयता न होवे ॥ ३२३ ॥

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥ ३२४ ॥ अ० ४ । २ । ६६ ॥

यह सूत्र मत्वर्थ प्रत्ययों का अपवाद है । जो देश का नाम होवे, तो अस्ति समानाऽधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें । जैसे—उदुम्बरा अस्मिन् देशे सन्ति औदुम्बरो देशः; बाल्वजः; पार्वतः ।

यहां 'तन्नाम'ग्रहण इसलिये है कि–गोधूमाः सन्त्यस्मिन् देशे, यहां प्रत्यय न होवे ॥ ३२४॥

तेन निर्वृत्तम् ॥ ३२५ ॥ अ० ४ । २ । ६७ ॥

निर्वृत्त अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें । जैसे—सहस्रेण निर्वृत्ता साहस्री परिखा; कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी ॥ ३२५ ॥

तस्य निवासः ॥ ३२६ ॥ अ० ४ । २ । ६८ ॥

जहां निवास देश अर्थ वाच्य हो, वहां षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें । जैसे—ऋजुनावान्निवासो देश आर्जुनावो देशः; शैवः; औदिष्टः; उत्सस्य निवासो देश औत्सः; कौरवः इत्यादि ॥ ३२६ ॥

अदूरभवश्च ॥ ३२७ ॥ अ० ४ । २ । ६९ ॥

अदूरभव अर्थात् समीप अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो । जैसे—विदिशाया अदूरभवं वैदिशं नगरम्; हिमवतोऽदूरभवं हैमवतम्; हिमालयस्यादूरभवो देशो हैमालयः इत्यादि ।

इस सूत्र से आगे चारों अर्थों की अनुवृत्ति चलती है, इसी से यह प्रकरण चातुरर्थिक कहाता है ॥ ३२७ ॥

ओरञ् ॥ ३२८ ॥ अ० ४ । २ । ७० ॥

उक्त चारों अर्थों में षष्ठीसमर्थ उवर्णान्त प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय हो । जैसे—अरडु—आरडवम्; कक्षतु—काक्षतवम्; कर्कटेलु—कार्कटेलवम्; रुरवः सन्त्यस्मिन् देशे, रुरूणां निवासो देशोऽदूरभवो वा रौरवः; परशुना निर्वृत्तं पारशवम् इत्यादि ॥ ३२८ ॥

वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशवलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥ ३२६ ॥ अ० ४ । २ । ८० ॥

यह सूत्र अण् का अपवाद है। अरीहणादि सत्रह गणस्थ प्रातिपदिकों से पूर्वोक्त चार अर्थों में यथासंख्य करके वुञ् आदि सत्रह (१७) प्रत्यय होते हैं। आदि शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ योग होता है।

जैसे—अरीहणादिकों से वुञ्—आरीहणकम्; द्रौघणकम्; खदिराणामदूरभवं नगरम् खादिरकम्। कृशाश्व आदि से छण्—कार्शाश्वीयम्; आरिष्टीयः। ऋश्य आदि से क—ऋश्यकः; न्यग्रोधकः; शिरकः। कुमुद आदि से ठच्—कुमुदिकम्; शर्करिकम्; न्यग्रोधिकम्। काश आदि से इल—काशिलम्; वाशिलम्। तृण आदि से स—तृणसः; नडसः; बुसस:। प्रेक्षा आदि से इनि—प्रेक्षी; हलकी; बन्धुकी। अश्म आदि से र—अश्मरः; यूषरः; रूषरः; मीनरः। सखि आदि से ढञ्—साखेयम्; साखिदत्तेयम्। सङ्काश आदि से ण्य—साङ्काश्यम्; काम्पिल्यम्; सामीर्यम्। वल आदि से य—बल्यः; कुल्यम्। पक्ष आदि से फक्—पाक्षायणः; तौषायणः; आण्डायनः। कर्ण आदि से फिञ्—कार्णायनिः, वासिष्ठायनिः। सुतङ्गम आदि से इञ्—सौतङ्गमिः; मौनचित्तिः; वैप्रचित्तिः। प्रगदिन् आदि से ञ्य—प्रागद्यम्; मागद्यम्; शारद्यम्। वराह आदि से कक्—वाराहकम्; पालाशकम्। और कुमुदादिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—कौमुदिकम्; गौमथिकम् इत्यादि ॥ ३२६ ॥

जनपदे लुप् ॥ ३३० ॥ अ० ४ । २ । ८१ ॥

जहां जनपद अर्थात् देश अभिधेय रहे, वहां उक्त चार अर्थों में जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय होता है, उस का लुप् हो। जैसे—पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः; कुरवः; मत्स्याः; अङ्गाः; वङ्गाः; मगधाः; पुण्ड्राः + इत्यादि ॥ ३३० ॥

शेषे ॥ ३३१ ॥ अ० ४ । २ । ९२ ॥

यह अधिकार सूत्र है, इस का अधिकार (तस्येदम्) इस आगामी सूत्रपर्यन्त जाता है। अपत्य आदि और उक्त चार अर्थों से जो भिन्न अर्थ हैं, सो शेष कहाते हैं।

इस सूत्र से आगे जो २ प्रत्यय विधान करें सो २ शेष अर्थों में जानो। और यह विधिसूत्र भी है। जैसे—चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्; श्रावणः शब्दः; दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः; वितंडया प्रवर्त्तते वैतंडिकः; उलूखले क्षुण्णः औलूखलो यावकः; अश्वैरुह्यते आश्वो रथः; चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटम् इत्यादि। यहां सर्वत्र यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं ॥ ३३१ ॥

+ यहां (लुपि युक्तव०) इस सूत्र से व्यक्तिवचन अर्थात् लिङ्ग और संख्या प्रत्यय होने से पूर्व के समान प्रत्यय लुप के पश्चात् भी रहते हैं ॥

राष्ट्रावारपाराद्ध घखौ ॥ ३३२ ॥ अ० ४ । २ । ९३ ॥

राष्ट्र और अवारपार प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके घ और ख प्रत्यय होवें। जात आदि शेष अर्थों में और उन २ अर्थों में जो २ समर्थविभक्ति हों सो २ सर्वत्र जाननी चाहिये। जैसे—राष्ट्रे भवो जातो वा राष्ट्रियः; अवारपारीणः ॥ ३३२ ॥

वा०—विगृहीतादपि ॥ ३३३ ॥

विगृहीत कहते हैं भिन्न २ को, अर्थात् अवारपार शब्दों से अलग २ भी ख प्रत्यय हो। जैसे—अवारीणः; पारीणः ॥ ३३३ ॥

वा०—विपरीताच्च ॥ ३३४ ॥

पार पूर्व और अवार पर हो तो भी समस्त प्रातिपदिक से ख होवे। जैसे—पारावारीणः ॥ ३३४ ॥

ग्रामाद्यखञौ ॥ ३३५ ॥ अ० ४ । २ । ९४ ॥

जात आदि अर्थों में ग्राम प्रातिपदिक से य और खञ् प्रत्यय होवें। जैसे—ग्रामे जातो भवः क्रीतो लब्धः कुशलो वा ग्राम्यः; ग्रामीणः ॥ ३३५ ॥

दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ॥ ३३६ ॥ अ० ४ । २ । ९७ ॥

यह सूत्र दक्षिणा आदि अव्यय शब्दों से त्यप् प्राप्त है, उसका बाधक है।

दक्षिणा आदि तीन अव्यय शब्दों से शैषिक अर्थों में त्यक् प्रत्यय होवे। जैसे—दाक्षिणात्यः; पाश्चात्यः; पौरस्त्यः ॥ ३३६ ॥

द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ॥ ३३७ ॥ अ० ४ । २ । १०० ॥

दिव् प्राच् अपाच् उदच् और प्रत्यच् प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में यत् प्रत्यय हो। जैसे—दिवि भवो दिव्यः; प्राग्भवं प्राच्यम्; अपाच्यम्; उदीच्यम्; प्रतीच्यम्।

यह सूत्र अण् प्रत्यय का अपवाद है। और यहां प्राच् आदि अव्यय शब्दों का ग्रहण नहीं है, किन्तु यौगिकों का है। और जहां इनका अव्यय में ग्रहण होता है, वहां आगामी सूत्र से ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं। जैसे—प्राक्तनम्; प्रत्यक्तनम् इत्यादि ॥ ३३७ ॥

अव्ययात्त्यप् ॥ ३३८ ॥ अ० ४ । २ । १०३ ॥

अव्यय प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में त्यप् प्रत्यय होवे। यह भी सूत्र अण् आदि अनेक प्रत्ययों का अपवाद है।

यहां महाभाष्यकार ने परिगणन किया है कि अमा इह क तथा तसिल् और त्रल् प्रत्ययान्त इतने ही अव्ययों से त्यप् होवे। जैसे—अमात्यः; इहत्यः; क्वत्यः; ततस्त्यः; यतस्त्यः; तत्रत्यः; अत्रत्यः; कुत्रत्यः इत्यादि।

यहां परिगणन का प्रयोजन यह है कि — औपरिष्टः; पौरस्तः; पारस्तः इत्यादि प्रयोगों में त्यप् न होवे ॥ ३३८ ॥

वा०—त्यब्नेर्ध्रुवे ॥ ३३९ ॥

नि अव्यय प्रातिपदिक से ध्रुव अर्थ में त्यप् प्रत्यय होवे। जैसे—निरन्तरं भवं नित्यं ब्रह्म ॥ ३३९ ॥

वा०—निसो गते ॥ ३४० ॥

निस् शब्द से गत अर्थ में त्यप् प्रत्यय होवे। जैसे—निर्गतो निष्ट्यः ॥ ३४० ॥

वा०—अरण्याण्णः ॥ ३४१ ॥

अरण्य शब्द से शेष अर्थों में ण प्रत्यय होवे। जैसे—अरण्ये भवा आरण्याः सुमनसः ॥ ३४१ ॥

वा०—दूरादेत्यः ॥ ३४२ ॥

दूर प्रातिपदिक से शेष अर्थों में एत्य प्रत्यय हो। जैसे—दूरे लब्धो दूरेत्यः ॥ ३४२ ॥

वा०—उत्तरादाहञ् ॥ ३४३ ॥

उत्तर प्रातिपदिक से शेष अर्थों में आहञ् प्रत्यय हो। जैसे—उत्तरे जात औत्तराहः ॥ ३४३ ॥

वा०—अव्ययात्त्यप्याविष्ट्यस्योपसंख्यानं छन्दसि ॥ ३४४ ॥

आविस् अव्यय प्रातिपदिक से शेष अर्थों में वेदविषय में त्यप् प्रत्यय हो। जैसे—आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु ॥ ३४४ ॥

वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् ॥ ३४५ ॥ अ० १ । १ । ७३ ॥

जिस समुदाय के अचों के बीच में आदि अच् वृद्धिसंज्ञक हो, अर्थात् आकार ऐकार और औकार होवें, तो वह समुदाय वृद्धसंज्ञक होवे ॥ ३४५ ॥

वृद्धाच्छः ॥ ३४६ ॥ अ० ४ । २ । ११४ ॥

यह सूत्र अण् का बाधक है। शेष अर्थों में वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त अण् आदि प्रत्यय हों। जैसे—शालीयः; मालीयः; औपगवीयः; कापटवीयः इत्यादि।

(अव्ययात्त्यप्; तीररूप्योत्तरपदा०; उदीच्यग्रामाच्च०; प्रस्थोत्तरपद०) जहां इन सूत्रों से ये प्रत्यय और वृद्धसंज्ञक से छ प्रत्यय दोनों की प्राप्ति है, वहां परविप्रतिषेध मान के छ प्रत्यय ही होता है।

जैसे—आरात् अव्यय शब्द है, उससे छ हुआ तो=आरातीयः। वायसतीर शब्द से अञ् और ञ्य भी पाते हैं, फिर छ ही होता है। जैसे—वायसतीरीयः। इसी प्रकार रूप्योत्तरपद माणिरूप्य वृद्ध प्रातिपदिक से परत्व से छ प्राप्त है, उसका भी अपवाद यकारोपध होने से (धन्वयोपधा०) इससे वुञ् होता है। जैसे—माणिरूप्यकः। वाडवकर्ष उदीच्यग्राम अन्तोदात्त प्रातिपदिक से छ प्रत्यय परत्व से होता है। जैसे—वाडवकर्षीयः। औलूक कोपध वृद्ध प्रातिपदिक से परविप्रतिषेध करके छ होता है। जैसे—औलूकीयम् ॥ ३४६ ॥

अब इसके आगे वृद्धसंज्ञा में जो विशेष वार्त्तिक सूत्र हैं, सो लिखते हैं—

वा०—वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या ॥ ३४७ ॥

जो किसी मनुष्य आदि के नाम हैं, उनकी विकल्प करके वृद्धसंज्ञा होवे। जैसे—देवदत्तीयाः, दैवदत्ताः; यज्ञदत्तीयाः, याज्ञदत्ताः इत्यादि ॥ ३४७ ॥

वा०—गोत्रोत्तरपदस्य च ॥ ३४८ ॥

गोत्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिक जिनके उत्तरपद में हों, उनकी वृद्धसंज्ञा हो। जैसे—घृतप्रधानो रौढिः घृतरौढिः, तस्य छात्राः घृतरौढीयाः; ओदनप्रधानः पाणिनिरोदनपाणिनिस्तस्य छात्रा ओदनपाणिनीयाः; वृद्धाम्भीयाः; वृद्धकाश्यपीयाः इत्यादि ॥ ३४८ ॥

वा०—जिह्वाकात्यहरितकात्यवर्जम् ॥ ३४९ ॥

जिह्वाकात्य और हरितकात्य शब्दों की वृद्धसंज्ञा न हो। गोत्र उत्तरपद होने से पूर्ववार्त्तिक से प्राप्त है, उसका निषेध है। जैसे—जैह्वाकाताः; हारितकाताः ॥ ३४९ ॥

त्यदादीनि च ॥ ३५० ॥ अ० १ । १ । ७४ ॥

और त्यद् आदि प्रातिपदिक भी वृद्धसंज्ञक होते हैं। जैसे—त्यदीयम्; यदीयम्; तदीयम्; एतदीयम्; इदमीयम्; अदसीयम्; त्वदीयम्; मदीयम्; त्वादायनिः; मादायनिः इत्यादि।

यहां सर्वत्र वृद्धसंज्ञा के होने से छ प्रत्यय हो जाता है ॥ ३५० ॥

भवतष्ठक्छसौ ॥ ३५१ ॥ अ० ४ । २ । ११५ ॥

शेष अर्थों में वृद्धसंज्ञक भवत् प्रातिपदिक से ठक् और छस् प्रत्यय हों। जैसे—भवत इदं भावत्कम्; छस् प्रत्यय में सित्करण पदसंज्ञा के लिये है=भवदीयम्।

इस भवत् शब्द की त्यदादिकों से वृद्धसंज्ञा होके छ प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह बाधक है ॥ ३५१ ॥

रोपधेतोः प्राचाम् ॥ ३५२ ॥ अ० ४ । २ । १२३ ॥

शेष अर्थों में प्राग्देशवाची रेफोपध और ईकारान्त प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय हो। जैसे—पाटलिपुत्रकाः; ऐकचक्रकाः । ईकारान्त—काकन्दी=काकन्दकाः; माकन्दी= माकन्दकाः ।

यहां 'प्राचां' ग्रहण इसलिये है कि—दात्तामित्रीयः, यहां वुञ् प्रत्यय न हो ॥३५२॥

अवृद्धादपि बहुवचनविषयात् ॥ ३५३ ॥ अ० ४ । २ । १२५ ॥

शेष अर्थों में बहुवचनविषयक वृद्धसंज्ञारहित जो जनपदवाची और जनपद के अवधिवाची प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय हो ।

[जैसे—] अवृद्ध जनपद से—अङ्गाः, वङ्गाः, कलिङ्गाः=आङ्गकः; वाङ्गकः; कालिङ्गकः । अवृद्ध जनपदावधि—अजमीढाः, अजक्रन्दाः=आजमीढकः; आजक्रन्दकः । वृद्ध जनपद—दार्वाः, जाम्बाः=दार्वकः; जाम्बकः । वृद्ध जनपदावधि—कालिञ्जराः, वैकुलिशाः=कालिञ्जरकः; वैकुलिशकः ।। ३५३ ॥

नगरात्कुत्सनप्रावीण्ययोः ॥ ३५४ ॥ अ० ४ । २ । १२८ ॥

कुत्सन और प्रावीण्य अर्थात् निन्दा और प्रशंसारूप शेष अर्थों में नगर प्रातिपदिक से वुञ् प्रत्यय हो । [जैसे—] नागरकश्चौरः; नागरकः प्रवीणः ।

'कुत्सन और प्रवीणता' ग्रहण इसलिये है कि—नागरा ब्राह्मणाः, यहां वुञ् न हो॥३५४॥

मद्रवृज्योः कन् ॥ ३५५ ॥ अ० ४ । २ । १३१ ॥

शेष अर्थों में मद्र और वृजि प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो । [जैसे—] मद्रेषु जातः मद्रकः; वृजिकः ।

यहां बहुवचनविषक अवृद्ध जनपद शब्दों से वुञ् प्राप्त है, उस का यह अपवाद है ॥ ३५५ ॥

—[इति द्वितीयः पादः ॥]

[अथ तृतीयः पादः—]

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ॥ ३५६ ॥ अ० ४ । ३ । १ ॥

शेष अर्थ में युष्मद् और अस्मद् प्रातिपदिकों से खञ् और चकार से छ प्रत्यय हो, और अन्यतरस्यां ग्रहण से पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होवें । जैसे—युष्माकमयं यौष्माकीणः; आस्माकीनः; युष्मदीयः; अस्मदीयः; यौष्माकः; आस्माकः ॥ ३५६ ॥

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ॥ ३५७ ॥ अ० ४ । ३ । २ ॥

शेष अर्थों में तस्मिन् नाम खञ् और अण् प्रत्यय परे हो, तो युष्मद् और अस्मद् शब्द के स्थान में यथासंख्य करके युष्माक और अस्माक आदेश हों। जैसे—यौष्माकीणः; आस्माकीनः; यौष्माकः; आस्माकः।

यहां 'खञ् और अण् प्रत्यय के परे' इसलिये कहा है कि—युष्मदीयः; अस्मदीयः, यहां छ के परे आदेश न हों ॥ ३५७ ॥

तवकममकावेकवचने ॥ ३५८ ॥ अ० ४ । ३ । ४ ॥

जो एकवचन अर्थात् एक अर्थ की वाचक विभक्ति तथा अण् और खञ् प्रत्यय परे हों, तो युष्मद् और अस्मद् शब्द को तवक और ममक आदेश हों। जैसे—तावकीनः; मामकीनः; तावकः; मामकः ॥ ३५८ ॥

कालाट्ठञ् ॥ ३५९ ॥ अ० ४ । ३ । ११ ॥

शेष अर्थों में कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—मासिकः; आर्द्धमासिकः; सांवत्सरिकः इत्यादि ॥ ३५९ ॥

श्राद्धे शरदः ॥ ३६० ॥ अ० ४ । ३ । १२ ॥

जो शेष अर्थों में श्राद्ध अभिधेय रहे, तो शरद् प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—शरदि भवं शारदिकम्, जो श्राद्ध हो। नहीं तो शारदम्, ऋतुवाची के होने से अण् हो जाता है। और यह सूत्र भी अण् का ही अपवाद है ॥ ३६० ॥

सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥ ३६१ ॥ अ० ४ । ३ । १६ ॥

शेष अर्थों में सन्धिवेला आदि गण, ऋतु और नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो। जैसे—सन्धिवेलायां लब्धं सान्धिवेलम्, सान्ध्यम्। ऋतु— ग्रैष्मम्; शैशिरम्। नक्षत्र— तैषम्; पौषम्।

यह सूत्र सामान्यकालवाची से ठञ् प्राप्त है, उसका अपवाद है ॥ ३६१ ॥

सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च + ॥ ३६२ ॥ अ० ४ । ३ । २३ ॥

+ यहां सायं तथा चिरं ये शब्द मकारान्त, और प्राह्णे तथा प्रगे ये एकारान्त निपातन किये हैं। और जो ये अव्यय शब्द समझे जावें, तो इनका पाठ सूत्र में व्यर्थ होवे, क्योंकि अव्यय के कहने से हो ही जाता ॥

शेष अर्थों में सायं चिरं प्राह्णे प्रगे और अव्यय प्रातिपदिकों से ट्यु और ट्युल् प्रत्यय और प्रत्यय को तुट् का आगम भी हो।

दिन का जो अन्त है, उस अर्थ में सायं शब्द है। जैसे—साये भवं सायन्तनम्; चिरन्तनम्; प्राह्णेतनम्; प्रगेतनम्; दोषातनम्; दिवातनम्; इदानीन्तनम्; अद्यतनम् ॥३६२॥

वा०—चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नः * ॥ ३६३ ॥

चिर परुत् और परारि इन तीन अव्यय प्रातिपदिकों से त्न प्रत्यय होवे। जैसे—चिरत्नम्; परुत्नम्; परारित्नम् ॥ ३६३ ॥

वा०—प्रगस्य छन्दसि गलोपश्च ॥ ३६४ ॥

प्रग प्रातिपदिक से वेद में त्न प्रत्यय और गकार का लोप हो। जैसे—प्रगे भवं प्रत्नम् ॥३६४॥

वा०—अग्रादिपश्चाड्डिमच् ॥ ३६५ ॥

अग्र आदि और पश्चात् इन प्रातिपदिकों से डिमच् प्रत्यय हो। डित्प्रकरण यहां टिलोप होने के लिये है।

जैसे—अग्रे जातोऽग्रिमः; आदौ जात आदिमः; पश्चात् जातः पश्चिमः ॥ ३६५ ॥

वा०—अन्ताच्च ॥ ३६६ ॥

अन्त शब्द से भी डिमच् प्रत्यय हो। जैसे—अन्ते भवोऽन्तिमः ॥ ३६६ ॥

तत्र जातः ॥ ३६७ ॥ अ० ४ । ३ । २५ ॥

घ आदि प्रत्यय जो सामान्य शेष अर्थों में विधान कर चुके हैं, उनके जात आदि अर्थ दिखाये जाते हैं। और तत्र इत्यादि समर्थविभक्ति जाननी चाहिये।

समर्थों में प्रथम सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से जो २ प्रत्यय विधान कर चुके हैं, सो २ जात आदि अर्थों में होवें। जैसे—स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः; माथुरः; औत्सः; औदपानः; राष्ट्रियः; अवारपारीणः; शाकलिकः; ग्राम्यः; ग्रामीणः; कात्रेयकः; औम्भेयकः इत्यादि ॥ ३६७ ॥

श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाऽऽषाढाबहुलाल्लुक् ॥ ३६८ ॥ अ० ४ । ३ । ३४ ॥

जात आदि अर्थों में श्रविष्ठा आदि नक्षत्रवाची शब्दों से विहित तद्धितप्रत्ययों का लुक् हो। [जैसे—] श्रविष्ठायां जातः श्रविष्ठः; फल्गुनः; अनुराधः; स्वातिः; तिष्यः; पुनर्वसुः; हस्तः; विशाखः; आषाढः; बहुलः ‡ ॥ ३६८ ॥

---

* यहां पूर्वसूत्र से ट्यु ट्युल् प्रत्यय प्राप्त हैं, उनके अपवाद ये वार्त्तिक समझने चाहियें ॥

‡ यहां श्रविष्ठा आदि शब्दों से तद्धित प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक् तद्धितलुकि १।२।४९) इस सूत्र से स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् होजाता है। फिर जो ये शब्द स्त्रीलिङ्ग हों तो टाप् होगा। जैसे—श्रविष्ठा ॥

वा०—लुक्प्रकरणे चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानम् ॥३६९॥

जात अर्थ स्त्री अभिधेय हो, तो चित्रा रेवती और रोहिणी शब्दों से विहित प्रत्यय का लुक् होवे। जैसे—चित्रायां जाता कन्या चित्रा; रेवती; रोहिणी * ॥ ३६९ ॥

वा०—फल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ ॥ ३७० ॥

पूर्व वार्तिक से स्त्रीलिङ्ग की अनुवृत्ति आती है।

फल्गुनी और अषाढा नक्षत्रवाची शब्दों से ट और अन् प्रत्यय यथासंख्य करके हों। जैसे—फल्गुन्यां जाता कन्या फल्गुनी; अषाढा † ॥ ३७० ॥

वा०—श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण् ॥ ३७१ ॥

श्रविष्ठा और अषाढा प्रातिपदिकों से छण् प्रत्यय हो। जैसे—श्रविष्ठायां जाताः आविष्ठीयाः; आषाढीयाः ॥ ३७१ ॥

स्थानान्तगोशालखरशालाच्च ॥ ३७२ ॥ अ० ४ । ३ । ३५ ॥

जात अर्थ में स्थानान्त गोशाल और खरशाल प्रातिपदिकों से विहित जो तद्धित प्रत्यय उसका लुक् हो। जैसे—गोस्थाने जातो गोस्थानः; हस्तिस्थानः; अश्वस्थानः इत्यादि; गोशालः; खरशालः।

यहां तद्धितलुक् होने के पश्चात् शाला शब्द के स्त्रीप्रत्यय का लुक् होता है ॥ ३७२॥

वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा ‡ ॥३७३॥ अ० ४।३।३६॥

जात अर्थ में वत्सशाला आदि प्रातिपदिकों से परे जो प्रत्यय, उसका लुक् विकल्प करके होवे। जैसे—वत्सशालायां जातः वत्सशालः, वात्सशालः; अभिजित्, आभिजितः; अश्वयुक्, आश्वयुजः; शतभिषक्, शातभिषजः ॥ ३७३ ॥

नक्षत्रेभ्यो बहुलम् ॥ ३७४ ॥ अ० ४ । ३ । ३७ ॥

अन्य नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से जो प्रत्यय हो, उसका बहुल करके लुक् होवे। जैसे— रोहिणः, रौहिणः; मृगशिराः, मार्गशीर्षः।

बहुलग्रहण से कहीं लुक् नहीं भी होता। जैसे—तैषः; पौषः इत्यादि ॥ ३७४॥

---

* यहां भी पूर्व के समान स्त्रीप्रत्यय का लुक् होके चित्रा शब्द से टाप् और रेवती तथा रोहिणी शब्द का गौरादिगण में पाठ होने से ङीष् प्रत्यय हो जाता है ॥

† यहां भी स्त्रीप्रत्यय का लुक् पूर्ववत् होके ट प्रत्यय के टित् होने से फल्गुनी शब्द से ङीप् और अषाढा शब्द से टाप् होता है ॥

‡ इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्तविभाषा है, क्योंकि वत्सशाला शब्द से किसी सूत्र करके लुक् नहीं पाता, और अभिजित् आदि नक्षत्रवाचियों से बहुल करके प्राप्त है, उसका विकल्प किया है ॥

कृतलब्धक्रीतकुशलाः ॥ ३७५ ॥ अ० ४ । ३ । ३८ ॥

कृत आदि अर्थों में सप्त प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—स्रुघ्ने कृतो लब्धः क्रीतो वा कुशलः स्रौघ्नः; माथुरः; राष्ट्रियः इत्यादि ॥ ३७५ ॥

प्रायभवः * ॥ ३७६ ॥ अ० ४ । ३ । ३९ ॥

बहुधा होने अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—स्रुघ्ने प्रायेण भवः स्रौघ्नः; माथुरः; राष्ट्रियः इत्यादि ॥ ३७६ ॥

सम्भूते ॥ ३७७ ॥ अ० ४ । ३ । ४१ ॥

सम्भव अर्थ में सप्तमीसमर्थ ङ्याप् प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—स्रुघ्ने सम्भवति स्रौघ्नः; माथुरः; राष्ट्रियः; ग्राम्यः; ग्रामीणः; शालीयः; मालीयः इत्यादि ॥ ३७७ ॥

कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु ॥ ३७८ ॥ अ० ४ । ३ । ४३ ॥

साधु पुष्प्यत् और पच्यमान अर्थों में कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—हेमन्ते साधुः हैमन्तं वस्त्रम्; शैशिरमनुलेपनम्; वसन्ते पुष्प्यन्ति वासन्त्यः कुन्दलताः; ग्रैष्म्यः; पाटलाः; शरदि पच्यन्ते शारदाः शालयः; ग्रैष्मा यवाः इत्यादि ॥ ३७८ ॥

उप्ते च ॥ ३७९ ॥ अ० ४ । ३ । ४४ ॥

उप्त कहते हैं बोने को, इस अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय होवें। जैसे—हेमन्ते उप्यन्ते हैमन्ता इक्षवः; ग्रीष्मे उप्यन्ते ग्रैष्माः शालयः; शारदा यवाः इत्यादि ॥ ३७९ ॥

आश्वयुज्या वुञ् ॥ ३८० ॥ अ० ४ । ३ । ४५ ॥

उप्त अर्थ में सप्तमीसमर्थ आश्वयुजी प्रातिपदिक से वुञ् प्रत्यय हो।

अश्वयुक् शब्द अश्विनी नक्षत्र का पर्याय है। उससे युक्तकाल अर्थ में अण् हुआ है स्त्रीलिङ्ग तिथि का विशेषण है। [जैसे—] आश्वयुज्यामुप्ता आश्वयुजका यवाः ॥ ३८० ॥

देयमृणे ॥ ३८१ ॥ अ० ४ । ३ । ४७ ॥

ऋण देने अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—प्रावृषि देयमृणं प्रावृषेण्यम्; वैशाखे देयमृणं वैशाखम्; मासे देयमृणं मासिकम्; आर्द्धमासिकम्; सांवत्सरिकम् इत्यादि।

यहां 'ऋण' ग्रहण इसलिये है कि—मुहूर्त्ते देयं भोजनम्, यहां प्रत्यय न हो ॥ ३८१ ॥

* प्रायभव उसको कहते हैं कि जिसके होने का नियम न हो, बहुधा होता होवे ॥

व्याहरति मृगः ॥ ३८२ ॥ अ० ४ । ३ । ५१ ॥

व्याहरति क्रिया का मृग कर्त्ता वाच्य रहे, तो सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से जिस २ से जो २ प्रत्यय विधान किया हो वही २ होवे। जैसे—निशायां व्याहरति मृगः नैशिकः, नैशः; प्रादोषिकः, प्रादोषः *; सायन्तनः इत्यादि ॥ ३८२ ॥

तदस्य सोढम् ‡ ॥ ३८३ ॥ अ० ४ । ३ । ५२ ॥

षष्ठी के अर्थ में सोढ समानाधिकरण प्रथमासमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—निशाऽध्ययनं सोढमस्य छात्रस्य नैशः, नैशिकः; प्रादोषः, प्रादोषिकः; हेमन्तसहचरितं शीतं सोढमस्य हैमन्तः इत्यादि ॥ ३८३ ॥

तत्र भवः ॥ ३८४ ॥ अ० ४ । ३ । ५३ ॥

यहां पूर्वसूत्र से ही तत्र ग्रहण की अनुवृत्ति चली आती, फिर तत्र ग्रहण करने का प्रयोजन यह है कि कालाधिकार की निवृत्ति हो जावे।

तत्र अर्थात् वहां हुआ होता वा होगा, इस अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—स्त्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः; अश्वपतौ भव आश्वपतः; औत्सः; दैत्यः; आदित्यः; पृथिव्यां भवः पार्थिवः; वानस्पत्यः; स्त्रैणः; पौंस्नः; माथुरः; राष्ट्रियः इत्यादि ॥ ३८४ ॥

दिगादिभ्यो यत् ॥ ३८५ ॥ अ० ४ । ३ । ५४ ॥

भवार्थ में सप्तमीसमर्थ दिश् आदि प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो। [जैसे—] दिशि भवं दिश्यम्; वर्ग्यम्; पूग्यम् इत्यादि। यह सूत्र अण् का बाधक है ॥ ३८५ ॥

शरीरावयवाच्च ॥ ३८६ ॥ अ० ४ । ३ । ५५ ॥

शरीर के अवयव इन्द्रिय आदि प्रातिपदिकों से भवार्थ में यत् प्रत्यय हो। जैसे—तालुनि भवं तालव्यम्; दन्त्यम्; ओष्ठ्यम्; हृद्यम्; नाभ्यम्; चक्षुष्यम्; नासिक्यम्; पायव्यम्; उपस्थ्यम् इत्यादि ॥ ३८६ ॥

अव्ययीभावाच्च ॥ ३८७ ॥ अ० ४ । ३ । ५६ ॥

सप्तमीसमर्थ अव्ययीभावसंज्ञक प्रातिपदिकों से भवार्थ में ञ्य प्रत्यय हो ॥ ३८७ ॥

वा०—ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ३८८ ॥

---

* यहां (निशाप्रदोषाभ्यां च ॥ अ०४।३।१४) इस पूर्वलिखित सूत्र से ठञ् प्रत्यय विकल्प से होता है॥

‡ इस सूत्र में सहचारोपाधि लीजाती है। क्योंकि काल का सहना क्या है, उस काल में जो विशेष करके हो उसका सहना ठीक है, जैसे हेमन्त ऋतु में शीत विशेष को सह सके वह हैमन्त कहावे॥

सूत्र में जो अव्ययीभाव प्रातिपदिकों का ग्रहण है, उसका नियम इस वार्त्तिक से किया है कि—परिमुखादि अव्ययीभाव प्रातिपदिकों से ही ञ्य प्रत्यय हो। जैसे—परिमुखं भवं पारिमुख्यम्; पार्य्योष्ठ्यम्; पारिहनव्यम्।

यहां 'परिमुखादि का परिगणन' इसलिये है कि—उपकूलं भव औपकूलः; औपशालः, यहां ञ्य प्रत्यय न होवे॥ ३८८॥

अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्॥ ३८९॥ अ० ४। ३। ६०॥

पूर्ववार्त्तिक से परिमुखादि का नियम होने से अण् प्राप्त है, उसका बाधक यह सूत्र है। अन्तर् शब्द जिनके पूर्व हो ऐसे अव्ययीभाव प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय हो भव अर्थ में। जैसे—अन्तर्वेश्मनि भवमान्तर्वेश्मिकम्; आन्तःसद्मिकम्; आन्तर्गेहिकम् इत्यादि॥ ३८९॥

का०—समानस्य तदादेश्च अध्यात्मादिषु चेष्यते।
ऊर्ध्वं दमाच्च देहाच्च लोकोत्तरपदस्य च॥ ३९०॥

समान शब्द से और समान शब्द जिनके आदि में हो उन प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—समाने भवः सामानिकः। तदादि से—सामानग्रामिकः; सामानदेशिकः।

तथा अध्यात्मादि प्रातिपदिकों से भी ठञ् प्रत्यय होना चाहिये। जैसे—अध्यात्मनि भवमाध्यात्मिकम्; आधिदैविकम्; आधिभौतिकम्।

मकारान्त ऊर्ध्वम् शब्द जिनके पूर्व हो, ऐसे दम और देह प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—ऊर्ध्वं दमे भवमौर्ध्वंदमिकम्; और्ध्वंदेहिकम्।

और लोक शब्द जिन के उत्तरपद में हो, उन प्रातिपदिकों से भी ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—इह लोके भवमैहलौकिकम्; पारलौकिकम्।

अधिदेव, अधिभूत, इहलोक और परलोक ये चार शब्द अनुशतिकादि गण में पढ़े हैं, इससे उभयपदवृद्धि होती है॥ ३९०॥

का०—मुखपार्श्वतसोरीयः कुग्जनस्य परस्य च।
ईयः कार्य्योऽथ मध्यस्य मण्मीयौ प्रत्ययौ तथा॥ ३९१॥

तसि प्रत्ययान्त मुख और पार्श्व प्रातिपदिकों से ईय प्रत्यय होवे। छ के स्थान में ईय आदेश हो जाता, फिर ईय पाद पूर्ण होने के लिये कहा है। जैसे—मुखतो भवं मुखतीयम्; पार्श्वतीयम् *।

जन और पर प्रातिपदिकों से ईय प्रत्यय और प्रातिपदिकों को कुक् का आगम भी होवे। जैसे—जने भवो जनकीयः; परकीयः।

* यहां भसंज्ञा के होने से तसन्त अव्यय के टिभाग का लोप हुआ है॥

मध्य प्रातिपदिक से ईय मण् और मीय प्रत्यय होवें। जैसे—मध्ये भवो मध्यीयः, माध्यमः, मध्यमीयः * ॥ ३६१ ॥

का०—मध्यो मध्यं दिनण् चास्मात्स्थाम्नो लुगजिनात्तथा।
बाह्यो दैव्यः पाञ्चजन्योऽथ गम्भीराञ्ञ्य इष्यते ॥३६२॥

मध्य शब्द को "मध्यम्" ऐसा मकारान्त आदेश और उससे दिनण् प्रत्यय हो। जैसे—माध्यन्दिन उपगायति।

स्थामन् और अजिन शब्द जिनके अन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से विहित प्रत्यय का लुक् हो। जैसे—अश्वत्थामनि भवोऽश्वत्थामा। इस शब्द में पृषोदरादि से सकार को तकार हो जाता है। अजिनान्त से—कृष्णाजिने भवः कृष्णाजिनः; उष्ट्राजिनः; सिंहाजिनः; व्याघ्राजिनः इत्यादि।

जैसे—गम्भीर शब्द से ञ्य प्रत्यय होता है, वैसे बाह्य, दैव्य और पाञ्चजन्य इन तीन शब्दों में भी ञ्य जानो। बहिस शब्द के टिभाग का लोप हो जाता है ॥ ३६२ ॥

जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ॥ ३६३ ॥ अ० ४। ३। ६२ ॥

यह शरीरावयव से यत् प्राप्त है, उसका बाधक है।

भवार्थ में जिह्वामूल और अङ्गुलि प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय हो। जैसे—जिह्वामूले भवं जिह्वामूलीयं स्थानम्; अङ्गुलीयः ॥ ३६३ ॥

वर्गान्ताच्च ॥ ३६४ ॥ अ० ४। ३। ६३ ॥

भवार्थ में वर्गान्त प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय हो। [जैसे—] कवर्गे भवो वर्णः कवर्गीयः; चवर्गीयः; पवर्गीयः इत्यादि ॥ ३६४ ॥

तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः ॥३६५॥ अ० ४।३।६६॥

षष्ठी और सप्तमीसमर्थ व्याख्यातव्यनामवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—तिङां व्याख्यानो ग्रन्थस्तैङः; सुपां व्याख्यानो ग्रन्थः सौपः; स्त्रैणः; ताद्धितः; सुप्सु भवं सौपम्; तैङम्; कार्त्तम्।

यहां 'व्याख्यातव्यनाम' ग्रहण इसलिये है कि—पाटलिपुत्रस्य व्याख्यानम्, यहां प्रत्यय न होवे ॥ ३६५ ॥

बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ् ॥ ३६६ ॥ अ० ४। ३। ६७ ॥

व्याख्यान और भव अर्थ में षष्ठी और सप्तमीसमर्थ बह्वच् अन्तोदात्त प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—षात्वणत्विकः; नातानतिकम्; सामासिकः।

* गहादिगण में पृथवी मध्य शब्द के स्थान में मध्यम आदेश और छ प्रत्यय होके भी मध्यमीय शब्द साधा है, इससे अर्थभेद जानो शब्दभेद तो नहीं है ॥

यहां 'वह्वच्' ग्रहण इसलिये है कि—सौपम्; तैडम्। और 'अन्तोदात्त' इसलिये कहा है कि—सांहितः। यहां संहिता शब्द गतिस्वर से आद्युदात्त है, इसलिये ठञ् न हुआ ॥ ३९६ ॥

द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक् ॥ ३९७ ॥ अ० ४ । ३ । ७२ ॥

भव और व्याख्यान अर्थों में द्यच् ऋवर्णान्त ब्राह्मण ऋक् प्रथम अध्वर पुरश्चरण नाम और आख्यात ये जो व्याख्यातव्यनाम प्रातिपदिक हैं, उनसे ठक् प्रत्यय हो।

जैसे—वेदस्य व्याख्यानो ग्रन्थो वैदिकः; इष्टेर्व्याख्यानः ऐष्टिकः; पाशुकः। ऋत—चातुर्होतृकः, पाञ्चहोतृकः; ब्राह्मणिकः; आर्चिकः; प्राथमिकः; आध्वरिकः; पौरश्चरणिकः ॥ ३९७ ॥

वा०—नामाख्यातग्रहणं सङ्घातविगृहीतार्थम् ॥ ३९८ ॥

इस सूत्र में नाम और आख्यात शब्दों का ग्रहण इसलिये है कि जिससे समस्त शब्द से भी ठक् होजावे। जैसे—नामिकः; आख्यातिकः; नामाख्यातिकः ॥ ३९८ ॥

तत आगतः ॥ ३९९ ॥ अ० ४ । ३ । ७४ ॥

आगमन अर्थ में पञ्चमीसमर्थ ङ्याप् प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः; माथुरः; राष्ट्रियः इत्यादि ॥ ३९९ ॥

विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ॥ ४०० ॥ अ० ४ । ३ । ७७ ॥

आगमन अर्थ में पञ्चमीसमर्थ विद्यासम्बन्ध और योनिसम्बन्धवाची प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय हो।

जैसे—विद्यासम्बन्ध—उपाध्यायादागतं धनमौपाध्यायकम्; शैष्यकम्; आचार्यकम्। योनिसम्बन्ध—पैतामहकम्; मातामहकम्, मातुलकम्; श्वाशुरकम् इत्यादि ॥ ४०० ॥

ऋतष्ठञ् ॥ ४०१ ॥ अ० ४ । ३ । ७८ ॥

पंचमीसमर्थ ऋकारान्त विद्यासम्बन्ध और योनिसम्बन्धवाची प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—विद्यासम्बन्ध—होतुरागतः पुरुषो हौतृकः; पैतृकम्। योनिसम्बन्ध—भ्रातृकम्; स्वासृकम्; मातृकम्।

ऋकारान्त वृद्धप्रातिपदिकों से भी परविप्रतिषेध मान के छ प्रत्यय को बाध के ठञ् ही होता है। जैसे—शास्तुरागतं शास्तृकम् इत्यादि ॥ ४०१ ॥

पितुर्यच्च ॥ ४०२ ॥ अ० ४ । ३ । ७६ ॥

आगत अर्थ में पितृ प्रातिपदिक से यत् और ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—पितुरागतं पित्र्यम्, पैतृकम् ॥ ४०२ ॥

गोत्रादङ्कवत् ॥ ४०३ ॥ अ० ४ । ३ । ८० ॥

गोत्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से अङ्कवत् अर्थात् जैसे—अङ्क अर्थ में औपगवानामङ्कः औपगवकः; कापटवकः; नाडायनकः; चारायणकः इत्यादि में वुञ् प्रत्यय होता है, ऐसे ही औपगवेभ्य आगतम् औपगवकम्; कापटवकम्; नाडायनकम्; चारायणकम् इत्यादि में भी वुञ् होवे ॥ ४०३ ॥

हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ॥४०४॥ अ० ४ । ३ । ८१ ॥

आगत अर्थ में हेतु और मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से विकल्प करके रूप्य प्रत्यय हो। जैसे—गोभ्यो हेतुभ्य आगतं गोरूप्यम्, पक्ष में गव्यम्; समादागतं समरूप्यम्, समीयम्; विषमरूप्यम्, विषमीयम्। मनुष्य—देवदत्तरूप्यम्, देवदत्तीयम्, दैवदत्तम्; यज्ञदत्तरूप्यम्, यज्ञदत्तीयम्, याज्ञदत्तम् ॥ ४०४ ॥

मयट् च ॥ ४०५ ॥ अ० ४ । ३ । ८२ ॥

आगत अर्थ में हेतु और मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से मयट् प्रत्यय हो। जैसे—सममयम्; विषममयम्; देवदत्तमयम्; यज्ञदत्तमयम्।

टकार ङीप् होने के लिये है=सममयी ॥ ४०५ ॥

प्रभवति ॥ ४०६ ॥ अ० ४ । ३ । ८३ ॥

उससे जो उत्पन्न होता है, इस अर्थ में पंचमीसमर्थ शब्दों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा; दारदी सिन्धुः ॥ ४०६ ॥

विदूराञ्ञ्यः ॥ ४०७ ॥ अ० ४ । ३ । ८४ ॥

पूर्वोक्त अर्थ में विदूर प्रातिपदिक से ञ्य प्रत्यय हो। जैसे—विदूरात्प्रभवति वैदूर्य्यो मणिः ॥ ४०७ ॥

का०—वालवायो विदूरं वा प्रकृत्यन्तरमेव वा।
न वै तत्रेति चेद् ब्रूयाज्जित्वरीवदुपाचरेत् ॥ ४०८ ॥

लोक में जिस मणि को वैदूर्य्य कहते हैं, वह वालवाय नामक पर्वत से उत्पन्न होता है। विदूर शब्द नगर और पर्वत दोनों का नाम है। परन्तु विदूर नगर में उस मणि का

संस्कार किया जाता है। इसलिये यह विचार करना चाहिये कि विदूर शब्द से प्रभव अर्थ में प्रत्यय क्यों होता है ? वैदूर्य्यमणि तो वालवाय पर्वत से उत्पन्न होता है।

इसका समाधान यह है कि—वालवाय शब्द के स्थान में विदूर आदेश जानो, अथवा वालवाय का पर्य्यायवाची विदूर शब्द भी है।

अब सन्देह यह रहा कि वालवाय पर्वत के समीप रहनेवाले वालवाय को विदूर नहीं कहते, फिर पर्य्यायवाची क्यों कर हो सकता है ?

इसका समाधान यह है कि—जैसे वाराणसी को वैश्य लोग 'जित्वरी' कहते हैं। वैसे ही वैयाकरण लोग परम्परा से वालवाय को विदूर कहते चले आये हैं ॥ ४०८ ॥

तद्गच्छति पथिदूतयोः ॥ ४०९ ॥ अ० ४। ३। ८५ ॥

'उसको जाता है' इस अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों, जो गच्छति क्रिया के पन्था और दूत कर्त्ता वाच्य हों तो।

जैसे—स्रुघ्नं गच्छति स्रौघ्नः पन्था दूतो वा; माथुरः; पाठशालां गच्छति पन्था दूतो वा पाठशालीयः * इत्यादि ॥ ४०९ ॥

अभिनिष्क्रामति द्वारम् ॥ ४१० ॥ अ० ४। ३। ८६ ॥

जो अभिनिष्क्रामति क्रिया का द्वार कर्त्ता वाच्य रहे, तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति द्वारं स्रौघ्नम्; माथुरम्; राष्ट्रियम्; वाराणसीमभिनिष्क्रामति वाराणसेयम्; ऐन्द्रप्रस्थम्; लावपुरम् इत्यादि।

यहां द्वार ग्रहण इसलिये है कि-मथुरामभिनिष्क्रामति पुरुषः, यहां प्रत्यय न हो ॥४१०॥

अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ॥ ४११ ॥ अ० ४। ३। ८७ ॥

जिस विषय को लेके ग्रन्थ रचा जावे, उस अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—सुभद्रामधिकृत्य कृतो ग्रन्थः सौभद्रः; गौरिमित्रः; यायातः; शरीरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरः; वर्णाश्रममधिकृत्य कृतो ग्रन्थो वार्णाश्रमः; कारकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः कारकीयः इत्यादि ॥ ४११ ॥

सोऽस्य निवासः ॥ ४१२ ॥ अ० ४। ३। ८९ ॥

'वह इसका निवासस्थान है,' इस अर्थ में प्रथमासमर्थ ङ्याप् प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—स्रुघ्नो निवासोऽस्य पुरुषस्य स स्रौघ्नः; माथुरः; राष्ट्रियः; वाराणसी निवासोऽस्य वाराणसेयः; ग्राम्यः; ग्रामीणः ॥ ४१२ ॥

* वाराणसीं गच्छति पन्था दूतो वा वाराणसेयः। वाराणसी शब्द का नद्यादिगण में पाठ होने से ढक् प्रत्यय हो जाता है ॥

अभिजनश्च ‡ ॥ ४१३ ॥ अ० ४ । ३ । ६० ॥

'वह इसका उत्पत्तिस्थान है,' इस अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। [जैसे—] स्रुघ्नोऽभिजनोऽस्य स्रौघ्नः; माथुरः; राष्ट्रियः; इन्द्रप्रस्थोऽभिजनोऽस्य ऐन्द्रप्रस्थः; ग्राम्यः; ग्रामीणः ॥ ४१३ ॥

आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते ॥ ४१४ ॥ अ० ४ । ३ । ६१ ॥

आयुधजीवि अर्थात् शस्त्रास्त्रविद्या से जीविका करनेहारे वाच्य रहें, तो प्रथमासमर्थ पर्वतवाची प्रातिपदिकों से अभिजन अर्थ में छ प्रत्यय होवे। जैसे—हृद्गोलः पर्वतोऽभिजन एषां ते हृद्गोलीया आयुधजीविनः; रैवतकीयाः; वालवायीयाः इत्यादि।

यहां 'आयुधजीवियों' का ग्रहण इसलिये है कि—ऋक्षोदः पर्वतोऽभिजनमेषामार्क्षोदा ब्राह्मणाः। और 'पर्वत' ग्रहण इसलिये है कि—साङ्काश्यमभिजनमेषां ते साङ्काश्यका आयुधजीविनः, यहां छ प्रत्यय न होवे ॥ ४१४ ॥

भक्तिः ॥ ४१५ ॥ अ० ४ । ३ । ९५ ॥

भक्तिसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में यथाप्राप्त प्रत्यय हों। जैसे—ग्रामो भक्तिरस्य ग्रामेयकः; ग्राम्यः; ग्रामीणः; राष्ट्रियः; माथुरः इत्यादि ॥४१५॥

अचित्ताददेशकालाट्ठक् ॥ ४१६ ॥ अ० ४ । ३ । ९६ ॥

'वह इसका सेवनीय है', इस अर्थ में प्रथमासमर्थ जो देश और काल को छोड़ के अचेतनवाची प्रातिपदिक हैं, उनसे ठक् प्रत्यय हो। जैसे—अपूपा भक्तिरस्य आपूपिकः; शाष्कुलिकः; पायसिकः; साक्तुकः।

यहां 'अचित्त' ग्रहण इसलिये है कि—दैवदत्तः। 'अदेश' इसलिये है कि—स्रौघ्नः। और 'अकाल' इसलिये है कि—ग्रैष्मः, यहां भी ठक् न हो ॥ ४१६ ॥

जनपदिनां जनपदवत्सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने ॥४१७॥ अ० ४ । ३ । १०० ॥

बहुवचन में जनपद नाम देशवाची शब्दों के तुल्य जो जनपदि अर्थात् देश के स्वामी क्षत्रियवाची शब्द हैं, उनको जनपदवत् नाम (जनपदतदवध्योश्च) इस प्रकरण में जो प्रत्यय विधान कर चुके हैं, वे ही प्रत्यय भक्तिसमानाधिकरण उन क्षत्रियवाची शब्दों से यहां होवें। जैसे—अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य स आङ्गकः; वाङ्गकः; सौह्मकः इत्यादि।

‡ निवास और अभिजन में इतना भेद है कि जहां वर्त्तमानकाल में रहते हों उसको निवास, और जहां पिता दादे आदि कुटुम्ब के पुरुष रहे हों उसको अभिजन कहते हैं ॥

'जनपदी' द्व'त्रयों का ग्रहण इसलिये है कि—पञ्चाला ब्राह्मणा भक्तिरस्य स पाञ्चालः, यहां वुञ् न हो। 'सर्वे' शब्द का ग्रहण इसलिये है कि—प्रकृति भी जनपद के समान हो जावे। जैसे—मद्राणां वृजीणां वा राजा माद्रः; वार्ज्यः; माद्रो भक्तिरस्य स मद्रकः; वृजिकः। (मद्रवृज्योःकन्) इससे कन् प्रत्यय प्रकृति को ह्रस्व होने से होता है ॥४१७॥

तेन प्रोक्तम् ॥ ४१८ ॥ अ० ४ । ३ । १०१ ॥

'उसने जो कहा' इस अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—उत्सेन प्रोक्तमौत्सम्; दैत्यम्; आदित्यम्; प्रजापतिना प्रोक्तं प्राजापत्यम्; स्त्रिया प्रोक्तं स्त्रैणम्; पौंस्नम्; पाणिनिना प्रोक्तं व्याकरणं पाणिनीयम्; काशकृत्स्नम्; काणादम्; गौतमम् इत्यादि ॥ ४१८ ॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ॥ ४१९ ॥ अ० ४ । ३ । १०५ ॥

प्रोक्त अर्थ में जो प्राचीन लोगों के कहे ब्राह्मण और कल्प वाच्य हों, तो तृतीया-समर्थ प्रातिपदिकों से णिनि प्रत्यय हो।

जैसे—पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना भल्लवेन प्रोक्ता भाल्लविनः; शाट्यायनिनः; ऐतरेयिणः। कल्पों में—पैङ्गी कल्पः; आरुणपराजी कल्पः इत्यादि ॥ ४१९ ॥

वा०—याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधः ॥ ४२० ॥

याज्ञवल्क्य आदि शब्दों से णिनि प्रत्यय न होवे, पुराणप्रोक्त होने से प्राप्त है। [जैसे—] याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि याज्ञवल्क्यानि; सौलभानि इत्यादि, यहां अण् प्रत्यय होता है।

काशिकाकार जयादित्य आदि लोग इसको नहीं समझे। इसीलिये यह लिखा है कि याज्ञवल्कादि ब्राह्मण पुराणप्रोक्त नहीं, किन्तु पीछे बने हैं। सो महाभाष्य के विरुद्ध होने से मिथ्या समझना चाहिये ॥ ४२० ॥

तेनैकदिक् ॥ ४२१ ॥ अ० ४ । ३ । ११२ ॥

एकदिक् नाम तुल्यदिक् अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—वृद्धेनैकदिक् वार्द्धः; वाराणस्या एकदिक् वाराणसेयो ग्रामः; सुदाम्नैकदिक् सौदामनी विद्युत्; हिमवतैकदिक् हैमवती इत्यादि ॥ ४२१ ॥

तसिश्च ॥ ४२२ ॥ अ० ४ । ३ । ११३ ॥

एकदिक् अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से तसि प्रत्यय भी हो।

तसि प्रत्यय की अव्ययसंज्ञा जाननी, स्वरादिगण में पाठ होने से। [जैसे—] नासिकया एकदिक् नासिकातः; सुदामतः, हिमवत्तः; पीलुमूलतः इत्यादि ॥ ४२२ ॥

उरसो यच्च ॥ ४२३ ॥ अ० ४ । ३ । ११४ ॥

तेनैकदिक् इस विषय में उरस् प्रातिपदिक से यत् और चकार से तसि प्रत्यय भी हो। जैसे—उरसा एकदिक् उरस्यः, उरस्तः ॥ ४२३ ॥

उपज्ञाते ॥ ४२४ ॥ अ० ४ । ३ । ११५ ॥

उपज्ञात अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—पाणिनिनोपज्ञातं पाणिनीयं व्याकरणम्; पातञ्जलं योगशास्त्रम्; काशकृत्स्नम्; गुरुलाघवम्; आपिशलम्।

जो अपने आप जाना जाय उसको 'उपज्ञात' कहते हैं, अर्थात् विद्यमान वस्तु को जानना चाहिये ॥ ४२४ ॥

कृते ग्रन्थे ॥ ४२५ ॥ अ० ४ । ३ । ११६ ॥

'जो किया जावे, सो ग्रन्थ होवे तो', इस अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हो। जैसे—वररुचिना कृताः वाररुचाः श्लोकाः; मानवो ग्रंथः; भार्गवो ग्रंथः।

यहां 'ग्रन्थ' ग्रहण इसलिये है कि—कुलालकृतो घटः, यहां प्रत्यय न हो ॥ ४२५ ॥

तस्येदम् ॥ ४२६ ॥ अ० ४ । ३ । १२० ॥

'उसका यह है', इस अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—वनस्पतेरयं दण्डो वानस्पत्यः; राज्ञः कुमारी राजकीया, राजकीयो भृत्यः, यहां (राज्ञः क च) इससे ककारादेश हो जाता है; उपगोरिदम् औपगवम्; कापटवम्; राष्ट्रियम्; अवारपारीणम्; देवस्येदं दैवम्, दैव्यम् इत्यादि ॥ ४२६ ॥

वा०—वहेस्तुरणिट् च ॥ ४२७ ॥

तृच् प्रत्ययान्त वह धातु से अण् प्रत्यय और प्रत्यय को इट् का आगम भी हो। जैसे—संवोढुः स्वं सांवहित्रम् ॥ ४२७ ॥

वा०—अग्नीधः शरणे रञ् भ च ॥ ४२८ ॥

शरण नाम घर अर्थ में, अग्नीध प्रातिपदिक से रञ् प्रत्यय और प्रत्यय के परे पूर्व की भसंज्ञा भी जाननी चाहिये। जैसे—अग्नीधः शरणम् आग्नीध्रम् ॥ ४२८ ॥

वा०—समिधामाधाने षेण्यण् ॥ ४२९ ॥

समिध् प्रातिपदिक से आधान षष्ठी का अर्थ होवे, तो षेण्यण् प्रत्यय होवे। षित्करण ङीष् प्रत्यय होने के लिये है। [जैसे—] सामिधेन्यो मन्त्रः, सामिधेनी ऋक् ॥ ४२९ ॥

द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः ॥ ४३० ॥ अ० ४ । ३ । १२३ ॥

जिन २ का परस्पर वैर और योनिसम्बन्ध हो, उनके वाची द्वन्द्वसमास किये प्रातिपदिकों से वुन् प्रत्यय हो स्वार्थ में। [जैसे—] वैरद्वन्द्व से—अहिनकुलिका, वृद्ध प्रातिपदिकों से भी परत्व से वुन् होता है। जैसे—काकोलूकिका; श्वावराहिका। मैथुनिकद्वन्द्व से—गर्गकुशिकिका; अत्रिभरद्वाजिका इत्यादि।

यहां लिंगानुशासन की रीति से नित्य स्त्रीलिंग होता है॥ ४३०॥

वा०—वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः ॥ ४३१ ॥

वैर अर्थ में देवासुर आदि प्रातिपदकों से वुन् प्रत्यय न हो, किन्तु अण् ही होवे। जैसे—दैवासुरम्; राक्षोऽसुरम् इत्यादि॥ ४३१॥

गोत्रचरणाद् वुञ् ॥ ४३२ ॥ अ० ४ । ३ । १२४ ॥

गोत्रवाची और चरणवाची प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय होवे॥ ४३२॥

वा०—चरणाद्धर्माम्नाययोः ॥ ४३३ ॥

गोत्रवाचियों से सामान्य षष्ठी के अर्थ में और चरणवाचियों से धर्म तथा आम्नाय विशेष अर्थों में वुञ् प्रत्यय समझो। जैसे—गोत्र से—ग्लुचुकायनेरिदं ग्लौचुकायनकम्; वृद्धप्रातिपदिकों से भी परत्व से वुञ् ही होता है। जैसे—गार्गकम्; वात्सकम् इत्यादि। चरणवाचियों से—कठानां धर्म आम्नायो वा काठकम्; मौदकम्; पैप्पलादकम्; कालापकम् इत्यादि।

अधिकार होने से अण् पाता है, उसका यह बाधक है॥ ४३३॥

सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण् ॥४३४॥ अ० ४ । ३ । १२५ ॥

पूर्व सूत्र से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है।

अञन्त यञन्त और इञन्त षष्ठीसमर्थ गोत्रवाची प्रातिपदिकों से सम्बन्ध सामान्य अर्थों में अण् प्रत्यय होवे। जैसे—विदानां सङ्घोऽङ्को लक्षणं वा वैदः; और्वः। यञन्त से—गर्गाणां सङ्घोऽङ्को लक्षणं वा गार्गः; वात्सः। इञन्त से—दाक्षः; प्लाक्षः॥ ४३४॥

वा०—सङ्घादिषु घोषग्रहणम् ॥ ४३५ ॥

सङ्घ आदि अर्थों में जो प्रत्यय कहे हैं, वे घोष अर्थ में भी उन्हीं प्रातिपदिकों से होवें। जैसे—गार्गो घोषः; वात्सो घोषः; दाक्षः प्लाक्षो वा इत्यादि॥ ४३५॥

शकलाद्वा ॥ ४३६ ॥ अ० ४ । ३ । १२८ ॥

इस सूत्र में प्राप्तविभाषा इसलिये समझना चाहिये कि शकल शब्द गर्गादिगण में पढ़ा है, उसके यञन्त होने से पूर्व सूत्र से नित्य अण् प्राप्त है, उसका विकल्प किया है।

षष्ठीसमर्थ गोत्रप्रत्ययान्त शकल प्रातिपदिक से विकल्प करके अण् प्रत्यय होवे, और पक्ष में गोत्रवाची से वुञ् समझना चाहिये। [जैसे—] शाकल्यस्य सङ्घोऽङ्को लक्षणं घोषो वेति शाकलः, शाकलकः।

इस सूत्र पर काशिका और सिद्धान्तकौमुदी रचने और पढ़ने वाले लोग कहते हैं कि (शाकलाद्वा) ऐसा सूत्र होना चाहिये। वे लोग शकल शब्द से प्रोक्त अर्थ में अण् करके इस शकल शब्द को चरणवाची मानते और संघादि अर्थों में निर्वचन करके प्रत्यय करते हैं, सो यह उन लोगों का अर्थ मिथ्या है। क्योंकि जो (शाकलाद्वा) ऐसा सूत्र मानें तो शकल प्रातिपदिक चरणवाची हुआ, फिर उससे संघादि अर्थों में कैसे प्रत्यय होगा, यह कथन पूर्वापर विरुद्ध है। क्योंकि चरणवाचियों से धर्म और आम्नाय अर्थ में प्रत्यय कहे हैं। और महाभाष्य से भी विरुद्ध है। महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि बहुत स्थलों में शाकल्य के सूत्र को शाकल लिखते हैं, फिर चरणवाची होगा तो लक्षण अर्थ में शाकल्य शब्द से क्यों प्रत्यय हो सकेगा॥ ४३६ ॥

रैवतिकादिभ्यश्छः ॥ ४३७ ॥ अ० ४ । ३ । १३१ ॥

यहां गोत्रवाचियों से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है।

रैवतिकादि प्रातिपदिकों से सम्बन्ध सामान्य अर्थ में छ प्रत्यय होवे। जैसे—रैवतिकानामयं संघो घोषो वा रैवतिकीयः; स्वापिशीयः; चैमवृद्धीयः इत्यादि॥ ४३७॥

वा०—कौपिञ्जलहास्तिपदादण् ॥ ४३८ ॥

यहां भी गोत्रप्रत्ययान्तों से वुञ् प्राप्त है, उसका बाधक यह वार्तिक है।

कौपिञ्जल और हास्तिपद प्रातिपदिकों से सम्बन्ध सामान्य अर्थ में अण् प्रत्यय होवे। जैसे—कौपिञ्जलस्य संघः कौपिञ्जलः; हास्तिपदः॥ ४३८॥

वा०—आथर्वणिकस्येकलोपश्च * ॥ ४३९ ॥

* अथर्वन् शब्द वसन्तादि गण में पढ़ा है, उससे अधीत वेद अर्थ में ठक् होता है। अथर्वाणमधीते वेद वा आथर्वणिकः। और यह चरणवाची शब्द होने से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह वार्तिक अपवाद है। (कौपिञ्जल०) और (आथर्व०) ये दोनों वार्त्तिक काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र करके लिखे और व्याख्यान भी किये हैं। सो जो ये सूत्र ही होते तो महाभाष्य में वार्त्तिक क्यों पढ़े जाते। और कैयट ने भी लिखा है कि सूत्रों में पाठ अपाणिनीय है। इससे निश्चय होता है कि कैयट के समय से पूर्व ही किसी ने मूर्खता से सूत्रों में लिख दिये हैं॥

पूर्व वार्त्तिक से अण् प्रत्यय की अनुवृत्ति चली आती है।

आथर्वणिक शब्द से धर्म तथा आम्नाय अर्थ में अण् प्रत्यय और उसके इक भाग का लोप होवे। जैसे—आथर्वणिकस्य धर्म आम्नायो वा आथर्वणः ॥ ४३९ ॥

तस्य विकारः † ॥ ४४० ॥ अ० ४ । ३ । १३४ ॥

विकार अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय हों। जैसे—अश्मनो विकार आश्मनः, आश्मः; भस्मनो विकारो भास्मनः, भास्मः; मार्त्तिकः; वनस्पतेर्विकारो दण्डो वानस्पत्यः इत्यादि ॥ ४४० ॥

अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ‡ ॥४४१॥ अ० ४ । ३ । १३५ ॥

विकार और अवयव अर्थ में प्राणी ओषधि और वृक्षवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों, परन्तु प्राणिवाची शब्दों से इसी प्रकरण में आगे अञ् कहेंगे।

जैसे [प्राणिवाची]—कपोतस्य विकारोऽवयवो वा कापोतः; मायूरः; तैत्तिरः। ओषधिवाची—लवङ्गस्य विकारोऽवयवो वा लावङ्गम्; दैवदारम्; निर्वेश्या विकारोऽवयवो वा नैर्वेश्यम्। वृक्षवाची—खदिरस्य विकारोऽवयवो वा खादिरम्; बार्बुरम्; कारीरं काण्डम्, कारीरं भस्म इत्यादि ॥ ४४१ ॥

मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ॥४४२॥ अ० ४।३।१४३॥

विकार और अवयव अर्थ में लौकिकप्रयोगविषयक प्रकृतिमात्र से मयट् प्रत्यय विकल्प करके हो, भक्ष्य और आच्छादन अर्थ को छोड़के। [जैसे -] अश्ममयम्, आश्मनः; मूर्वामयम्, मौर्वम्; वनस्पतेर्विकारो वनस्पतिमयम्, वानस्पत्यम्।

यहां 'भाषा' ग्रहण इसलिये है कि—बैल्वः खादिरो वा यूपः स्यात्, यहां मयट् न हो। और 'अभक्ष्याच्छादन' ग्रहण इसलिये है कि—मौद्गः सूपः; कार्पासमाच्छादनम्, यहां भी मयट् न होवे ॥ ४४२ ॥

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ॥ ४४३ ॥ अ० ४ । ३ । १३९ ॥

यहां नित्यग्रहण विकल्प की निवृत्ति के लिये है।

† इस सूत्र में तस्य ग्रहण की अनुवृत्ति (तस्येदम्) इस सूत्र से चली आती, फिर तस्य ग्रहण का प्रयोजन यह है कि यहां से पूर्व २ शेषाधिकार की समाप्ति समझी जावे, अर्थात् विकार अवयव आदि अर्थों में घ आदि प्रत्यय न होवें। और यह प्रकरण सामान्य षष्ठ्यर्थ का बाधक है ॥

‡ यह सूत्र नियमार्थ होने के लिये पृथक् किया है कि इस प्रकरण में प्राणी ओषधि और वृक्षवाची प्रातिपदिकों से विकारावयव दोनों अर्थों में, और अन्य शब्दों से केवल विकार अर्थ में ही प्रत्यय होवें। और ये दोनों सूत्र अधिकार के लिये हैं ॥

भक्ष्य और आच्छादनरहित विकार और अवयव अर्थ हों, तो षष्ठीसमर्थ वृद्धसंज्ञक और शरादिगण प्रातिपदिकों से लौकिक प्रयोगों में मयट् प्रत्यय नित्य ही होवे।

जैसे—आम्रस्य विकारोऽवयवो वा आम्रमयम्; शालमयम्; शाकमयम्; तालमयम् इत्यादि; यहां वृद्धप्रातिपदिकों से छ प्रत्यय प्राप्त है, उसका बाधक मयट् है। शरादि—शरमयम्; दर्भमयम् इत्यादि ॥ ४४३ ॥

जातरूपेभ्यः परिमाणे ॥ ४४४ ॥ अ० ४ । ३ । १४६ ॥

जातरूप शब्द सुवर्ण का पर्य्यायवाची है। बहुवचन निर्देश से सुवर्णवाचकों का ग्रहण होता है।

परिमाण विकार अर्थ होवे, तो सुवर्णवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे। जैसे—अष्टापदस्य विकार आष्टापदम्; जातरूपम्; सौवर्णम्; रौक्मम् इत्यादि।

यहां 'परिमाण' ग्रहण इसलिये है कि—सुवर्णमयः प्रासादः, यहां अण् प्रत्यय न हो। यह मयट् का अपवाद है ॥ ४४४ ॥

प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ॥ ४४५ ॥ अ० ४ । ३ । १५० ॥

यह अण् का अपवाद है। षष्ठीसमर्थ प्राणिवाची और रजतादि प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय हो, विकार और अवयव अर्थों में। [जैसे—]—प्राणी- कपोतस्य विकारः कापोतम्; मायूरम्; तैत्तिरम्। रजतादि—राजतम्; सैसम्; लौहम् इत्यादि ॥ ४४५ ॥

क्रीतवत्परिमाणात् ॥ ४४६ ॥ अ० ४ । ३ । १५२ ॥

जिस २ परिमाणवाची प्रातिपदिक से क्रीत अर्थ में जो २ प्रत्यय होता है, उसी २ प्रातिपदिक से वही २ प्रत्यय यहां विकार अवयव अर्थ में होवे। जैसे—निष्केण क्रीतं नैष्किकम् होता है, वैसे ही—निष्कस्य विकारो नैष्किकः; शत्यः, शतिकः; द्विनिष्कः, द्विनैष्किकः इत्यादि ॥ ४४६ ॥

फले लुक् ॥ ४४७ ॥ अ० ४ । ३ । १५६ ॥

विकारावयव फल अर्थ अभिधेय हो, तो विहित प्रत्यय का लुक् होवे। जैसे—आमलक्याः फलम् आमलकम्; बदर्याः फलानि बदराणि; कुबलकम्; बिम्बम्* इत्यादि ॥ ४४७ ॥

लुप् च + ॥ ४४८ ॥ अ० ४ । ३ । १६२ ॥

* यहां सर्वत्र तद्धित प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक् तद्धितलुकि) इस सूत्र से स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है ॥

+ यहां पूर्व सूत्र से लुक् प्राप्त है, फिर लुक्विधान इसलिये है कि (लुपि युक्तव०) इससे लिङ्ग और वचन भी युक्तवत् हो जावें, नहीं तो फल का विशेषण नपुंसकलिङ्ग होता ॥

जम्बू प्रातिपदिक से विहित विकारावयव प्रत्यय का विकल्प करके लुप् होवे। जैसे—जम्ब्वा विकारः फलं जम्बूः फलम् ॥ ४४८ ॥

वा०—फलपाकशुषामुपसङ्ख्यानम् ॥ ४४६ ॥

जिन गेहूँ जौ धान आदि फलों के पकने के समय में उनके वृक्ष सूख जाते हैं, उनसे भी विहित विकारावयव प्रत्यय का नित्य लुप् होवे। जैसे—व्रीहीणां फलानि व्रीहयः; गोधूमाः; यवाः; माषाः; तिलाः; मुद्गाः; मसूराः इत्यादि ॥ ४४६ ॥

वा०—पुष्पमूलेषु बहुलम् ॥ ४५० ॥

पुष्प और मूल विकारावयव अर्थ हों, तो बहुल करके प्रत्यय का लुप् हो। जैसे—मल्लिकायाः पुष्पं मूलं वा मल्लिका; करवीरम्; बिसम्; मृणालस्य पुष्पं मूलं वा मृणालम्।

बहुलग्रहण से कहीं नहीं भी होता। जैसे—पाटलानि पुष्पाणि मूलानि वा; बैल्वानि फलानि ॥ ४५० ॥

—[इति तृतीयः पादः ॥]

[अथ चतुर्थः पादः—]

प्राग्वहतेष्ठक् ॥ ४५१ ॥ अ० ४ । ४ । १ ॥

यह अधिकार सूत्र है। (तद्वहति०) इस सूत्रपर्यन्त जो २ अर्थ कहे हैं, उन सबमें सामान्य से ठक् प्रत्यय होगा। जैसे—अक्षैर्दीव्यति आक्षिकः इत्यादि।

इस चतुर्थाध्याय के प्रथम पाद में (प्राग्दीव्यतोऽण्) यह अधिकार कर चुके हैं। उसकी यहां से निवृत्ति समझो, क्योंकि अगले सूत्र में दीव्यति शब्द पढ़ा है। अण् के अधिकार की समाप्ति होने से प्रथम ही दूसरा ठक् प्रत्यय का अधिकार कर दिया। इस विषय में लौकिक दृष्टान्त यह है कि राजा जब वृद्ध होता है तो अपने जीवते ही पुत्र को गद्दी पर बैठा देता है ॥ ४५१ ॥

वा०—ठक्प्रकरणे तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ४५२ ॥

ऐसा वह कहता है, इस अर्थ में माशब्दादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—माशब्द इत्याह माशब्दिकः; नित्याः शब्दा इत्याह नैत्यशब्दिकः; कार्य्यशब्दिकः इत्यादि ॥ ४५२ ॥

वा०—आहौ प्रभूतादिभ्यः ॥ ४५३ ॥

द्वितीयासमर्थ प्रभूतादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे कहने अर्थ में। जैसे—प्रभूतमाह प्राभूतिकः; पार्य्याप्तिकः इत्यादि ॥ ४५३ ॥

वा०—पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः ॥ ४५४ ॥

द्वितीयासमर्थ सुस्नातादि प्रातिपदिकों से पूछने अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—सुस्नातं पृच्छति सौस्नातिकः; सौखरात्रिकः; सुखशयनं पृच्छति सौखशायनिकः इत्यादि ॥ ४५४ ॥

वा०—गच्छतौ परदारादिभ्यः ॥ ४५५ ॥

द्वितीयासमर्थ परदारादि प्रातिपदिकों से गमन करने अर्थ में ठक् प्रत्यय हो। जैसे—परदारान् गच्छति पारदारिकः; गौरुतल्पिकः इत्यादि ॥ ४५५ ॥

तेन दीव्यति खनति जयति जितम् * ॥४५६॥ अ० ४।४।२॥

दीव्यति आदि क्रियाओं के कर्त्ता वाच्य रहें, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—अक्षैर्दीव्यति आक्षिकः; कुद्दालेन खनति कौद्दालिकः; शलाकाभिर्जयति शालाकिकः; शलाकाभिर्जितं शालाकिकं धनम् इत्यादि ॥ ४५६ ॥

संस्कृतम् ॥ ४५७ ॥ अ० ४।४।३ ॥

संस्कार करने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—घृतेन संस्कृतं घार्तिकम्; तैलिकम्; दध्ना संस्कृतं दाधिकम्; ताक्रिकम् इत्यादि ॥ ४५७ ॥

तरति ॥ ४५८ ॥ अ० ४।४।५ ॥

तरने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—वृषभेण तरति वार्षभिकः; माहिषिकः; औडुपिकः इत्यादि ॥ ४५८ ॥

नौद्व्यचष्ठन् ॥ ४५९ ॥ अ० ४।४।७ ॥

यहां पूर्व सूत्र से ठक् प्राप्त है, उसका अपवाद ठन् किया है।

तरने अर्थ में तृतीयासमर्थ नौ और द्व्यच् प्रातिपदिकों से ठन् प्रत्यय होवे। जैसे—नावा तरति नाविकः; घटेन तरति घाटिकः; कौम्भिकः; बाहुकः इत्यादि ॥ ४५९ ॥

चरति ॥ ४६० ॥ अ० ४।४।८ ॥

चलने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—शकटेन चरति शाकटिकः; राथिकः; हास्तिकः इत्यादि ॥ ४६० ॥

आकर्षात्ष्ठल् ॥ ४६१ ॥ अ० ४।४।९ ॥

यहां पूर्व सूत्र से ठक् पाता है, उसका अपवाद है।

चलने अर्थ में तृतीयासमर्थ आकर्ष प्रातिपदिक से ष्ठल् प्रत्यय होवे। षित्करण स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होने के लिये है। [जैसे—] आकर्षेण चरति आकर्षिकः; आकर्षिकी ॥४६१॥

* यहां जित शब्द का पृथक् ग्रहण इसलिये है कि जि धातु का कर्म अभिधेय हो तो भी ठक् प्रत्यय हो जावे ॥

का०—आकर्षात् पर्पादेर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच्च।
आवसथात्किशरादेः षितः षडेते ठगधिकारे * ॥ ४६२ ॥

यह आर्य्या छन्द है। आकर्ष शब्द से ष्ठल्, पर्पादिकों से ष्ठन्, भस्त्रादिकों से ष्ठन्, कुसीद और दशैकादश प्रातिपदिकों से ष्ठन् और ष्ठच्, आवसथ शब्द से ष्ठल्, और किशरादि प्रातिपदिकों से ष्ठन् ये छः प्रत्यय इस अधिकार में षित् हैं ॥ ४६२ ॥

वेतनादिभ्यो जीवति ॥ ४६३ ॥ अ० ४ । ४ । १२ ॥

जीवने अर्थ में तृतीयासमर्थ वेतनादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—वेतनेन जीवति वैतनिकः; जालिकः; वेशेन जीवति वैशिकः; उपदेशेन जीवति औपदेशिकः; उपस्थेन जीवति औपस्थिकः, औपस्थिकी गणिका ॥ ४६३ ॥

हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ॥ ४६४ ॥ अ० ४ । ४ । १५ ॥

हरने अर्थ में उत्संगादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—उत्सङ्गेन हरति औत्सङ्गिकः; औडुपिकः इत्यादि ॥ ४६४ ॥

विभाषा विवधात् ॥ ४६५ ॥ अ० ४ । ४ । १७ ॥

इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा इसलिये है कि ष्ठन् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है।

हरने अर्थ में तृतीयासमर्थ विवध प्रातिपदिक से ष्ठन् प्रत्यय विकल्प करके होवे, पक्ष में ठक् हो। जैसे—विवधेन हरति विवधिकः, विवधिकी; वैवधिकः, वैवधिकी ॥४६५॥

वा०—वीवधाच्च ॥ ४६६ ॥

वीवध प्रातिपदिक से भी हरने अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे—वीवधेन हरति वीवधिकः, वीवधिकी; वैवधिकः, वैवधिकी।

इस वीवध शब्द को काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र में ही मिला दिया है। सो वार्त्तिक होने से सूत्र में मिलाना ठीक नहीं है। और ये दोनों शब्द एकार्थ हैं। शब्द के स्वरूप का ग्रहण होता है, इससे प्राप्त नहीं था ॥ ४६६ ॥

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ॥ ४६७ ॥ अ० ४ । ४ । १९ ॥

निर्वृत्त अर्थात् सिद्ध होने अर्थ में तृतीयासमर्थ अक्षद्यूतादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—अक्षद्यूतेन निर्वृत्तमाक्षद्यूतिकं वैरम्; जानुप्रहृतिकम्; काण्टकमर्द्दनिकम् इत्यादि ॥ ४६७ ॥

---

* यहां ठक् प्रत्यय के अधिकार में किन्हीं प्रातिपदिकों में विभक्ति के सकार को संहिता में षत्व होजाता है, और किन्हीं प्रत्ययों में ङीष् होने के लिये षित् किया है। इससे संदेह होता है कि किन प्रत्ययों में औपदेशिक षत्व और किन में विभक्ति का है। इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह कारिका है॥

क्त्रेर्मम्नित्यम् ॥ ४६८ ॥ अ० ४ । ४ । २० ॥

क्त्रि प्रत्ययान्त तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से निर्वृत्त अर्थ में मप् प्रत्यय नित्य ही होवे। अर्थात् अधिकार के विकल्प से वाक्य प्राप्त है, सो भी न रहे। जैसे—पक्त्रिमा यवागूः, उप्त्रिमं बीजम्, कृत्रिमः संसारः इत्यादि ॥ ४६८ ॥

वा०—भाव इति प्रकृत्य इमब्वक्तव्यः ॥ ४६९ ॥

भाववाची प्रातिपदिकों से इमप् प्रत्यय कहना चाहिये।

ऐसा वार्त्तिक करने से सूत्र का भी कुछ प्रयोजन नहीं है, क्योंकि कुट्टिमा भूमिः, सेकिमोऽसिः, इत्यादि उदाहरण सूत्र से सिद्ध नहीं हो सकते ॥ ४६९ ॥

संसृष्टे ॥ ४७० ॥ अ० ४ । ४ । २२ ॥

मिलाने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—दध्ना संसृष्टं दाधिकम्; ताक्रिकम्; मारिचिकम्; शार्ङ्गवेरिकम्; पैप्पलिकम्; दौग्धिकी यवागूः; गौडिका गोधूमाः इत्यादि ॥ ४७० ॥

व्यञ्जनैरुपसिक्ते ॥ ४७१ ॥ अ० ४ । ४ । २६ ॥

उपसिक्त अर्थात् सीचने अर्थ में व्यञ्जनवाची तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे-दध्नोपसिक्तं दाधिकम्; ताक्रिकम्; गौडिकम्; पायसिकम्; मारिचिकम् इत्यादि।

'व्यञ्जनवाचियों' का ग्रहण इसलिये है कि—उदकेनोपसिक्तं शाकम्, यहां प्रत्यय न हो ॥ ४७१ ॥

तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् ॥ ४७२ ॥ अ० ४ । ४ । २८ ॥

वर्त्तने अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रति तथा अनु ये जिनके पूर्व हों, ऐसे ईप लोम और कूल प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—प्रतीपं वर्त्तते प्रातीपिकः; आन्वीपिकः; प्रतिलोमं वर्त्तते प्रातिलोमिकः; आनुलोमिकः; प्रतिकूलं वर्त्तते प्रातिकूलिकः; आनुकूलिकः ॥४७२॥

प्रयच्छति गर्ह्यम् ॥ ४७३ ॥ अ० ४ । ४ । ३० ॥

प्रयच्छति अर्थात् देने अर्थ में, जो पदार्थ दिया जाय सो निन्दित हो, तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो ॥ ४७३ ॥

वा०—मेस्याल्लोपो वा ॥ ४७४ ॥

प्रत्यय उत्पन्न होते समय मे, स्यात् इन दो पदों का विकल्प करके लोप होजावे।

विकल्प इसलिये है कि वाक्य भी बना रहे। जैसे—द्विगुणं मे स्यादिति प्रयच्छति द्वैगुणिकः; त्रैगुणिकः ॥ ४७४ ॥

वा०—वृद्धेर्वृधुषिभावः ॥ ४७५ ॥

यहां मे, स्यात् इन दो पदों की अनुवृत्ति चली आती है।

वृद्धि शब्द को वृधुषि आदेश और ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—वृद्धिमें स्यादिति धनं प्रयच्छति वार्धुषिकः ॥ ४७५ ॥

उञ्छति ॥ ४७६ ॥ अ० ४ । ४ । ३२ ॥

उञ्छने अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—बदराण्युञ्छति बादरिकः; श्यामाकिकः; गोधूमानुञ्छति गौधूमिकः; काणिकः इत्यादि ॥ ४७६ ॥

रक्षति ॥ ४७७ ॥ अ० ४ । ४ । ३३ ॥

रक्षा अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—ग्रामं रक्षति ग्रामिकः; समाजं रक्षति सामाजिकः; गोमण्डलं रक्षति गौमण्डलिकः; कुटुम्बं रक्षति कौटुम्बिकः; नगरं रक्षति नागरिकः इत्यादि ॥ ४७७ ॥

पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति ॥ ४७८ ॥ अ० ४ । ४ । ३५ ॥

मारने अर्थ में द्वितीयासमर्थ पक्षि मत्स्य और मृगवाची प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—[पक्षि—] पक्षिणो हन्ति पाक्षिकः; खैचरिकः; शाकुनिकः; शुकान् हन्ति शौकिकः; वाकिकः; मायूरिकः; तैत्तिरिकः। मत्स्य—मात्स्यिकः; मैनिकः; शाफरिकः; शाकुलिकः। मृग—मार्गिकः; हारिणिकः; सौकरिकः; सारङ्गिकः * ॥ ४७८ ॥

परिपन्थञ्च तिष्ठति ॥ ४७९ ॥ अ० ४ । ४ । ३६ ॥

स्थिति और मारने अर्थ में द्वितीयासमर्थ परिपन्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे-परिपन्थं तिष्ठति पारिपन्थिको दस्युः; परिपन्थं हन्ति पारिपन्थिक उत्कोचकः ॥४७९॥

माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति ॥ ४८० ॥ अ० ४ । ४ । ३७ ॥

इस सूत्र में माथ शब्द मार्ग का पर्य्यायवाची है।

शोधने और ज्ञात गमन प्राप्ति अर्थों में पदवी अनुपद और माथ शब्द जिनके उत्तरपद में हो, ऐसे प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—विद्यामाथं धावति वैद्यामाथिकः; धार्ममाथिकः; दाण्डमाथिकः इत्यादि। पदवीं धावति पादविकः; आनुपदिकः ॥ ४८० ॥

* यहां शब्दों के स्वरूप का ग्रहण इसलिये नहीं होता कि (स्वरूपं०) इस पर वार्तिक पढ़ा है कि ऐसा संकेत करना चाहिये कि जिससे पक्षी मृग और मत्स्य इनके पर्यायवाची और विशेषवाचियों का भी ग्रहण हो जावे ॥

पदोत्तरपदं गृह्णाति ॥ ४८१ ॥ अ० ४ । ४ । ३९ ॥

ग्रहण करने अर्थ में पद शब्द जिनके उत्तरपद में हो, उन द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—पूर्वपदं गृह्णाति पौर्वपदिकः; औत्तरपदिकः इत्यादि ॥४८१॥

धर्मं चरति ॥ ४८२ ॥ अ० ४ । ४ । ४१ ॥

आचरण अर्थ में द्वितीयासमर्थ धर्म प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—धर्मं चरति धार्मिकः ॥ ४८२ ॥

वा०—अधर्माच्च ॥ ४८३ ॥

आचरण अर्थ में अधर्म शब्द से भी ठक् हो। जैसे—अधर्मं चरति आधर्मिकः ॥४८३॥

समवायान्त्समवैति ॥ ४८४ ॥ अ० ४ । ४ । ४३ ॥

यहां बहुवचन निर्देश से समवायवाची शब्दों का ग्रहण होता है।

प्राप्त होने अर्थ में द्वितीयासमर्थ समवायवाची प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—समवायान् समवैति सामवायिकः; सामाजिकः; सामूहिकः; साङ्घिकः इत्यादि ॥ ४८४ ॥

संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति ॥४८५॥ अ० ४ । ४ । ४६ ॥

देखने अर्थ में संज्ञा वाच्य रहे, तो द्वितीयासमर्थ ललाट और कुक्कुटी प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—ललाटं पश्यति लालाटिको भृत्यः +; कुक्कुटीं पश्यति कौक्कुटिको भिक्षुकः ॥ ४८५ ॥

तस्य धर्म्यम् ॥ ४८६ ॥ अ० ४ । ४ । ४७ ॥

जो कार्य धर्म का विरोधी न हो उसको धर्म्य कहते हैं।

षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से धर्म्य अर्थ में ठक् प्रत्यय हो। जैसे—हाटकस्य धर्म्यं हाटकिकम्; आकरिकम्; आपणिकम् इत्यादि ॥ ४८६ ॥

ऋतोऽञ् ॥ ४८७ ॥ अ० ४ । ४ । ४९ ॥

धर्म्य अर्थ में षष्ठीसमर्थ ऋकारान्त प्रातिपदिक से अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—होतुर्धर्म्यं हौत्रम्; पौत्रम्; दौहित्रम्; स्वास्त्रम् इत्यादि ॥ ४८७ ॥

+ लालाटिक उस सेवक को कहते हैं कि जो अच्छे प्रकार काम न करे, बैठा २ मालिक का मुख देखा करे ॥

वा०—नृनराभ्यामञ्वचनम् * ॥ ४८८ ॥

नृ और नर शब्द से भी अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—नुर्धर्म्या नारी; एवं नरस्यापि नारी ॥ ४८८ ॥

वा०—विशसितुरिड्लोपश्च ॥ ४८९ ॥

विशसितृ शब्द से अञ् प्रत्यय और प्रत्यय के परे इट् का लोप होवे। जैसे—विशसितुर्धर्म्यं वैशस्त्रम् ॥ ४८९ ॥

वा० विभाजयितुर्णिलोपश्च ॥ ४९० ॥

विभाजयितृ शब्द से अञ् प्रत्यय और उस प्रत्यय के परे णिच् का लोप भी होवे। जैसे—विभाजयितुर्धर्म्यं वैभाजित्रम् ॥ ४९० ॥

अवक्रयः ॥ ४९१ ॥ अ० ४। ४। ५०।

अवक्रय अर्थात् खरीदने और बेचने अर्थ में षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—गोशालाया अवक्रयो गौशालिकः; आकरिकः; आपणिकः; हाटकिकः इत्यादि ॥ ४९१ ॥

तदस्य पण्यम् ॥ ४९२ ॥ अ० ४। ४ ५१ ॥

पण्यसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—सुवर्णं पण्यमस्य सौवर्णिकः; अपूपाः पण्यमस्य आपूपिकः; शाष्कुलिकः; ओषधयः पण्यमस्य औषधिकः; मुक्ताः पण्यमस्य मौक्तिकः इत्यादि ॥ ४९२ ॥

शिल्पम् ॥ ४९३ ॥ अ० ४। ४। ५५ ॥

शिल्प शब्द क्रिया की कुशलता अर्थ में वर्त्तमान है। शिल्पसमानाधिकरण प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः ‡; पाणविकः; वीणावादनं शिल्पमस्य वैणिकः इत्यादि ॥ ४९३ ॥

प्रहरणम् ॥ ४९४ ॥ अ० ४। ४। ५७ ॥

---

* नृ शब्द के ऋकारान्त होने से सूत्र से ही अञ् प्रत्यय हो जाता, फिर इसका वार्त्तिक में दृष्टान्त के लिये ग्रहण किया है, जैसे नृ शब्द से अञ् होकर नारी बनता है, वैसे नर शब्द से भी जानो ॥

‡ यहां वाक्य में महाभाष्यकार ने उत्तरपद का लोप इसलिये माना है कि मार्दङ्गिक शब्द से मृदङ्ग बजाने वाले का ही ग्रहण होवे। और मृदङ्ग रचने वाला कुम्हार तथा चाम आदि से मढ़ने वाले की भी कारीगरी उसमें होती है, परन्तु लोक में मार्दङ्गिक शब्द से उसका बजाने वाला ही लिया जाता है। और ऐसा ही वाक्यार्थ सब प्रयोगों में जानो ॥

प्रहरण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय हो। जैसे—आग्नेयास्त्रं प्रहरणमस्य आग्नेयास्त्रिकः; शतघ्नी प्रहरणमस्य शातघ्निकः; भौशुण्डिकः; असिः प्रहरणमस्य आसिकः; चाक्रिकः; धानुष्कः; दाण्डिकः इत्यादि ॥ ४६४ ॥

शक्तियष्ट्योरीकक् ॥ ४६५ ॥ अ० ४ । ४ । ५९ ॥

प्रहरण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ शक्ति और यष्टि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ईकक् प्रत्यय होवे। जैसे—शक्तिः प्रहरणमस्य शाक्तीकः; याष्टीकः ॥ ४६५ ॥

अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ॥ ४६६ ॥ अ० ४ । ४ । ६० ॥

अस्ति नास्ति और दिष्ट इन मति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—अस्तीति मतिरस्य स आस्तिकः ||||; नास्तीति मतिरस्य स नास्तिकः; दिष्टमिति मतिरस्य स दैष्टिकः ॥ ४६६ ॥

शीलम् ॥ ४६७ ॥ अ० ४ । ४ । ६१ ॥

शील समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय हो। जैसे—अपूपा भक्षणं शीलमस्य स आपूपिकः; शाष्कुलिकः ×; दौग्धिकः; मौदकिकः; औदनिकः; साक्तुकः इत्यादि ॥ ४६७ ॥

छत्रादिभ्यो णः ॥ ४६८ ॥ अ० ४ । ४ । ६२ ॥

शील समानाधिकरण प्रथमासमर्थ छत्र आदि गणपठित प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ण प्रत्यय होवे। ठक् प्राप्त है उसका बाधक है। छत्र शब्द मुख्य करके छाता का नाम है ॥ ४६८ ॥

भा०—किं यस्य छत्रधारणं शीलं स छात्रः ? किञ्चातः ? राजपुरुषे प्राप्नोति। एवं तर्ह्युत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः। छत्रमिवच्छत्रम्, गुरुश्छत्रम्, गुरुणा शिष्यश्छत्रवच्छाद्यः। शिष्येण गुरुश्छत्रवत्परिपाल्यः ॥ ४६९ ॥

|||| यहां वाक्यार्थ में इति शब्द से उत्तरपद का लोप समझना चाहिये। क्योंकि ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म और शुभाशुभ कर्मों का फल आदि है, ऐसी बुद्धि जिस पुरुष की हो वह आस्तिक, और इसके विरुद्ध नास्तिक समझा जावे। और जो इति शब्द का लोप न समझे तो जिस चोर आदि में अधिक बुद्धि हो वह भी आस्तिक और बुद्धि से रहित जड़ पदार्थ भी नास्तिक कहावें ॥

× यहां भी भक्षण उत्तरपद का लोप समझना चाहिये। क्योंकि पूड़ी आदि बनाने वालों के नाम शाष्कुलिक आदि न हो जावें। लोक में इन पदार्थों के खाने वाले ही इन नामों से समझे जाते हैं ॥

लोक में परम्परा से छात्र शब्द विद्यार्थी का वाची है। इसलिये महाभाष्यकार ने इस विषय का स्पष्ट व्याख्यान कर दिया कि—छत्र शब्द से यहां गुरु उपमेय है। अर्थात् शिष्य के अज्ञानरूपी अन्धकार को गुरु निवारण करता है, इसलिये छत्र है। जैसे घाम आदि से अपनी रक्षा करनेहारे छाता को यत्न से रखते हैं, वैसे ही अपने सेवन से गुरु की रक्षा करनेवाला पुरुष छात्र कहाता है। और जैसे छाता घाम आदि से होनेवाले दुःखों का निवारण करता है, वैसे ही गुरु भी मूर्खता आदि से होनेवाले दुःखों को नष्ट करता है। [जैसे—] छत्रं गुरुस्तत्सेवनशीलमस्य स छात्रः, कन्या चेच्छात्रा; बुभुक्षा शीलमस्य स बौभुक्षः इत्यादि।

इस सूत्र पर जयादित्य भट्टोजिदीक्षितादि कहते हैं कि—गुरु के जो दुष्ट कर्म्म हैं, उनके आच्छादन करने का स्वभाववाला शिष्य छात्र कहाता है। इस व्याख्यान को बुद्धिमान् वैयाकरण विचारें कि महाभाष्य से कितना विरोध आता है। इस सूत्र के व्याख्यान से ऐसा अनुमान होता है कि जयादित्य भट्टोजिदीक्षितादि लोग महापातकी होंगे ॥ ४९९ ॥

हितं भक्षाः ॥ ५०० ॥ अ० ४ । ४ । ६५ ॥

यहां भक्ष शब्द में बहुवचननिर्देश से भक्षवाचियों का ग्रहण होता है। हित शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति होती, और पूर्व से यहां षष्ठ्यर्थ की अनुवृत्ति आती है, इसलिये उस षष्ठी का विपरिणाम चतुर्थी समझनी चाहिये।

हित समानाधिकरण प्रथमासमर्थ भक्षवाची प्रातिपदिकों से चतुर्थी के अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—ओदना हितमस्मै औदनिकः; अपूपा हितमस्मै आपूपिकः; शाष्कुलिकः; मौदकिकः इत्यादि ॥ ५०० ॥

तदस्मै दीयते नियुक्तम् ॥ ५०१ ॥ अ० ४ । ४ । ६६ ॥

निरन्तर देने अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—अग्रासनमस्मै दीयते आग्रासनिकः; आग्रभोजनिकः; अपूपा अस्मै दीयन्त इत्यापूपिकः; मौदकिकः इत्यादि ॥ ५०१ ॥

तत्र नियुक्तः ॥ ५०२ ॥ अ० ४ । ४ । ६९ ॥

नियत करने अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—पाकशालायां नियुक्तः पाकशालिकः; शौल्कशालिकः; हाटकिकः; आपणिकः; धर्मोपदेशे नियुक्तो धार्मोपदेशिकः; वैद्याध्ययनिकः; शास्त्राध्यापनिकः; यन्त्रालये नियुक्तो यान्त्रालयिकः इत्यादि ॥ ५०२ ॥

अगारान्ताट्ठन् ॥ ५०३ ॥ अ० ४ । ४ । ७० ॥

यहां पूर्वसूत्र से ठक् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है।

नियत करने अर्थ में सप्तमीसमर्थ अगारान्त प्रातिपदिक से ठन् प्रत्यय हो। जैसे—धनागारे नियुक्तो धनागारिकः; शस्त्रागारिकः, अश्वागारिकः; पुस्तकागारिकः इत्यादि ॥ ५०३ ॥

अध्यायिन्यदेशकालात् ॥ ५०४ ॥ अ० ४ । ४ । ७१ ॥

जिन देश और कालों में पढ़ने का निषेध है, उन प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—श्मशानेऽधीते श्माशानिकः; शौद्रसान्निधिकः; सन्धिवेलायामधीते सान्धिवेलिकः; अष्टम्यामधीते आष्टमिकः; चातुर्दशिकः; पौर्णमासिकः इत्यादि ॥ ५०४ ॥

कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति ॥५०५॥ अ० ४ । ४ । ७२ ॥

व्यवहार करने अर्थ में कठिनान्त प्रस्तार और संस्थान प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—कुलकठिने व्यवहरति कौलकठिनिकः; कौटुम्बकठिनिकः; प्रस्तारे व्यवहरति प्रास्तारिकः; सांस्थानिकः इत्यादि ॥ ५०५ ॥

निकटे वसति ॥ ५०६ ॥ अ० ४ । ४ । ७३ ॥

वसने अर्थ में सप्तमीसमर्थ निकट प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—निकटे वसति नैकटिकः ॥ ५०६ ॥

प्राग्घिताद्यत् ॥ ५०७ ॥ अ० ४ । ४ । ७५ ॥

प्रथम ठक् प्रत्यय का अधिकार कर आये हैं, उसकी समाप्ति यहां से समझनी चाहिये। क्योंकि वहति शब्द अगले सूत्र में है, उस अधिकार के रहते ही दूसरा अधिकार यत् प्रत्यय का करते हैं, इसका दृष्टान्त भी पूर्व दे चुके हैं।

यहां से ले के (तस्मै हितम्) इस अधिकार के पूर्व २ जो २ अर्थ कहेंगे, उन २ में सामान्य करके यत् प्रत्यय का अधिकार समझना चाहिये। जैसे—रथं वहति रथ्यः; युग्यः इत्यादि ॥ ५०७ ॥

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ॥ ५०८ ॥ अ० ४ । ४ । ७६ ॥

ले चलने अर्थ में द्वितीयासमर्थ रथ युग और प्रासङ्ग प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होवे। जैसे—रथं वहति रथ्यः; युग्यः; प्रासङ्ग्यः।

रथ शब्द से सम्बन्धसामान्य शेष अर्थ में भी यत् प्रत्यय होता है। [जैसे—] रथं वहति रथ्यः; रथस्य वोढा रथ्यः। यहां प्रयोग और अर्थ में कुछ भी भेद नहीं है, फिर दोनों जगह करने का प्रयोजन यह है कि जब तदन्तविधि मान के द्विगुसंज्ञक रथ शब्द से प्रत्यय करेंगे, तब शेष अर्थ में प्राग्दीव्यतीय होने से (द्विगोर्लु०) इससे प्रत्यय का

लुक् हो जावेगा। जैसे द्वयोर्रथयोर्वोढा द्विरथः। और जब द्वौ रथौ वहति, ऐसा विग्रह करें, तब द्विरथ्यः ऐसा प्रयोग होगा।

इसी प्रकार हल और सीर शब्दों से भी दोनों जगह एक ही प्रत्यय कहा है, उसका भी यही प्रयोजन है ॥ ५०८ ॥

संज्ञायां जन्याः ॥ ५०९ ॥ अ० ४ । ४ । ८२ ॥

ले जाने अर्थ में बधूवाची द्वितीयासमर्थ जनी प्रातिपदिक से संज्ञा वाच्य रहे, तो यत् प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—जनीं वधूं वहन्ति ते जन्याः। विवाह के समय जो बरात जाती है, उसको जन्या कहते हैं ॥ ५०९ ॥

विध्यत्यधनुषा ॥ ५१० ॥ अ० ४ । ४ । ८३ ॥

वेधने अर्थ में धनुष् करण न हो, तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होवे। जैसे—पादौ विध्यति पद्या दूर्वा; कण्ठं विध्यति कण्ठ्यो रसः।

यहां 'धनुष् का निषेध' इसलिये है कि—धनुषा विध्यति; शत्रुं विध्यति, यहां उभयत्र प्रत्यय न होवे ॥ ५१० ॥

धनगणं लब्धा ॥ ५११ ॥ अ० ४ । ४ । ८४ ॥

लाभ होने का कर्त्ता वाच्य रहे, तो द्वितीयासमर्थ धन और गण शब्दों से यत् प्रत्यय होवे। जैसे—धनं लब्धा धन्यः; गणं लब्धा गण्यः ॥ ५११ ॥

गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः ॥ ५१२ ॥ अ० ४ । ४ । ९० ॥

यहां पूर्वसूत्र से संज्ञा की अनुवृत्ति आती है। संयुक्त अर्थ में तृतीयासमर्थ गृहपति प्रातिपदिक से संज्ञा अभिधेय हो, तो ञ्य प्रत्यय होवे। जैसे—गृहपतिना संयुक्तो गार्हपत्यः।

यहां 'संज्ञा' ग्रहण इसलिये है कि—'गार्हपत्य' दक्षिणाग्नि का नाम न होजावे ॥५१२॥

नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्य्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्य-समसमितसम्मितेषु ॥ ५१३ ॥ अ० ४ । ४ । ९१ ॥

तृतीयासमर्थ नौ आदि प्रातिपदिकों से तार्य आदि अर्थों में यथासंख्य करके यत् प्रत्यय होवे। जैसे—नौ शब्द से तैरने अर्थ में—नावा तार्यं नाव्यम्; वयस शब्द से तुल्य अर्थ में—वयसा तुल्यं वयस्यं मित्रम्; धर्म्म शब्द से प्राप्त होने योग्य अर्थ में—धर्मेण प्राप्यो धर्म्योऽपवर्गः; विषशब्द से मारने योग्य अर्थ में—विषेण वध्यो विष्यः पापी; मूल शब्द से नमाने अर्थ में—मूलेनानाम्यं मूल्यम्; दूसरे मूल शब्द से सम अर्थ में—मूलेन समो मूल्यो घटः; सीताशब्द से चौकस करने अर्थ में—सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम्; तुला शब्द से तोलने अर्थ में—तुलया सम्मितं तुल्यं धान्यम् ॥ ५१३ ॥

धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ॥ ५१४ ॥ अ० ४ । ४ । ६२ ॥

अनपेत अर्थात् युक्त अर्थ में पञ्चमीसमर्थ पथिन् अर्थ और न्याय प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होता है। जैसे—धर्मादनपेतं धर्म्यम्; पथोऽनपेतं पथ्यम्; अर्थ्यम्; न्याय्यम् ॥५१४॥

छन्दसो निर्मिते ॥ ५१५ ॥ अ० ४ । ४ । ९३ ॥

निर्माण अर्थ में तृतीयासमर्थ छन्दस् प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो। जैसे—छन्दसा निर्मितः छन्दस्यः, यहां छन्दश्शब्द इच्छा का पर्यायवाची है ॥ ५१५ ॥

उरसोऽण् च ॥ ५१६ ॥ अ० ४ । ४ । ९४ ॥

निर्मित अर्थ में तृतीयासमर्थ उरस् शब्द से अण् और चकार से यत् प्रत्यय भी हो। जैसे—उरसा निर्मितः औरसः; उरस्यः पुत्रः ॥ ५१६ ॥

हृदयस्य प्रियः ॥ ५१७ ॥ अ० ४ । ४ । ९५ ॥

प्रिय अर्थ में षष्ठीसमर्थ हृदय शब्द से यत् प्रत्यय हो। जैसे—हृदयस्य प्रियो हृद्यो धर्मः; हृद्यो देशः; हृद्या कन्या; हृद्यं वनम् * ॥ ५१७ ॥

तत्र साधुः ॥ ५१८ ॥ अ० ४ । ४ । ९८ ॥

साधु अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो। जैसे—सामसु साधुः सामन्यः; वेमन्यः; कर्मण्यः; शरण्यः। साधु प्रवीण वा योग्य का नाम है ॥ ५१८ ॥

सभाया यः ॥ ५१९ ॥ अ० ४ । ४ । १०५ ॥

साधु अर्थ में सप्तमीसमर्थ सभा शब्द से य प्रत्यय हो। जैसे—सभायां साधुः सभ्यः, यहां य और यत् में स्वर का भेद है, उदाहरण का नहीं ॥ ५१९ ॥

ढश्छन्दसि ॥ ५२० ॥ अ० ४ । ४ । १०६ ॥

साधु अर्थ में जो वेदविषय हो, तो सभा शब्द से ढ प्रत्यय हो। जैसे—सभेयोऽस्य युवा यजमानस्य वीरो जायताम् ॥ ५२० ॥

समानतीर्थे वासी ॥ ५२१ ॥ अ० ४ । ४ । १०७ ॥

वसने अर्थ में सप्तमीसमर्थ समानतीर्थ शब्द से यत् प्रत्यय हो ॥ ५२१ ॥

तीर्थे ये ॥ ५२२ ॥ अ० ६ । ३ । ८७ ॥

* यहां सर्वत्र हृदय शब्द को (हृदयस्य हृल्लेख०) इस सूत्र से हृत् आदेश हो जाता है ॥

तीर्थ उत्तरपद परे हो, तो समान शब्द को स आदेश होवे। जैसे—समाने तीर्थे वसति सतीर्थ्यो ब्रह्मचारी * ॥ ५२२ ॥

समानोदरे शयित ओ चोदात्तः ॥५२३॥ अ० ४ । ४ । १०८ ॥

सोने अर्थ में सप्तमीसमर्थ समानोदर शब्द से यत् प्रत्यय और समानोदर के ओकार को उदात्त हो। [जैसे—] समान उदरे शयितः समानोदर्य्यो भ्राता ॥ ५२३ ॥

सोदराद्यः ॥ ५२४ ॥ अ० ४ । ४ । १०९ ॥

सोने अर्थ में सप्तमीसमर्थ सोदर शब्द से यत् प्रत्यय हो ॥ ५२४ ॥

विभाषोदरे ॥ ५२५ ॥ अ० ६ । ३ । ८८ ॥

उदर शब्द के परे यत् प्रत्यय हो, तो समान शब्द को विकल्प करके स आदेश होवे। जैसे—समानोदरे शयितः सोदर्यो भ्राता ‡ ॥ ५२५ ॥

भवे छन्दसि ॥ ५२६ ॥ अ० ४ । ४ । ११० ॥

भव अर्थ और वैदिक प्रयोगों में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो। यहां छन्द का अधिकार इस पाद की समाप्ति तक, और भवाधिकार (समुद्राभ्राद् घः) इससे पूर्व २ जानना चाहिये। यह अण् और घ आदि प्रत्ययों का अपवाद है। [जैसे—] मेघ्याय च विद्युत्याय च नमः इत्यादि ॥ ५२६ ॥

पूर्वैः कृतमिनियौ च ॥ ५२७ ॥ अ० ४ । ४ । १३३ ॥

कृत अर्थ में तृतीयासमर्थ पूर्व शब्द से इनि तथा य और चकार से ख प्रत्यय होवें। जैसे—पूर्वैः कृतं कर्म पूर्वि; पूर्व्यम्; पूर्वीणम् ॥ ५२७ ॥

अद्भिः संस्कृतम् ॥ ५२८ ॥ अ० ४ । ४ । १३४ ॥

संस्कृत अर्थ में तृतीयासमर्थ अप् शब्द से यत् प्रत्यय हो। जैसे—अद्भिः संस्कृतम् अप्यं हविः ॥ ५२८ ॥

सोममर्हति यः ॥ ५२९ ॥ अ० ४ । ४ । १३७ ॥

योग्यता अर्थ में द्वितीयासमर्थ सोम शब्द से य प्रत्यय हो। [जैसे—] सोममर्हति सोम्यः ॥ ५२९ ॥

---

* यहां तीर्थ उसको कहते हैं जो संसार के दुःखों से पार कर देवे। सो पढ़ानेवाला आचार्य्य और वेदविद्या समझनी चाहिये। जिनका एक गुरु पढ़ानेहारा और वेद का पाठ साथ हो, वे सतीर्थ्य कहावें ॥

‡ समानोदर्य्य और सोदर्य्य उन भाइयों के नाम हैं कि जो एक माता के उदर से उत्पन्न हुए हों। और जिनकी माता दो और पिता एक होवे उनके ये नाम नहीं हो सकते हैं ॥

मये च ॥ ५३० ॥ अ० ४ । ४ । १३८ ॥

जिन २ अर्थों में मयट् प्रत्यय विधान किया है, उन २ अर्थों और उन्हीं समर्थ-विभक्तियों से सोम शब्द से य प्रत्यय हो । जैसे—सोमस्य विकारोऽवयवो वा सोम्यं मधु इत्यादि ॥ ५३० ॥

शिवशमरिष्टस्य करे ॥ ५३१ ॥ अ० ४ । ४ । १४३ ॥

करने अर्थ में शिव शम् और अरिष्ट शब्दों से तातिल् प्रत्यय हो । जैसे—शिवस्य करः शिवतातिः; शन्तातिः; अरिष्टतातिः ॥ ५३१ ॥

भावे च ॥ ५३२ ॥ अ० ४ । ४ । १४४ ॥

भावार्थ में भी शिव शम् और अरिष्ट प्रातिपदिकों से तातिल् प्रत्यय हो । जैसे—शिवस्य भावः शिवतातिः; शन्तातिः; अरिष्टतातिः ॥५३२॥—इति चतुर्थाध्यायः समाप्तः ॥

अथ पञ्चमाध्याय आरभ्यते—

प्राक्क्रीताच्छः ॥ ५३३ ॥ अ० ५ । १ । १ ॥

क्रीताधिकार से पूर्व २ छ प्रत्यय का अधिकार किया जाता है । यहां से आगे सामान्य करके सब अर्थों में छ प्रत्यय होगा । जैसे—घटाय हिता घटीया मृत्तिका इत्यादि ॥५३३॥

उगवादिभ्यो यत् ॥ ५३४ ॥ अ० ५ । १ । २ ॥

क्रीत से पूर्व २ जो अर्थ कहे हैं, उनमें उवर्णान्त और गवादि प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो । यह छ प्रत्यय का अपवाद है ।

[जैसे—] शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु; पिचव्यः कार्पासः; कमण्डलव्या मृत्तिका इत्यादि । गवादिकों से—गवे हितं गव्यम्; हविष्यम्; मेधायै हितं मेध्यम् इत्यादि ॥ ५३४ ॥

तस्मै हितम् ॥ ५३५ ॥ अ० ५ । १ । ५ ॥

हित नाम उपकारी का है, उस हित अर्थ में चतुर्थीसमर्थ प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हो । जैसे—रोगिणे हितं रोगीयमौषधम्; मात्रीयः पित्रीयो वा पुत्रः; वत्सेभ्यो हितो गोधुक् वत्सीयः; गर्गेभ्यो हितं गर्गीयं शास्त्रम् इत्यादि ॥ ५३५ ॥

शरीराऽवयवाद्यत् ॥ ५३६ ॥ अ० ५ । १ । ६ ॥

हित अर्थ में प्राणियों के अवयववाची प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो । यह सूत्र छ प्रत्यय का अपवाद है । [जैसे—] दन्तेभ्यो हितं दन्त्यं मञ्जनम्; कण्ठ्यो रसः; नाभ्यम्; नस्यम्; पद्यम्; मूर्द्धन्यः इत्यादि ॥ ५३६ ॥

आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः ॥ ५३७ ॥ अ० ५ । १ । ९ ॥

हित अर्थ में चतुर्थीसमर्थ आत्मन् विश्वजन और भोगोत्तरपद प्रातिपदिक से ख प्रत्यय हो। जैसे—आत्मने हितमात्मनीनम् *; विश्वजनेभ्यो हितं विश्वजनीनम्। भोगोत्तरपदों से—मातृभोगाय हितो मातृभोगीणः इत्यादि ॥ ५३७ ॥

वा०—पञ्चजनादुपसङ्ख्यानम् ॥ ५३८ ॥

पंचजन शब्द से भी ख प्रत्यय होवे। जैसे—पंचजनाय हितं पंचजनीनम् ॥ ५३८ ॥

वा०—सर्वजनाट्ठञ् खश्च ॥ ५३९ ॥

हित अर्थ में सर्वजन शब्द से ठञ् और ख प्रत्यय हों। जैसे—सर्वजनाय हितं सार्वजनिकम्; सर्वजनीनम् ॥ ५३९ ॥

वा०—महाजनाट्ठञ् नित्यम् ॥ ५४० ॥

महाजन शब्द से ठञ् प्रत्यय नित्य हो। जैसे—महाजनाय हितं माहाजनिकम् ‡ ॥५४०॥

वा०—राजाचार्याभ्यां तु नित्यम् ॥ ५४१ ॥

भोग शब्द जिनके उत्तरपद में हो, ऐसे राजन् और आचार्य्य शब्दों से ख प्रत्यय नित्य होवे। जैसे—राजभोगाय हितो राजभोगीनः ॥ ५४१ ॥

वा०—आचार्य्यादणत्वञ्च ॥ ५४२ ॥

आचार्य्य शब्द से परे णत्व न होवे। जैसे—आचार्य्यभोगीनः। यहां केवल राजन् और आचार्य्य शब्दों से ख नहीं होता, किन्तु वाक्य ही बना रहता है ॥ ५४२ ॥

सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ ॥ ५४३ ॥ अ० ५ । १ । १० ॥

हित अर्थ में चतुर्थीसमर्थ सर्व और पुरुष प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके ण और ढञ् प्रत्यय हों। जैसे—सर्वस्मै हितं सार्वम्; पुरुषाय हितं पौरुषेयम् ॥ ५४३ ॥

वा०—सर्वाण्णस्य वा वचनम् ॥ ५४४ ॥

सर्व शब्द से ण प्रत्यय विकल्प करके हो। जैसे—सर्वाय हितः सर्वीयः ॥ ५४४ ॥

---

* यहां (आत्माध्वानौ खे) इस सूत्र से ख प्रत्यय के परे नकारान्त आत्मन् शब्द को प्रकृतिभाव हो जाता है ॥

‡ यहां विश्वजन आदि शब्दों से कर्मधारय समास में और महाजन शब्द से तत्पुरुष समास में प्रत्ययविधान समझना चाहिये, और अन्य समास में छ प्रत्यय ही होगा। जैसे—विश्वजनीयम्; पञ्चजनीयम्; सर्वजनीयम्; महाजनीयम् ॥

वा०—पुरुषाद्वधविकारसमूहतेनकृतेषु ॥ ५४५ ॥

षष्ठीसमर्थ पुरुष शब्द से वध विकार और समूह अर्थों में तथा तृतीयासमर्थ से कृत अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो। जैसे—पौरुषेयो वधः, पौरुषेयो विकारः, पौरुषेयः समूहः, पौरुषेयो ग्रन्थः ॥ ५४५ ॥

तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ ॥ ५४६ ॥ अ० ५ । १ । १२ ॥

प्रकृति अर्थात् कारण जहां अभिधेय रहे, वहां चतुर्थीसमर्थ विकृतिवाची प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—अङ्गारेभ्यो हितानि काष्ठानि अङ्गारीयाणि काष्ठानि; प्राकारीया इष्टकाः; शङ्कव्यं दारु; पिचव्यः कार्पासः इत्यादि।

यहां 'तदर्थ' ग्रहण इसलिये है कि—यवानां धानाः; धानानां सक्तवः, यहां प्रत्यय न हो। 'विकृति' ग्रहण इसलिये है कि—उदकार्थः कूपः। 'प्रकृति' ग्रहण इसलिये है कि—असयर्था कोशी *, यहां छ प्रत्यय न हो ॥ ५४६ ॥

तदस्य तदस्मिन् स्यादिति + ॥ ५४७ ॥ अ० ५ । १ । १६ ॥

षष्ठ्यर्थ और सप्तम्यर्थ में स्यात् समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों। [जैसे—] प्राकारमासामिष्टकानां स्यादिति प्राकारीया इष्टकाः; प्रासादीयं दारु; प्राकारोऽस्मिन् देशे स्यात् प्राकारीयो देशः; प्रासादीया भूमिः इत्यादि।

प्रासादो देवदत्तस्य स्यात्, यहां प्रत्यय इसलिये नहीं होता कि यहां प्रकृति विकृति का प्रकरण है, देवदत्त प्रासाद का कारण नहीं है ॥ ५४७ ॥

प्राग्वतेष्ठञ् ॥ ५४८ ॥ अ० ५ । १ । १८ ॥

यह अधिकार सूत्र है। (तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः) इस सूत्र से पूर्व २ जो २ अर्थ कहें, उन २ में सामान्य से ठञ् प्रत्यय होगा। जैसे—चान्द्रायणं वर्त्तयति चान्द्रायणिकः इत्यादि ॥ ५४८ ॥

आर्हादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणाट्ठक् ॥ ५४६ ॥ अ० ५ । १ । १६ ॥

ठञ् अधिकार के अन्तर्गत यह ठक् प्रत्यय का अधिकार उसका बाधक किया है। (तदर्हति) इस सूत्र में जो अर्ह शब्द है; वहां तक ठक् प्रत्यय का अधिकार जानना चाहिये, परन्तु आङ् उपसर्ग यहां अभिविधि अर्थ में है। इसी से अर्ह अधिकार में भी ठक् होता है।

---

* यहां प्रकृतिग्रहण से उपादानकारण समझना चाहिये, क्योंकि विकृति शब्द इसीलिये पढ़ा है। तलवार का उपादानकारण लोहा है, और म्यान नहीं, इसी से यहां छ प्रत्यय नहीं होता ॥

+ इस सूत्र में स्यात् क्रिया सम्भावना अर्थ में है कि उसका वा उसमें जो होने का सम्भव हो, और इति शब्द विवक्षा के लिये है, कि उससे प्रत्ययार्थ विवक्षित हो ॥

गोपुच्छ संख्या और परिमाणवाचियों से ठक् का निषेध होने से सब अर्थों में ठञ् ही होता है। जैसे—गोपुच्छेन क्रीतं गोपुच्छिकम्। संख्या—षाष्टिकम्। परिमाण—प्रास्थिकम्; कौडविकम् इत्यादि ॥ ५४९ ॥

संख्याया अतिशदन्तायाः कन् ॥ ५५० ॥ अ० ५ । १ । २२ ॥

जिस संख्या के अन्त में ति और शत् शब्द न हों, उससे आर्हीय अर्थों में ठक् प्रत्यय हो। यह ठञ् का अपवाद है। जैसे—पञ्चभिः क्रीतः घटः पञ्चकः; बहुकः; गणकः।

यहां 'तिदन्त शदंत का निषेध' इसलिये है कि—साप्ततिकः; चत्वारिंशत्कः, यहां कन् प्रत्यय न होवे ॥ ५५० ॥

अर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम् ॥ ५५१ ॥ अ० ५ । १ । २८ ॥

जिस प्रातिपदिक के पूर्व अर्द्धयर्द्ध हो, उस और द्विगुसमास प्रातिपदिक से आर्हीय अर्थों में संज्ञाविषय को छोड़ के प्रत्यय का लुक् हो। जैसे– अर्द्धयर्द्धकंसेन क्रीतमद्ध्यर्द्धकंसम्; द्विकंसम्; त्रिकंसम्; अर्द्धयर्द्धशूर्पम्; द्विशूर्पम्; त्रिशूर्पम्।

यहां 'संज्ञा का निषेध' इसलिये है कि—पाञ्चलौहितिकम्; पाञ्चकपालिकम्, यहां लुक् न होवे ॥ ५५१ ॥

तेन क्रीतम् ॥ ५५२ ॥ अ० ५ । १ । ३७ ॥

ठञ् से लेके तेरह (१३) प्रत्यय हैं, उनका अर्थ और समर्थविभक्ति इसी सूत्र से जानना चाहिये।

क्रीत अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित ठञ् आदि प्रत्यय होवें। जैसे—सप्तत्या क्रीतं साप्ततिकम्; आशीतिकम्; नैष्किकम्; पाणिकम्; पादिकम्; माषिकम्; शत्यम्; शतिकम् इत्यादि * ॥ ५५२ ॥

तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ × ॥ ५५३ ॥ अ० ५ । १ । ३८ ॥

जो निमित्त अर्थ संयोग वा उत्पातसम्बन्धी होवे, तो षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—शतस्य निमित्तं संयोगः शत्यः; शतिकः; साहस्रः। शतस्य निमित्तमुत्पातः शत्यः; शतिकः; साहस्रः इत्यादि ॥ ५५३ ॥

---

* देवदत्तेन क्रीतम् इत्यादि वाक्यों में प्रत्यय इसलिये नहीं होता कि लोक में दैवदत्तिक आदि शब्दों से क्रीत अर्थ का बोध नहीं होता ॥

× अनुकूल वा प्रतिकूल प्राणी तथा अप्राणी के साथ सम्बन्ध होने को संयोग कहते हैं। और उत्पात उसको कहते हैं जो कोई अकस्मात् आश्चर्यरूप कार्य्य होवे, उससे किसी दूसरे कार्य्य का होना समझा जावे। जैसे पीली बिजुली चमके तो वायु अधिक चले इत्यादि। यह एक पदार्थ-विद्या की बात है ॥

वा०—तस्य निमित्तप्रकरणे वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसङ्ख्यानम् ॥ ५५४ ॥

शांति और कुपित होने अर्थ में वात पित्त और श्लेष्म शब्दों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—वातस्य शमनं कोपनं वा वातिकम्; पैत्तिकम्; श्लैष्मिकम् ॥ ५५४ ॥

वा०—सन्निपाताच्च ॥ ५५५ ॥

सन्निपात शब्द से भी शान्ति और कोप अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—सन्निपातस्य शमनं कोपनं वा सान्निपातिकम्।

ये दोनों वार्त्तिक अपूर्वविधायक हैं, क्योंकि इन शब्दों से ठक् प्रत्यय किसी सूत्र करके प्राप्त नहीं है ॥ ५५५ ॥

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ॥ ५५६ ॥ अ० ५ । १ । ४१ ॥

संयोग और उत्पातसम्बन्धी निमित्त अर्थ में षष्ठीसमर्थ सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिक से यथासंख्य करके अण् और अञ् प्रत्यय होवें। जैसे—सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा सार्वभौमः; पार्थिवो वा। यहां अनुशतिकादिगण में होने से सर्वभूमि शब्द को उभयपदवृद्धि होती है ॥ ५५६ ॥

तस्येश्वरः ॥ ५५७ ॥ अ० ५ । १ । ४२ ॥

षष्ठीसमर्थ सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिक से ईश्वर अर्थ में यथासंख्य करके अण् और अञ् प्रत्यय होवें। जैसे—सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः; पार्थिवो वा ॥ ५५७ ॥

तत्र विदित इति च ॥ ५५८ ॥ अ० ५ । १ । ४३ ॥

सप्तमीसमर्थ सर्वभूमि और पृथिवी शब्द से विदित नाम प्रसिद्धि अर्थ में अण् तथा अञ् प्रत्यय हों। जैसे—सर्वभूमौ विदितः सार्वभौमः; पार्थिवो वा ॥ ५५८ ॥

तस्य वापः ॥ ५५९ ॥ अ० ५ । १ । ४५ ॥

षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से खेत अर्थ वाच्य रहे, तो यथाविहित प्रत्यय हों। वाप कहते हैं खेत को, क्योंकि उसमें जौ आदि अन्न बोये जाते हैं। [जैसे—] प्रस्थस्य वापः क्षेत्रं प्रास्थिकम्; द्रौणिकम्; खारिकम् इत्यादि ॥ ५५९ ॥

तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते ॥५६०॥ अ० ५।१।४७॥

सप्तम्यर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों, जो वृद्धि आय लाभ शुल्क और उपदा ये अर्थ दीयते क्रिया के कर्मवाच्य होवें तो।

जो द्रव्य व्याज में देते हैं, उसको वृद्धि कहते हैं। ग्राम आदि में जो जमीदार का भाग होता है वह आय। जो दुकानदारी के व्यवहार में मूल वस्तु से अधिक द्रव्य की प्राप्ति है, उसको लाभ। राजा के भाग को शुल्क, और घूंस लेने को उपदा कहते हैं।

जैसे—पञ्चास्मिन् वृद्धिर्वा आयो वा लाभो वा उपदा वा दीयते पञ्चकः; सप्तकः; शत्यः; शतिकः; साहस्रः इत्यादि ॥ ५६० ॥

वा०—चतुर्थ्यर्थ उपसङ्ख्यानम् ॥ ५६१ ॥

वृद्धि आदि दीयते क्रिया के कर्मवाच्य हों, तो चतुर्थी के अर्थ में भी प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होवें। जैसे—पञ्चास्मै वृद्धिर्वा आयो वा लाभो वा उपदा वा दीयते पञ्चको देवदत्तः इत्यादि ॥ ५६१ ॥

तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः ॥५६२॥ अ० ५।१।५०॥

द्वितीयासमर्थ, वंश आदि गणपठित शब्दों से परे जो भार शब्द, तदन्त से हरति वहति और आवहति क्रियाओं के कर्त्ता अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—वंशभारं हरति वहति आवहति वा वांशभारिकः; कौटजभारिकः; बाल्वजभारिकः *।

यहां 'भार' ग्रहण इसलिये है कि—भारवंशं हरति, यहां न हो। और 'वंशादि' इसलिये है कि—व्रीहिभारं हरति, यहां भी प्रत्यय न हो ॥ ५६२ ॥

सम्भवत्यवहरति पचति ॥ ५६३ ॥ अ० ५ । १ । ५२ ॥

द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से संभव समाप्ति और पकाने अर्थों में यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—प्रस्थं सम्भवति अवहरति पचति वा प्रास्थिकः; कौडविकः; खारीकः; प्रत्यक्षमनुमानं शब्दो वा यं व्यवहारं प्रति सम्भवति स प्रात्यक्षिकः; आनुमानिकः; शाब्दिको वा व्यवहारः इत्यादि ॥ ५६३ ॥

वा०—तत्पचतीति द्रोणादण् च ॥ ५६४ ॥

द्वितीयासमर्थ द्रोण प्रातिपदिक से पकाने अर्थ में अण् और ठञ् प्रत्यय होवें। जैसे—द्रोणं पचति द्रौणी द्रौणिकी वा ब्राह्मणी ॥ ५६४ ॥

सोऽस्यांशवस्नभृतयः ॥ ५६५ ॥ अ० ५ । १ । ५६ ॥

अंश मूल्य और सेवन अर्थों में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—पञ्चांशा वस्नानि भृतयो वाऽस्य व्यापारस्य पञ्चकः; सप्तकः; साहस्रः इत्यादि ॥ ५६५ ॥

---

* इस सूत्र का दूसरा अर्थ यह भी होता है कि जो भाररूप वंशादि प्रातिपदिक हैं, उनसे ले चलने आदि अर्थों में यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—भारभूतान् वंशान् वहति वांशिकः; बाल्वजिकः इत्यादि ॥

तदस्य परिमाणम् ॥ ५६६ ॥ अ० ५ । १ । ५७ ॥

षष्ठ्यर्थ में परिमाणवाची प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—प्रस्थः परिमाणमस्य प्रास्थिको राशिः; खारीकः; शत्यः; शतिकः; साहस्रः; द्रौणिकः; कौडविकः; वर्षशतं परिमाणमस्य वार्षशतिकः; वार्षसहस्रिकः; षष्टिजीवितं परिमाणमस्य षाष्टिकः इत्यादि ॥ ५६६ ॥

सङ्ख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राऽध्ययनेषु ॥५६७॥ अ० ५ । १ । ५८॥

पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति यहां चली आती है।

संज्ञा सङ्घ सूत्र और अध्ययन अर्थों में परिमाणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में यथाप्राप्त प्रत्यय होवें ॥ ५६७ ॥

वा०—संज्ञायां स्वार्थे ॥ ५६८ ॥

संज्ञा अर्थ में कहे प्रत्यय स्वार्थ की संज्ञा में होवें। जैसे—पञ्चैव पञ्चकाः शकुनयः; त्रय एव त्रिकाः शालङ्कायनाः। सङ्घ अर्थ में—पञ्च परिमाणमस्य पञ्चकः सङ्घः; पञ्चका वृत्ताः; त्रिकः; अष्टको वा। सूत्र अर्थ में—अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य सूत्रस्य अष्टकं पाणिनीयं सूत्रम्; पञ्चको गौतमो न्यायः; द्वादशिका जैमिनीया मीमांसा; चतुष्कं व्यासीयं सूत्रम्; दशकं वैयाघ्रपदीयम्; त्रिकं काशकृत्स्नम्।

अध्यायों का समुदाय भी सङ्घ अर्थ में आ जाता है, फिर सूत्रग्रहण पृथक् इसलिये है कि—सङ्घ शब्द बहुधा प्राणियों के समुदाय में आता है। अध्ययन अर्थ में—पञ्चकोऽधीतः; सप्तकोऽधीतः; अष्टकः; नवकः इत्यादि ॥ ५६८ ॥

वा०—स्तोमे डविधिः पञ्चदशाद्यर्थः ॥ ५६९ ॥

स्तोमपरिमाणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ पञ्चदशादि प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ड प्रत्यय होवे। जैसे—पञ्चदश मन्त्राः परिमाणमस्य स्तोमस्य पञ्चदशः स्तोमः; सप्तदशः; एकविंशः इत्यादि ॥ ५६९ ॥

वा०—शन्शतोर्डिनिश्छन्दसि ॥ ५७० ॥

शन् और शत् जिनके अन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से वैदिकप्रयोग विषय में डिनि प्रत्यय हो। जैसे—पञ्चदश दिनानि परिमाणमेषां पञ्चदशिनोऽर्द्धमासाः; त्रिंशिनो मासाः ॥ ५७० ॥

वा०—विंशतेश्च ॥ ५७१ ॥

विंशति शब्द से भी डिनि प्रत्यय हो। जैसे—विंशतिः परिमाणमेषां विंशिनोऽङ्गिरसः ॥५७१॥

पंक्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् । ॥ ५७२ ॥ अ० ५ । १ । ५६ ॥

परिमाण अर्थ में पङ्क्ति आदि शब्द निपातन किये हैं। जो कुछ कार्य्य सूत्रों से सिद्ध नहीं होता, सो सब निपातन से सिद्ध जानना चाहिये। जैसे—पङ्क्ति शब्द में पञ्चन् शब्द के टि भाग का लोप और ति प्रत्यय किया है। पञ्च परिमाणमस्य तत् पंक्तिश्छन्दः।

दो दशत् शब्द को विन् आदेश और शतिच् प्रत्यय हो। जैसे—द्वौ दशतौ परिमाणमेषान्ते विंशतिः पुरुषाः। तीन दशत् शब्दों को त्रिन् आदेश और शत् प्रत्यय। जैसे—त्रयो दशतः परिमाणमेषान्ते त्रिंशत्। चार दशत् शब्दों को चत्वारिन् आदेश और शत् प्रत्यय। जैसे—चत्वारो दशतः परिमाणमेषां ते चत्वारिंशत्। पांच दशत् शब्दों को पञ्चा आदेश और शत् प्रत्यय। जैसे—पञ्च दशतः परिमाणमेषां ते पञ्चाशत्। छः दशत् शब्दों को षष आदेश और ति प्रत्यय। जैसे—षड् दशतः परिमाणमेषां ते षष्टिः।

सात दशत् शब्दों को सप्त आदेश और ति प्रत्यय। जैसे—सप्त दशतः परिमाणमेषां ते सप्ततिः। आठ दशत् शब्दों को अशी आदेश और ति प्रत्यय। जैसे—अष्टौ दशतः परिमाणमेषां ते अशीतिः। नव दशत् शब्दों को नव आदेश और ति प्रत्यय। जैसे—नव दशतः परिमाणमेषां ते नवतिः। और दश दशत् शब्दों को श आदेश और त प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—दश दशतः परिमाणमेषां ते शतम् ॥ ५७२ ॥

पञ्चद्दशतौ वर्गे वा ॥ ५७३ ॥ अ० ५ । १ । ६० ॥

यहां संख्यावाची पञ्च और दश शब्द से कन् प्राप्त है, उसका यह अपवाद है, और पक्ष में कन् भी होजाता है।

पञ्चत् और दशत् ये डति प्रत्ययान्त वर्ग और परिमाण अर्थ में विकल्प करके निपातन किये हैं। जैसे—पञ्च परिमाणमस्य पञ्चद्वर्गः; दशद्वर्गः; पञ्चको वर्गः; दशको वर्गः ॥५७३॥

तदर्हति ॥ ५७४ ॥ अ० ५ । १ । ६३ ॥

योग्यता अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—श्वेतच्छत्रमर्हति श्वेतच्छत्रिकः; वाससयुग्मिकः; शत्यः; शतिकः इत्यादि ॥ ५७४ ॥

यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ ॥ ५७५ ॥ अ० ५ । १ । ७१ ॥

यह सूत्र ठक् प्रत्यय का बाधक है।

योग्यता अर्थ में द्वितीयासमर्थ यज्ञ और ऋत्विज् प्रातिपदिक से यथासंख्य करके घ और खञ् प्रत्यय होवें। जैसे—यज्ञमर्हति यज्ञियः; ऋत्विजमर्हति स आर्त्विजीनो ब्राह्मणः ॥ ५७५ ॥

वा०—यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्माहतीत्युपसङ्ख्यानम् ॥ ५७६ ॥

यज्ञ और ऋत्विज् शब्द से उन कर्मों के करने योग्य अर्थों में उक्त प्रत्यय हों। यह वार्त्तिक सूत्र का शेष है, क्योंकि यह विशेष अर्थ सूत्र से नहीं आता है। [जैसे—] यज्ञकर्माहति यज्ञियो देशः; ऋत्विक्कर्माहति आर्त्विजीनं ब्राह्मणकुलम्।

अब यहां तक अर्ह अधिकार पूरा हुआ। इसी से ठक् प्रत्यय के अधिकार की समाप्ति जानो। अब यहां से आगे केवल ठञ् प्रत्यय का ही अधिकार चलेगा ॥ ५७६ ॥

पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति ॥५७७॥ अ० ५। १। ७२॥

द्वितीयासमर्थ पारायण तुरायण और चान्द्रायण प्रातिपदिक से वर्त्तन क्रिया का कर्त्ता वाच्य रहे, तो ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—पारायणं वर्त्तयति पारायणिकश्छात्रः; तुरायणं वर्त्तयति तौरायणिको यजमानः; चान्द्रायणं वर्त्तयति चान्द्रायणिको ब्राह्मणः ॥ ५७७ ॥

संशयमापन्नः ॥ ५७८ ॥ अ० ५। १। ७३ ॥

प्राप्त होने अर्थ में द्वितीयासमर्थ संशय प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—संशयमापन्नः सांशयिकश्चौरः ॥ ५७८ ॥

योजनं गच्छति ॥ ५७९ ॥ अ० ५। १। ७४ ॥

चलने अर्थ में द्वितीयासमर्थ योजन प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—योजनं गच्छति यौजनिकः ॥ ५७९ ॥

वा०—क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम् ॥ ५८० ॥

चलने अर्थ में द्वितीयासमर्थ क्रोशशत और योजनशत प्रातिपदिक से भी ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—क्रोशशतं गच्छति क्रौशशतिकः; यौजनशतिकः ॥ ५८० ॥

वा०—ततोऽभिगमनमर्हतीति च ॥ ५८१ ॥

यहां चकार से पूर्व वार्त्तिक की अनुवृत्ति आती है।

निरन्तर चलने अर्थ में पञ्चमीसमर्थ क्रोशशत और योजनशत शब्द से भी ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—क्रोशशतादभिगमनमर्हति क्रौशशतिको भिक्षुकः; यौजनशतिक आचार्यः ॥ ५८१ ॥

उत्तरपथेनाहृतं च ॥ ५८२ ॥ अ० ५। १। ७७ ॥

यहां चकार से गच्छति क्रिया की अनुवृत्ति आती है।

ग्रहण करने और चलने अर्थ में तृतीयासमर्थ उत्तरपथ प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—उत्तरपथेनाहृतमौत्तरपथिकम्; उत्तरपथेन गच्छति औत्तरपथिकः ॥५८२॥

वा०—आहृतप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तारपूर्वपदादुपसंख्यानम् ॥ ५८३ ॥

ले आने और चलने अर्थ में वारि जङ्गल स्थल और कान्तार शब्द जिसके पूर्व हों, ऐसे द्वितीयासमर्थ पथ प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—वारिपथेनाहृतं वारिपथिकम्; वारिपथेन गच्छति वारिपथिकः; जङ्गलपथेनाहृतं जाङ्गलपथिकम्; जङ्गलपथेन गच्छति जाङ्गलपथिकः; स्थलपथेनाहृतं स्थालपथिकम्; स्थलपथेन गच्छति स्थालपथिकः; कान्तारपथेनाहृतं कान्तारपथिकम्; कान्तारपथेन गच्छति कान्तारपथिकः ॥ ५८३ ॥

वा०—अजपथशङ्कुपथाभ्यां च ॥ ५८४ ॥

अजपथ और शङ्कुपथ शब्द से भी उक्त अर्थों में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—अजपथेनाहृतं गच्छति वा आजपथिकः; शङ्कुपथेनाहृतं गच्छति वा शाङ्कुपथिकः ॥ ५८४ ॥

वा०—मधुकमरिचयोरण् स्थलात् ॥ ५८५ ॥

मधुक और मरिच अभिधेय हों, तो स्थलशब्द से परे जो पथ प्रातिपदिक उससे ले आने अर्थ में अण् प्रत्यय होवे। जैसे—स्थलपथेनाहृतं स्थालपथं मधुकम्; स्थालपथं मरिचम् ॥ ५८५ ॥

कालात् ॥ ५८६ ॥ अ० ५ । १ । ७८ ॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे जो २ प्रत्यय विधान करें, सो २ सामान्य करके कालवाची प्रातिपदिक से जानो। जैसे—मासेन निर्वृत्तं कार्यं मासिकम्; आर्द्धमासिकम्; सांवत्सरिकम् इत्यादि ॥ ५८६ ॥

तेन निर्वृत्तम् ॥ ५८७ ॥ अ० ५ । १ । ७९ ॥

सिद्ध होने अर्थ में तृतीयासमर्थ कालवाची प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—मुहूर्त्तेन निर्वृत्तं भोजनं मौहूर्त्तिकम्; प्राहरिकम्; सप्ताहेन निर्वृत्तो विवादः साप्ताहिकः; पाक्षिकः; अह्ना निर्वृत्तमाह्निकम् इत्यादि ॥ ५८७ ॥

तमधीष्टो भृतो भूतो भावी ॥ ५८८ ॥ अ० ५ । १ । ८० ॥

अधीष्ट कहते हैं सत्कारपूर्वक ठहरने को; जो धन देकर खरीद लिया हो उस नौकर को भृत, भूत हो चुकने को, और भावी जो आगे होगा इसको समझना चाहिये। इन अधीष्ट आदि अर्थों में द्वितीयासमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय हो।

जैसे—मासमधीष्टो मासिक आचार्यः; पक्षम्भृतः पाक्षिकः कर्मकरः; सप्ताहभृतः साप्ताहिको व्याधिः; पौर्णमासीं भावी पौर्णमासिक उत्सवः इत्यादि ॥ ५८८ ॥

मासाद्वयसि यत्खञौ ॥ ५८९ ॥ अ० ५ । १ । ८१ ॥

यह सूत्र ठञ् प्रत्यय का अपवाद है। यहां अधीष्ट आदि अर्थों का अधिकार तो है, परन्तु योग्यता के न होने से एक भूत अर्थ ही लिया जाता है।

द्वितीयासमर्थ मास शब्द से अवस्था गम्यमान होवे, तो यत् और खञ् प्रत्यय हों। जैसे—मासं भूतो मास्यः, मासीनो वा शिशुः ॥ ५८९ ॥

तेन परिजय्यलभ्यकार्य्यसुकरम् ॥ ५९० ॥ अ० ५ । १ । ९३ ॥

जीत सकने, प्राप्त होने योग्य, और जो अच्छेप्रकार सिद्ध हो, इन अर्थों से तृतीयासमर्थ कालवाची प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे।

जैसे—पक्षेन परिजेतुं शक्यते पाक्षिकः सङ्ग्रामः; मासेन लभ्यं मासिकं धनम्; द्वादशाहेन कार्य्यं द्वादशाहिकं व्रतम्; वर्षेण सुकरो वार्षिकः प्रासादः ॥ ५९० ॥

तदस्य ब्रह्मचर्य्यम् ॥ ५९१ ॥ अ० ५ । १ । ९४ ॥

प्रथमासमर्थ कालवाची प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो, ब्रह्मचर्य्य वाच्य रहे तो। जैसे—षट्त्रिंशदब्दा अस्य ब्रह्मचर्य्यस्य षाट्त्रिंशदाब्दिकं ब्रह्मचर्य्यम्; अष्टादशाब्दिकम्; नवाब्दिकम्।

इस सूत्र में जयादित्य ने द्वितीया विभक्ति काल के अत्यन्त संयोग में मान के अर्थ किया है। सो सूत्र में तो काल के साथ अत्यन्त संयोग है ही नहीं, उदाहरण में हो सकता है। फिर सूत्र में द्वितीया क्यों कर हो सकती है। और द्वितीयासमर्थ विभक्ति मानने से प्रत्ययार्थ का सम्बन्ध ब्रह्मचारी के साथ होता है। सो ऋषि लोगों के अभिप्राय से विरुद्ध है। क्योंकि मनुस्मृति में 'षट्त्रिंशदाब्दिकम्' यह पद ब्रह्मचर्य्य का विशेषण रक्खा है। फिर इन लोगों का अर्थ आदर के योग्य नहीं है ॥ ५९१ ॥

वा०—महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्य उपसंख्यानम् ॥ ५९२ ॥

षष्ठीसमर्थ महानाम्नी आदि प्रातिपदिकों से सामान्य अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—महानाम्न्या इदम्पदं माहानामिकम्; गौदानिकम् इत्यादि ॥ ५९२ ॥

वा०—तच्चरतीति च ॥ ५९३ ॥

यहां चकार से पूर्व वार्त्तिक की अनुवृत्ति आती है। महानाम्नी नाम ऋचाओं का है, उनके सहचारी अनुष्ठान का ग्रहण तत् शब्द से समझना चाहिये।

द्वितीयासमर्थ महानाम्नी आदि प्रातिपदिकों से आचरण अर्थ में ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—महानाम्नीश्चरति माहानामिकः *; आदित्यव्रतिकः इत्यादि ॥ ५६३ ॥

वा०—अवान्तरदीक्षादिभ्यो डिनिः ॥ ५६४ ॥

द्वितीयासमर्थ अवान्तरदीक्षा आदि प्रातिपदिकों से आचरण अर्थ में डिनि प्रत्यय होवे। जैसे—अवान्तरदीक्षामाचरति अवान्तरदीक्षी; तिलव्रती इत्यादि ॥ ५६४ ॥

वा०—अष्टाचत्वारिंशतो ड्वुँश्च ॥ ५६५ ॥

यहां चरति क्रिया और डिनि प्रत्यय की अनुवृत्ति पूर्व वार्त्तिकों से आती है।

द्वितीयासमर्थ अष्टाचत्वारिंशत् प्रातिपदिक से आचरण अर्थ में ड्वुन् और डिनि प्रत्यय हों। जैसे—अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि व्रतमाचरति अष्टाचत्वारिंशकः, अष्टाचत्वारिंशी ॥ ५६५ ॥

वा०—चातुर्मास्यानां यलोपश्च ॥ ५६६ ॥

यहां भी पूर्व की सब अनुवृत्ति आती है।

द्वितीयासमर्थ चातुर्मास्य प्रातिपदिक से आचरण अर्थ में ड्वुन् और डिनि प्रत्यय होवें। जैसे—चातुर्मास्यानि व्रतान्याचरति चातुर्मासकः, चातुर्मासी ॥ ५६६ ॥

वा०—चतुर्मासाण्ण्यो यज्ञे तत्र भवे ॥ ५६७ ॥

सप्तमीसमर्थ चतुर्मास शब्द से भव अर्थ यज्ञ होवे, तो ण्य प्रत्यय हो। जैसे—चतुर्षु मासेषु भवाश्चातुर्मास्या यज्ञाः ॥ ५६७ ॥

वा०—संज्ञायामण् ॥ ५६८ ॥

भवार्थ संज्ञा अभिधेय हो, तो सप्तमीसमर्थ चतुर्मास आदि शब्दों से अण् प्रत्यय होवे। जैसे—चतुर्षु मासेषु भवा चातुर्मासी पौर्णमासी; आषाढी; कार्त्तिकी; फाल्गुनी; चैत्री इत्यादि ॥ ५६८ ॥

तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः ॥ ५६६ ॥ अ० ५ । १ । ६५ ॥

षष्ठीसमर्थ यज्ञवाची प्रातिपदिकों से दक्षिणा अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—अग्निष्टोमस्य दक्षिणा आग्निष्टोमिकी; आश्वमेधिकी; वाजपेयिकी; राजसूयिकी इत्यादि।

यहां 'आख्या' ग्रहण इसलिये है कि—इस कालाधिकार में कालसमानाधिकरण यज्ञों का ही ग्रहण न हो जावे ॥ ५६६ ॥

---

* यहां नाम्नी शब्द में (भस्याढे तद्धिते) इस वार्त्तिक से पुंवद्भाव होकर नान्त अङ्ग के टिभाग का लोप हो जाता है ॥

तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ ॥६००॥ अ० ५ । १ । ९८ ॥

यथाकथाच यह अव्ययशब्द अनादर अर्थ में आता है। और पूर्व सूत्र से 'दीयते' और 'कार्यम्' इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है।

तृतीयासमर्थ कथाकथाच और हस्त प्रातिपदिक से देने और करने अर्थों में ण और यत् प्रत्यय यथासंख्य करके हों। जैसे—यथाकथाच दीयते कार्य्यं वा याथाकथाचम्; हस्तेन दीयते कार्यं वा हस्त्यम् ॥ ६०० ॥

सम्पादनि ॥ ६०१ ॥ अ० ५ । १ । ९९ ॥

यहां पूर्व से तृतीयासमर्थ की अनुवृत्ति आती है।

अवश्य सिद्ध होनेवाला कर्त्ता वाच्य रहे, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—ब्रह्मचर्येण सम्पद्यते विद्या ब्राह्मचर्यिकी; उपकारेण सम्पद्यते औपकारिको धर्म्मः; धर्मेण सम्पद्यते धार्मिकं सुखम् इत्यादि ॥ ६०१ ॥

कर्म्मवेषाद्यत् ॥ ६०२ ॥ अ० ५ । १ । १०० ॥

सम्पन्न होने अर्थ में तृतीयासमर्थ कर्म्म और वेष प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो। यह ठञ् का अपवाद है। [जैसे—] कर्म्मणा सम्पद्यते कर्म्मण्यं शरीरम्; वेषेण सम्पद्यते वेष्यो नटः, वेष्या नटिनी।

यही वेष्या शब्द आज कल शकार से प्रवृत्त है, सो ठीक नहीं। क्योंकि जो अर्थ उनमें घट सकता है वह यही है। और विश प्रवेशने धातु से भी बन सकता है, परन्तु ठीक २ अर्थ गणिकाओं में नहीं घटता ॥ ६०२ ॥

तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः ॥ ६०३ ॥ अ० ५ । १ । १०१ ॥

चतुर्थीसमर्थ सन्ताप आदि गणपठित प्रातिपदिकों से प्रभव अर्थात् सामर्थ्यवान् अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—सन्तापाय प्रभवति सान्तापिकः; संग्रामाय प्रभवति सांग्रामिकः; प्रवासाय प्रभवति प्रावासिकः ॥ ६०३ ॥

समयस्तदस्य प्राप्तम् ॥ ६०४ ॥ अ० ५ । १ । १०४ ॥

प्राप्तसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ समय प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—समयः प्राप्तोऽस्य सामयिक उद्वाहः, सामयिकं वस्त्रम्, सामयिको योगाभ्यासः, सामयिकमौषधम् इत्यादि ॥ ६०४ ॥

छन्दसि घस् ॥ ६०५ ॥ अ० ५ । १ । १०६ ॥

यहां ऋतु शब्द से अण् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है।

प्राप्तसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ ऋतु प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में वैदिकप्रयोग-विषयक ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे—ऋतुः प्राप्तोऽस्य ऋत्वियः—अयन्ते योनिर्ऋत्वियः; यहां घस् प्रत्यय के सित् होने से भसंज्ञा होकर पदसंज्ञा का कार्य्य जशत्व नहीं होता ॥६०५॥

प्रयोजनम् ॥ ६०६ ॥ अ० ५ । १ । १०६ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—उपदेशः प्रयोजनमस्य औपदेशिकः; आध्यायनिकः; स्त्री प्रयोजनमस्य स्त्रैणः; पौंस्नः; धर्मः प्रयोजनमस्य धार्मिकः; वितण्डा प्रयोजनमस्य वैतण्डिकः; पारोक्षिकः इत्यादि ॥६०६॥

अनुप्रवचनादिभ्यः ॥ ६०७ ॥ अ० ५ । १ । १११ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ अनुप्रवचनादि गणपठित प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में छ प्रत्यय हो। ठञ् का अपवाद है। [जैसे—] अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य अनुप्रवचनीयम्; उत्थापनीयम्; अनुवासनीयम्; आरम्भणीयम् इत्यादि ॥ ६०७ ॥

वा०—विशिपूरिपतिरुहिपदिप्रकृतेरनात्सपूर्वपदादुपसंख्यानम् ॥६०८॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ विशि पूरि पति रुहि पदि इन ल्युट् प्रत्ययान्त धातुओं के प्रयोग जिनके अन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय होवे। जैसे—गृहप्रवेशनं प्रयोजनमस्य गृहप्रवेशनीयम्; प्रपापूरणीयम्; अश्वप्रपतनीयम्, प्रासादारोहणीयम्; गोप्रपदनं प्रयोजनमस्य गोप्रपदनीयम् ॥ ६०८ ॥

वा०—स्वर्गादिभ्यो यत् ॥ ६०९ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण स्वर्गादि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में यत् प्रत्यय हो। जैसे—स्वर्गः प्रयोजनमस्य स्वर्ग्यम्; यशस्यम्; आयुष्यम् इत्यादि ॥ ६०९ ॥

वा०—पुण्याहवाचनादिभ्यो लुक् ॥ ६१० ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ पुण्याहवाचन आदि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् होवे। जैसे—पुण्याहवाचनं प्रयोजनमस्य पुण्याहवाचनम्; स्वस्तिवाचनम्; शान्तिवाचनम् इत्यादि ॥ ६१० ॥

समापनात्सपूर्वपदात् ॥ ६११ ॥ अ० ५ । १ । ११२ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ समापन शब्द जिनके अन्त में हो, उन प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में छ प्रत्यय होवे। जैसे—छन्दः समापनं प्रयोजनमस्य छन्दःसमापनीयम्; न्यायसमापनीयम्; व्याकरणसमापनीयम् इत्यादि ॥ ६११ ॥

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ॥ ६१२ ॥ अ० ५ । १ । ११५ ॥

तुल्य अर्थ क्रिया होवे, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से वति प्रत्यय होवे। जैसे—ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवत्; सिंहवत्; व्याघ्रवत् इत्यादि।

यहां 'क्रिया' ग्रहण इसलिये है कि—जहां गुण और द्रव्य का सादृश्य हो वहां प्रत्यय न होवे। जैसे—भ्रात्रा तुल्यः स्थूलः; भ्रात्रा तुल्यः पिङ्गलः, यहां वति प्रत्यय न होवे ॥६१२॥

तदर्हम् ॥ ६१३ ॥ अ० ५ । १ । ११७ ॥

अर्ह अर्थ में, द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से वति प्रत्यय होवे। जैसे—राजानमर्हति राजवत् पालनम्; ब्राह्मणवद्विद्याप्रचारः; ऋषिवत् इत्यादि ॥ ६१३ ॥

तस्य भावस्त्वतलौ ॥ ६१४ ॥ अ० ५ । १ । ११९ ॥

जिस गुण के होने से शब्द का अर्थ के साथ वाच्यवाचक सम्बन्ध समझा जाता है, उस गुण की विवक्षा में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकमात्र से त्व और तल् प्रत्यय हों।

जैसे—ब्राह्मणस्य भावो ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता; तस्य भावस्तत्त्वम्, तत्ता; स्त्रीत्वम्; पुंस्त्वम्; स्थूलत्वम्, स्थूलता; कृशत्वम्, कृशता; चेतनत्वम्, चेतनता; जडत्वम्, जडता इत्यादि।

यहां से ले के इस पाद की समाप्तिपर्यन्त त्व और तल् प्रत्यय का अधिकार समझना चाहिये ॥ ६१४ ॥

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ॥ ६१५ ॥ अ० ५ । १ । १२२ ॥

षष्ठीसमर्थ पृथु आदि गणपठित प्रातिपदिकों से भाव अर्थ में इमनिच् प्रत्यय विकल्प करके होवे, पक्ष में त्व और तल् प्रत्यय होवें।

जैसे—पृथोर्भावः प्रथिमा; म्रदिमा; महिमा; लघिमा; गरिमा; पृथुत्वम्, पृथुता; मृदुत्वम्, मृदुता; महत्त्वम्, महत्ता; लघुत्वम्, लघुता; गुरुत्वम्, गुरुता इत्यादि ॥६१५॥

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च ॥ ६१६ ॥ अ० ५ । १ । १२३ ॥

यहां चकार से इमनिच् और विकल्प की भी अनुवृत्ति आती है।

षष्ठीसमर्थ वर्णवाची और दृढादि प्रातिपदिकों से भाव अर्थ में ष्यञ् और इमनिच् प्रत्यय हो। जैसे—शुक्लस्य भावः शौक्ल्यम्, शुक्लिमा, शुक्लत्वम्, शुक्लता; कार्ष्ण्यम्, कृष्णिमा, कृष्णत्वम्, कृष्णता; नैल्यम्, नीलिमा, नीलत्वम्, नीलता इत्यादि। दृढादिकों से—दार्ढ्यम्, द्रढिमा, दृढत्वम्, दृढता; पाण्डित्यम्, पण्डितिमा, पण्डितत्वम्, पण्डितता; मधुरस्य भावो माधुर्य्यम्, मधुरिमा, मधुरत्वम्, मधुरता इत्यादि ॥ ६१६ ॥

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥६१७॥ अ० ५।१।१२४॥

जिन शब्दों से शीत उष्ण आदि गुणों का बोध हो, उनको गुणवचन कहते हैं। यहां चकार भाव अर्थ का समुच्चय होने के लिये है।

षष्ठीसमर्थ गुणवाची और ब्राह्मणादि प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होवे। जैसे—शीतस्य भावः कर्म वा शैत्यम्; औष्ण्यम्; शीतत्वम्, शीतता; उष्णत्वम्, उष्णता। ब्राह्मणादिकों से—ब्राह्मणस्य भावः कर्म्म वा ब्राह्मण्यम्; चौर्य्यम्; मौक्यम्; कौशल्यम्; चापल्यम्; नैपुण्यम् इत्यादि।

और अधिकार से त्व और तल् भी होते हैं। [जैसे—] ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता इत्यादि। यहां से आगे भाव और कर्म दोनों अर्थों का अधिकार चलेगा॥ ६१७॥

वा०—चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्॥ ६१८॥

चतुर्वर्ण आदि शब्दों से स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय हो। जैसे—चत्वार एव वर्णाश्चातुर्वर्ण्यम्; चातुराश्रम्यम्; त्रैलोक्यम्; त्रैस्वर्य्यम्; ऐकस्वर्ग्यम्; षाड्गुण्यम्; सैन्यम्; सान्निध्यम्; सामीप्यम्; औपम्यम्; सौख्यम् इत्यादि॥ ६१८॥

स्तेनाद्यन्नलोपश्च॥ ६१९॥ अ० ५। १। १२५॥

भाव और कर्म अर्थ में स्तेन शब्द से यत् प्रत्यय और नकार का लोप होवे। जैसे—स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयम्॥ ६१९॥

सख्युर्यः॥ ६२०॥ अ० ५। १। १२६॥

भाव और कर्म अर्थ में सखि शब्द से य प्रत्यय होवे। जैसे—सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम्॥ ६२०॥

वा—दूतवणिग्भ्यां च॥ ६२१॥

दूत और वणिक् शब्दों से भी य प्रत्यय हो। जैसे—दूतस्य भावः कर्म वा दूत्यम्; वणिज्यम्। वणिक् शब्द का पाठ ब्राह्मणादिगण में होने से ष्यञ् प्रत्यय भी हो जाता है। जैसे—वाणिज्यम्॥ ६२१॥

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्॥ ६२२॥ अ० ५। १। १२८॥

षष्ठीसमर्थ पति शब्द जिनके अन्त में हो, उन और पुरोहितादि प्रातिपदिकों से यक् प्रत्यय होवे भाव और कर्म अर्थ वाच्य रहे तो। जैसे—सेनापतेर्भावः कर्म वा सैनापत्यम्; वानस्पत्यम्; गार्हपत्यम्; बार्हस्पत्यम्; प्राजापत्यम्।

अधिकार के होने से त्व तल् भी होते हैं। जैसे—सेनापतित्वम्, सेनापतिता इत्यादि। पुरोहितादिकों से—पौरोहित्यम्; राज्यम्; बाल्यम्; पुरोहितत्वम्, पुरोहितता इत्यादि॥ ६२२॥

—यह पञ्चमाध्याय का प्रथमपाद पूरा हुआ॥

अथ द्वितीयः पादः—

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ॥ ६२३ ॥ अ० ५ । २ । १ ॥

यहां बहुवचन का निर्देश होने से धान्य के विशेषवाची शब्दों का ग्रहण होता है।

षष्ठीसमर्थ धान्यविशेषवाची शब्दों से उत्पत्ति का स्थान खेत अर्थ वाच्य रहे, तो खञ् प्रत्यय हो। जैसे—गोधूमानां भवनं क्षेत्रं गौधूमीनम्; मौद्गीनम्; कौलत्थीनम् इत्यादि।

यहां 'धान्यवाचियों का' ग्रहण इसलिये है कि—तृणानां भवनं क्षेत्रम्, यहां न हो। और 'खेत का' ग्रहण इसलिये है कि—गोधूमानां भवनं कुशूलम्, यहां भी खञ् प्रत्यय न होवे ॥ ६२३ ॥

तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति ॥६२४॥ अ० ५।२।७॥

सर्व शब्द जिनके आदि में हो, ऐसे पथिन् अङ्ग कर्मन् पत्र और पात्र द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से व्याप्ति अर्थ में ख प्रत्यय होवे।

जैसे-सर्वपथं व्याप्नोति सर्वपथीनं शकटम्; सर्वाण्यङ्गानि व्याप्नोति सर्वाङ्गीणमौषधम्; सर्वं कर्म व्याप्नोति सर्वकर्मीणः पुरुषः; सर्वपत्रीणः सारथिः; सर्वपात्रीणः सूपः इत्यादि ॥६२४॥

तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ ॥ ६२५ ॥ अ० ५ । २ । २४ ॥

पाक और मूल अर्थों में षष्ठीसमर्थ पील्वादि और कर्णादि गणपठित प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके कुणप् और जाहच् प्रत्यय हों।

जैसे--पीलूनां पाकः पीलुकुणः; बदरकुणः; खदिरकुणः इत्यादि। कर्णादिकों से—कर्णस्य मूलं कर्णजाहम्; नखजाहम्; केशानां मूलं केशजाहम्; दन्तजाहम् इत्यादि ॥६२५॥

तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ ॥ ६२६ ॥ अ० ५ । २ । २६ ॥

तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ज्ञात अर्थ में चुञ्चुप् और चणप् प्रत्यय हों। जैसे—विद्यया वित्तो ज्ञातो विद्याचुञ्चुः; उपदेशेन वित्त उपदेशचणः इत्यादि ॥ ६२६ ॥

विनञ्भ्यां नानाञौ नसह * ॥ ६२७ ॥ अ० ५ । २ । २७ ॥

नसह अर्थात् पृथग्भाव अर्थ में वि और नञ् अव्यय प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके ना और नाञ् प्रत्यय हों। जैसे—विना; नाना। नञ् अव्यय के अनुबन्ध का लोप होकर वृद्धि हो जाती है ॥ ६२७ ॥

* इत्यादि जिन २ सूत्र वार्त्तिकों में अव्ययों से प्रत्यय विधान किये हैं, वहां २ महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस अधिकार सूत्र के विकल्प की प्रवृत्ति न होने से वाक्य नहीं रहता। अर्थात् नित्य प्रत्यय हो जाते हैं ॥

वेः शालच्छङ्कटचौ ॥ ६२८ ॥ अ० ५ । २ । २८ ॥

वि अव्यय प्रातिपदिक से शालच् और शङ्कटच् प्रत्यय हों। जैसे—विशालः; विशङ्कटो वा पुरुषः * ॥ ६२८ ॥

सम्प्रोदश्च कटच् ॥ ६२९ ॥ अ० ५ । २ । २९ ॥

यहां चकार ग्रहण से वि उपसर्ग की अनुवृत्ति आती है।

सम्, प्र, उद् और वि इन उपसर्ग शब्दों से कटच् प्रत्यय हो। जैसे—सङ्कटम्; प्रकटम्; उत्कटम्; विकटम् ॥ ६२९ ॥

वा०—कटच्प्रकरणेऽलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसंख्यानम् ‡ ।६३०।

अलाबू तिल उमा और भङ्गा प्रातिपदिकों से रज अर्थ में कटच् प्रत्यय हो। जैसे—अलाबूनां रजोऽलाबूकटम्; तिलकटम्; उमाकटम्; भङ्गाकटम् ॥ ६३० ॥

वा०—गोष्ठादयः स्थानादिषु पशुनामादिभ्य उपसंख्यानम् ॥६३१॥

स्थान आदि अर्थों में पशु आदि के विशेषनामवाची शब्दों से गोष्ठ आदि प्रत्यय हों। जैसे—गवां स्थानं गोगोष्ठम्; महिषीगोष्ठम्; अजागोष्ठम्; अविगोष्ठम् इत्यादि ॥ ६३१ ॥

वा०—संघाते कटच् ॥ ६३२ ॥

यहां पूर्व वार्त्तिक की अनुवृत्ति आती है।

संघात अर्थ में पशुओं के विशेष नामवाची प्रातिपदिकों से कटच् प्रत्यय हो। जैसे—अवीनां संघातोऽविकटम्; अजाकटम्; गोकटम् इत्यादि ॥ ६३२ ॥

वा०—विस्तारे पटच् ॥ ६३३ ॥

विस्तार अर्थ में पशुओं के विशेषनामवाची प्रातिपदिकों से पटच् प्रत्यय होवे। जैसे—गवां विस्तारो गोपटम्; उष्ट्रपटम्; वृकपटम् इत्यादि ॥ ६३३ ॥

वा०—द्वित्वे गोयुगच् ॥ ६३४ ॥

पशुओं के द्वित्व अर्थ में उक्त शब्दों से गोयुगच् प्रत्यय होवे। जैसे—उष्ट्राणां द्वित्वम् उष्ट्रगोयुगम्; हस्तिगोयुगम्; व्याघ्रगोयुगम् इत्यादि ॥ ६३४ ॥

---

* विशाल आदि शब्द कि जिनका निर्वचन करने में नहीं आता वे अव्युत्पन्न शब्द कहाते हैं। वस्तुतः ये शब्द अव्युत्पन्न ही हैं, क्योंकि प्रकृति और प्रत्ययों का भिन्न अर्थ कुछ विदित नहीं होता। फिर इनमें प्रत्यय विधान केवल स्वर आदि का बोध होने के लिये है ॥

‡ इन सूत्र वार्त्तिकों से कटच् आदि प्रत्ययों के विधान में दूसरा पक्ष यह भी है कि कट आदि शब्द रज आदि अर्थों के वाचक हैं, उनके साथ षष्ठीतत्पुरुष समास होकर ये शब्द बनते हैं। जैसे गोष्ठ नाम स्थान का है—गवां गोष्ठं गोगोष्ठम् इत्यादि। इस पक्ष में इन वार्त्तिकों का कुछ प्रयोजन नहीं है ॥

वा०—प्रकृत्यर्थस्य षट्त्वे षड्गवच् ॥ ६३५ ॥

उक्त प्रातिपदिकों से छः व्यक्तियों के बोध होने अर्थ में षड्गवच् प्रत्यय हो। जैसे—षट् हस्तिनो हस्तिषड्गवम्; अश्वषड्गवम् इत्यादि ॥ ६३५ ॥

वा०—स्नेहे तैलच् ॥ ६३६ ॥

स्नेह अर्थात् घी तेल आदि अर्थों में सामान्य प्रातिपदिकों से तैलच् प्रत्यय हो। जैसे—एरण्डतैलम्; तिलतैलम्; सर्षपतैलम्; इङ्गुदीतैलम् इत्यादि ॥ ६३६ ॥

वा०—भवने क्षेत्रे इक्ष्वादिभ्यः शाकटशाकिनौ ॥ ६३७ ॥

उत्पत्ति का स्थान खेत वाच्य रहे, तो इक्षु आदि शब्दों से शाकट और शाकिन प्रत्यय हों। जैसे-इक्षूणां क्षेत्रमिक्षुशाकटम्;इक्षुशाकिनम्;यवशाकटम्;यवशाकिनम् इत्यादि ॥६३७॥

नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः ॥६३८॥ अ० ५।२।३१॥

यहां पूर्व सूत्र से अव उपसर्ग की अनुवृत्ति आती है।

नासिका के टेढे होने अर्थ में संज्ञा अभिधेय रहे, तो अव शब्द से टीटच् नाटच् और भ्रटच् प्रत्यय हों। जैसे—नासिकाया नतम् अवटीटम्; अवनाटम्; अवभ्रटम्।

ऐसी नासिका से युक्त पुरुष के भी ये नाम पड़ जाते हैं। जैसे—अवटीटः; अवनाटः; अवभ्रटो वा पुरुषः इत्यादि ॥ ६३८ ॥

इनच्पिटच्चिकचि च ॥ ६३९ ॥ अ० ५ । २ । ३३ ॥

यहां नि उपसर्ग और नासिका के नत की अनुवृत्ति आती है।

नि शब्द से नासिका के नम जाने अर्थ में इनच् और पिटच् प्रत्ययों के परे नि शब्द को यथासंख्य करके चिक और चि आदेश होवें। जैसे—चिकिनः; चिपिटः ॥ ६३९ ॥

वा०—ककारप्रत्ययो वक्तव्यश्चिकच्च प्रकृत्यादेशः ॥ ६४० ॥

नि शब्द को चिक् आदेश और उससे क प्रत्यय भी हो। जैसे—चिक्कः ॥ ६४० ॥

वा०—क्लिन्नस्य चिल्पिल्चुल्लश्चास्य चक्षुषी ॥ ६४१ ॥

इसके नेत्र इस अर्थ में क्लिन्न शब्द को चिल् पिल् और चुल् आदेश और ल प्रत्यय होवे। जैसे—क्लिन्ने अस्य चक्षुषी चिल्लः; पिल्लः; चुल्लः ॥ ६४१ ॥

उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः ॥ ६४२ ॥ अ० ५ । २ । ३४ ॥

यहां (नते नासिका०) इस सूत्र से संज्ञा की अनुवृत्ति चली आती है।

आसन्न और आरूढ़ अर्थ में वर्त्तमान उप और अधि उपसर्गों से संज्ञाविषयक स्वार्थ में त्यकन् प्रत्यय हो। जैसे—पर्वतस्यासन्नमुपत्यका; पर्वतस्यारूढमधित्यका + ॥ ६४२ ॥

तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ॥६४३॥ अ० ५।२।३६॥

सञ्जात समानाधिकरण प्रथमासमर्थ तारक आदि गणपठित शब्दों से षष्ठी के अर्थ में इतच् प्रत्यय होवे।

जैसे—तारकाः सञ्जाता अस्य तारकितं नभः; पुष्पितो वृक्षः; पण्डा सञ्जाता अस्य पण्डितः; तन्द्रा सञ्जाताऽस्य तन्द्रितः; मुद्रा सञ्जाताऽस्य मुद्रितं पुस्तकम् इत्यादि। तारकादि आकृतिगण समझना चाहिये ॥ ६४३ ॥

प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ॥ ६४४ ॥ अ० ५।२।३७॥

प्रमाण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में द्वयसच् दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय हों ॥ ६४४ ॥

का०—प्रथमश्च द्वितीयश्च ऊर्ध्वमाने मतौ मम ॥ ६४५ ॥

द्वयसच् और दघ्नच् ये दोनों प्रत्यय ऊर्ध्वमान अर्थात् ऊंचाई के इतने अर्थ में होते हैं, और मात्रच् सामान्य इयत्ता में जानो।

यह कारिका सूत्र का शेष है। जैसे—ऊरू प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसमुदकम्; ऊरुदघ्नमुदकम्; ऊरुमात्रम्; जानुद्वयसम्; जानुदघ्नम्; जानुमात्रम्; प्रस्थमात्रम् इत्यादि ॥ ६४५ ॥

वा०—प्रमाणे लः ॥ ६४६ ॥

प्रमाणवाची शब्दों से षष्ठी के अर्थ में हुए प्रत्यय का लुक् हो। जैसे—शमः प्रमाणमस्य शमः; दिष्टिः; वितस्तिः इत्यादि ॥ ६४६ ॥

वा०—द्विगोर्नित्यम् ॥ ६४७ ॥

द्विगुसंज्ञक प्रमाणवाची शब्दों से नित्य ही उत्पन्न प्रत्यय का लुक् हो। जैसे—द्वौ शमौ प्रमाणमस्य द्विशमः; त्रिशमः; द्विवितस्तिः इत्यादि।

इस वार्त्तिक में 'नित्य' ग्रहण इसलिये है कि—अगले वार्त्तिक में संशय अर्थ में मात्रच् कहा है, वहां भी द्विगु से लुक् ही होजावे। जैसे—द्वे दिष्टी स्यातां वा न वा द्विदिष्टिः ॥६४७॥

वा०—प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रच् ॥६४८॥

प्रमाणवाची परिमाणवाची और संख्यावाची प्रातिपदिकों से संशय अर्थ में मात्रच् प्रत्यय होवे। जैसे—प्रमाणवाची—शममात्रम्; दिष्टिमात्रम्। परिमाणवाची—प्रस्थमात्रम्। संख्यावाची—पञ्चमात्रा वृक्षाः; दशमात्रा गावः इत्यादि ॥ ६४८ ॥

+ यहां प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व ह्रस्व प्राप्त है, सो इन शब्दों के संज्ञावाची होने से नहीं होता। अर्थात् ये शब्द इसी प्रकार के पर्वत के आसन्न आरूढ अर्थों में रूढि हैं ॥

वा०—वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलम् ॥ ६४६ ॥

वतुप् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से द्वयसच् और मात्रच् प्रत्यय स्वार्थ में बहुल करके हों। जैसे—तावदेव तावद्द्वयसम्; तावन्मात्रम्; एतावद्द्वयसम्; एतावन्मात्रम्; यावद्द्वयसम्; यावन्मात्रम् ॥ ६४६ ॥

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ॥ ६५० ॥ अ० ५ । २ । ३६ ॥

प्रथमासमर्थ परिमाणसमानाधिकरण यत् तत् और एतत् सर्वनामवाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में वतुप् प्रत्यय हो। जैसे—यत्परिमाणमस्य यावान्; तावान्; एतावान्।

प्रमाण ग्रहण की अनुवृत्ति पूर्व से चली आती, फिर परिमाणग्रहण से इन दोनों का भेद विदित होता है ॥ ६५० ॥

वा०—वतुप्प्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्य उपसंख्यानम् ॥ ६५१ ॥

युष्मद् अस्मद् शब्दों से सादृश्य अर्थ में वैदिकप्रयोगों में वतुप् प्रत्यय हो। जैसे—त्वत्सदृशस्त्वावान्; मत्सदृशो मावान्; त्वावतः पुरुवसो यज्ञं विप्रस्य मावतः ॥ ६५१ ॥

किमिदम्भ्यां वा घः ॥ ६५२ ॥ अ० ५ । २ । ४० ॥

परिमाणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ किम् और इदम् शब्दों से वतुप् प्रत्यय और वतुप् के वकार को घकारादेश होवे। जैसे—किम्परिमाणमस्य कियान्; इदम्परिमाणमस्य इयान् ॥ ६५२ ॥

संख्याया अवयवे तयप् ॥ ६५३ ॥ अ० ५ । २ । ४२ ॥

अवयवों का अवयवी के साथ सम्बन्ध होने से प्रत्ययार्थ अवयवी समझा जाता है।

अवयवसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में तयप् प्रत्यय हो। जैसे—पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयम्; दशतयम्; चतुष्टयम्; चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः इत्यादि ॥ ६५३ ॥

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ॥ ६५४ ॥ अ० ५ । २ । ४३ ॥

पूर्व सूत्र से विहित जो द्वि त्रि शब्दों से तयप् प्रत्यय, उसके स्थान में अयच् आदेश विकल्प करके होवे। जैसे—द्वाववयवावस्य द्वयम्; द्वितयम्; त्रयम्; त्रितयम्।

इस अयच् आदेश को जो प्रत्ययान्तर मानें, तो तयप् ग्रहण न करना पड़े। परन्तु स्थानिवद्भाव मान के जो त्रयी शब्द में ङीप् और जस् विभक्ति में सर्वनामसंज्ञा का विकल्प होता है, सो नहीं पावे ॥ ६५४ ॥

उभादुदात्तो नित्यम् ॥ ६५५ ॥ अ० ५ । २ । ४४ ॥

यहां पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

उभ शब्द से परे जो तयप् उसके स्थान में अयच् आदेश उदात्त नित्य ही होवे। जैसे—उभाववयवावस्य उभयो मणिः; उभये देवमनुष्याः।

यहां उदात्त के कहने से आद्युदात्त होता है, क्योंकि अन्तोदात्त तो चित् होने से हो ही जाता ॥ ६५५ ॥

तदस्मिन्नधिकामति दशान्ताड्डः ॥ ६५६ ॥ अ० ५ । २ । ४५ ॥

अधिक समानाधिकरण प्रथमासमर्थ दश जिनके अन्त में हो, ऐसे संख्यावाची प्रातिपदिक से ड प्रत्यय हो। जैसे—एकादश अधिका अस्मिन् शते एकादशं शतम्; एकादशं सहस्रम्; द्वादशं शतम्; द्वादशं सहस्रम् इत्यादि।

यहां 'दशान्त' ग्रहण इसलिये है कि—पञ्चाधिका अस्मिन् शते, यहां प्रत्यय न हो। और 'अन्त' ग्रहण इसलिये है कि—दशाधिका अस्मिन् शते, यहां भी ड प्रत्यय न हो।

'इति' शब्द इसलिये पढ़ा है कि—जहां प्रत्ययार्थ की विवक्षा हो वहीं प्रत्यय हो, और—एकादश माषा अधिका अस्मिन् कार्षापणशते, यहां तथा—एकादशाधिका अस्यां त्रिंशतीति, यहां भी विवक्षा के न होने से प्रत्यय नहीं होता ॥ ६५६ ॥

तस्य पूरणे डट् ॥ ६५७ ॥ अ० ५ । २ । ४८ ॥

षष्ठीसमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय हो। जैसे—एकादशानां पूरण एकादशः; द्वादशः; त्रयोदशः इत्यादि।

डट् प्रत्यय के डित् होने से टिलोप हो जाता है। दश व्यक्तियों में एक व्यक्ति ग्यारह को पूरण करती है ॥ ६५७ ॥

नान्तादसङ्ख्यादेर्मट् ॥ ६५८ ॥ अ० ५ । २ । ४९ ॥

यहां पूर्व से डट् की अनुवृत्ति आती है।

संख्या जिनके आदि में न हो ऐसे नकारान्त संख्यावाची प्रातिपदिक से विहित पूरण अर्थ में जो डट् उसको मट् का आगम होवे। जैसे—पञ्चानां पूरणः पञ्चमः; सप्तमः; अष्टमः; नवमः इत्यादि।

यहां 'नान्त' ग्रहण इसलिये है कि—विंशतेः पूरणो विंशः, यहां न हो। और आदि में 'संख्या का निषेध' इसलिये है कि—एकादशानां पूरण एकादशः, यहां भी मट् का आगम न हो ॥ ६५८ ॥

षट्कतिकतिपयचतुरान्थुक् ॥ ६५६ ॥ अ० ५ । २ । ५१ ॥

डट् की अनुवृत्ति यहां भी आती है।

षट् कति कतिपय और चतुर् शब्दों को डट् प्रत्यय के परे थुक् का आगम हो। जैसे—षण्णां पूरणः षष्ठः; कतिथः; कतिपयथः; चतुर्थः ॥ ६५९ ॥

वा०—चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च ॥ ६६० ॥

षष्ठीसमर्थ चतुर् प्रातिपदिक से डट् के अपवाद छ और यत् प्रत्यय हों, और चतुर् शब्द के चकार का लोप हो। जैसे—चतुर्णां पूरणः तुरीयः, तुर्य्यः ॥ ६६० ॥

द्वेस्तीयः ॥ ६६१ ॥ अ० ५ । २ । ५४ ॥

यह भी डट् का अपवाद है।

द्वि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय हो। जैसे—द्वयोः पूरणो द्वितीयः ॥ ६६१ ॥

त्रेः सम्प्रसारणञ्च ॥ ६६२ ॥ अ० ५ । २ । ५५ ॥

त्रि शब्द से तीय प्रत्यय और उसके परे उसको सम्प्रसारण भी हो जावे। जैसे—त्रयाणां पूरणस्तृतीयः + ॥ ६६२ ॥

विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ॥ ६६३ ॥ अ० ५ । २ । ५६ ॥

विंशति आदि प्रातिपदिकों से परे डट् प्रत्यय को तमट् का आगम विकल्प करके हो। जैसे—विंशतेः पूरणो विंशतितमः, विंशः; एकविंशतितमः, एकविंशः; त्रिंशत्तमः, त्रिंशः; एकत्रिंशत्तमः, एकत्रिंशः इत्यादि ॥ ६६३ ॥

नित्यं शतादिमासार्द्धमाससंवत्सराच्च ॥ ६६४ ॥ अ० ५ । २ । ५७ ॥

पूरणार्थ में शत आदि मास अर्द्धमास और संवत्सर शब्दों से परे डट् प्रत्यय को तमट् का आगम नित्य ही होवे। जैसे—शतस्य पूरणः शततमः; सहस्रतमः; लक्षतमः इत्यादि; मासतमो दिवसः; अर्द्धमासतमः; संवत्सरतमः ॥ ६६४ ॥

षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः ॥ ६६५ ॥ अ० ५ । २ । ५८ ॥

पूरणार्थ में संख्या जिनके आदि में न हो ऐसे जो षष्टि आदि शब्द हैं, उनसे परे डट् प्रत्यय को तमट् का आगम हो। जैसे—षष्टेः पूरणः षष्टितमः; सप्ततितमः; अशीतितमः; नवतितमः।

+ यहां हल् से परे ऋकार सम्प्रसारण को दीर्घ इसलिये नहीं होता कि (हलः) इस सूत्र में अण् की अनुवृत्ति आती, और अण् पूर्व णकार से लिया जाता है ॥

यहां 'संख्यादि का निषेध' इसलिये है कि—एकषष्टः, एकषष्टितमः; एकसप्ततः, एकसप्ततितमः, यहां विंशत्यादि सूत्र से विकल्प हो जाता है ॥ ६६५ ॥

स एषां ग्रामणीः ॥ ६६६ ॥ अ० ५ । २ । ७८ ॥

षष्ठ्यर्थ वाच्य रहे, तो ग्रामणी अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो। ग्रामणी मुख्य का नाम है। जैसे—देवदत्तो ग्रामणीरेषां देवदत्तकाः; यज्ञदत्तकाः।

यहां 'ग्रामणी' ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्तः शत्रुरेषाम्, इत्यादि में कन् प्रत्यय न हो ॥ ६६६ ॥

कालप्रयोजनाद्रोगे ॥ ६६७ ॥ अ० ५ । २ । ८१ ॥

रोग अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची और प्रयोजन नाम कारणवाची तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो। जैसे—[कालवाची] द्वितीयेऽह्नि भवो द्वितीयको ज्वरः; तृतीयको ज्वरः; चतुर्थकः। प्रयोजन से—विषपुष्पैर्जनितो विषपुष्पको ज्वरः; काशपुष्पको ज्वरः; उष्णं कार्य्यमस्य उष्णकः; शीतको ज्वरः इत्यादि ॥ ६६७ ॥

श्रोत्रियँश्छन्दोऽधीते ॥ ६६८ ॥ अ० ५ । २ । ८४ ॥

यश्छन्दोऽधीते स श्रोत्रियः, यहां छन्द के पढ़ने अर्थ में छन्दस् शब्द को श्रोत्रभाव और घन् प्रत्यय निपातन किया है ॥ ६६८ ॥

श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ ॥ ६६९ ॥ अ० ५ । २ । ८५ ॥

'अनेन भुक्तं' इस अर्थ में प्रथमासमर्थ श्राद्ध प्रातिपदिक से इनि और ठन् प्रत्यय हों। जैसे—श्राद्धं भुक्तमनेन श्राद्धी; श्राद्धिकः ॥ ६६९ ॥

साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम् ॥ ६७० ॥ अ० ५ । २ । ९१ ॥

द्रष्टा की संज्ञा अर्थ में साक्षात् अव्यय से इनि प्रत्यय हो। जैसे—साक्षाद्द्रष्टा साक्षी ॥ ६७० ॥

इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा ॥ ६७१ ॥ अ० ५ । २ । ९३ ॥

यहां इन्द्र जीवात्मा और लिङ्ग चिह्न का नाम है।

लिङ्गादि अर्थों में इन्द्र शब्द से घच् प्रत्यय निपातन करने से इन्द्रिय शब्द सिद्ध होता है। जैसे—इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियम्। इन्द्र नाम जीवात्मा का लिङ्ग जो प्रकाशक चिह्न हो, उसको इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रेण दृष्टम् इन्द्रियम्। इन्द्रेण सृष्टम् इन्द्रियम्, यहां ईश्वर का ग्रहण है। इन्द्रेण जुष्टम् इन्द्रियम्, यहां जीव का ग्रहण है। इन्द्रेण दत्तम् इन्द्रियम्, और यहां ईश्वर का ग्रहण होता है ॥ ६७१ ॥

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ॥ ६७२ ॥ अ० ५ । २ । ६४ ॥

अस्ति और प्रथमासमानाधिकरण ङ्याप् प्रातिपदिकों से षष्ठी और सप्तमी के अर्थ में मतुप् प्रत्यय हो। जैसे—गावोऽस्य सन्ति गोमान् देवदत्तः; वृक्षाः सन्त्यस्मिन् स वृक्षवान् पर्वतः; यवा अस्य सन्ति यवमान्, प्लक्षवान् इत्यादि ॥ ६७२ ॥

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ॥६७३॥ अ० ८ । २ । ९ ॥

मकारान्त मकारोपध अवर्णान्त और अवर्णोपध प्रातिपदिकों से परे मतुप् प्रत्यय के मकार को वकारादेश हो, परन्तु यवादि प्रातिपदिकों से परे न हो।

जैसे—मकारान्त—किंवान्; शंवान्। मकारोपध—शमीवान्; दाडिमीवान्; लक्ष्मीवान्। अवर्णान्त—वृक्षवान्; प्लक्षवान्; घटवान्; खट्वावान्; मालावान्। अवर्णोपध—पयस्वान्; यशस्वान्; भास्वान्।

यहां 'मकारान्त आदि' का ग्रहण इसलिये है कि—अग्निमान्; वायुमान्; बुद्धिमान्, यहां वकार न हो। और 'अयवादि' इसलिये कहा है कि—यवमान्; दल्मिमान्; ऊर्म्मिमान् इत्यादि, यहां भी मकार को वकार आदेश न होवे ॥ ६७३ ॥

झयः ॥ ६७४ ॥ अ० ८ । २ । १० ॥

झय् प्रत्याहारान्त प्रातिपदिक से परे मतुप् के मकार को वकारादेश हो। जैसे—अग्निचित्वान् ग्रामः; उदश्वित्वान् घोषः; विद्युत्वान् बलाहकः; मरुत्वानिन्द्रः; दृषद्वान् देशः इत्यादि ॥ ६७४ ॥

संज्ञायाम् ॥ ६७५ ॥ अ० ८ । २ । ११ ॥

संज्ञाविषय में मतुप् के मकार को वकारादेश हो। जैसे—अहीवती; कपीवती; ऋषीवती; मुनीवती वा नगरी इत्यादि ॥ ६७५ ॥

का०—भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।
सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥ ६७६ ॥

बहुत्व निन्दा प्रशंसा नित्ययोग अतिशय सम्बन्ध और अस्ति=होने की विवक्षा अर्थों में मतुप्, और इस प्रकरण में जितने प्रत्यय हैं, वे सब होते हैं। यह कारिका इसी सूत्र पर महाभाष्य में है।

जैसे—भूम अर्थ में - गोमान्; यवमान् इत्यादि। निन्दा में—कुष्ठी; ककुदावर्त्तिनी इत्यादि। प्रशंसा में—रूपवती इत्यादि। नित्ययोग अर्थ में—क्षीरिणो वृक्षाः; कण्टकिनो वृक्षाः इत्यादि। अतिशय में—उदरिणी कन्या इत्यादि। सम्बन्ध में—दण्डी; छत्री इत्यादि। होने की विवक्षा में—अस्तिमान् ॥ ६७६ ॥

वा०—गुणवचनेभ्यो मतुपो लुक् ॥ ६७७ ॥

गुणवाची प्रातिपदिकों से परे मतुप् प्रत्यय का लुक् हो। जैसे—शुक्लो गुणोऽस्याऽस्तीति शुक्लः पटः; कृष्णः; श्वेतः इत्यादि ॥ ६७७ ॥

रसादिभ्यश्च ॥ ६७८ ॥ अ० ५ । २ । ९५ ॥

रस आदि प्रातिपदिकों से षष्ठी सप्तमी के अर्थ में मतुप् प्रत्यय हो। जैसे—रसोऽस्यास्तीति रसवान्; रूपवान्; गन्धवान्; शब्दवान् इत्यादि।

यहां रसादि शब्दों से प्रत्ययविधान इसलिये किया है कि इनके गुणवाची होने से मतुप् का लुक् पूर्व वार्त्तिक से पाया था, सो न हो ॥ ६७८ ॥

प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ॥ ६७९ ॥ अ० ५ । २ । ९६ ॥

मत्वर्थ में प्राणिस्थवाची आकारान्त शब्द से लच् प्रत्यय विकल्प करके हो। जैसे—चूडालः, चूडावान्; कर्णिकालः, कर्णिकावान्; जिह्वालः, जिह्वावान्; जंघालः, जंघावान्।

यहां 'प्राणिस्थ' ग्रहण इसलिये है कि—शिखावान् प्रदीपः, यहां न हो। और 'आकारान्त' ग्रहण इसलिये है कि—हस्तवान्; पादवान् इत्यादि में भी लच् प्रत्यय न हो ॥६७९॥

वा०—प्राण्यङ्गादिति वक्तव्यम् ॥ ६८० ॥

प्राणिस्थ आकारान्त शब्दों से जो लच् प्रत्यय कहा है, वह प्राणियों के अङ्गवाचियों से हो। अर्थात् चिकीर्षास्यास्तीति, जिहीर्षास्यास्ति चिकीर्षावान्; जिहीर्षावान् इत्यादि में लच् प्रत्यय न हो ॥ ६८० ॥

सिध्मादिभ्यश्च ॥ ६८१ ॥ अ० ५ । २ । ९७ ॥

मत्वर्थ में सिध्म आदि प्रातिपदिकों से लच् प्रत्यय विकल्प करके हो, पक्ष में मतुप् हो। जैसे—सिध्मोऽस्यास्तीति सिध्मलः, सिध्मवान्; गडुलः, गडुमान्; मणिलः, मणिमान् इत्यादि ॥ ६८१ ॥

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ॥६८२॥ अ० ५ । २ । १००॥

मत्वर्थ में लोमादि पामादि और पिच्छादि गणपठित प्रातिपदिकों से श न और इलच् प्रत्यय यथासंख्य करके हों, तथा मतुप् भी होवे।

जैसे—लोमान्यस्य सन्ति लोमशः, लोमवान्; पामनः, पामवान्; पिच्छिलः, पिच्छवान्; उरसिलः, उरस्वान् इत्यादि ॥ ६८२ ॥

प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः ॥ ६८३ ॥ अ० ५ । २ । १०१ ॥

मत्वर्थ में प्रज्ञा श्रद्धा और अर्चा प्रातिपदिकों से ण प्रत्यय हो। जैसे—प्रज्ञाऽस्यास्ति प्राज्ञः, प्रज्ञावान्; श्राद्धः, श्रद्धावान्; आर्चः, अर्चावान् * ॥ ६८३ ॥

तपःसहस्राभ्यां विनीनी ॥ ६८४ ॥ अ० ५ । २ । १०२ ॥

मत्वर्थ में तपस् और सहस्र प्रातिपदिक से विनि और इनि प्रत्यय हों। जैसे—तपोऽस्मिन्नस्तीति तपस्वी; सहस्री ॥ ६८४ ॥

अण् च ॥ ६८५ ॥ अ० ५ । २ । १०३ ॥

मत्वर्थ में तपस् और सहस्र प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय भी हो। जैसे—तापसः; साहस्रः ॥ ६८५ ॥

दन्त उन्नत उरच् ॥ ६८६ ॥ अ० ५ । २ । १०६ ॥

उन्नतसमानाधिकरण दन्त शब्द से मतुप् के अर्थ में उरच् प्रत्यय हो। जैसे—दन्ता उन्नता अस्य सन्ति स दन्तुरः।

यहां 'उन्नत' विशेषण इसलिये है कि—दन्तवान्, यहां निन्दा आदि अर्थों में उरच् प्रत्यय न होवे ॥ ६८६ ॥

ऊषसुषिमुष्कमधो रः ॥ ६८७ ॥ अ० ५ । २ । १०७ ॥

ऊष सुषि मुष्क और मधु प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में र प्रत्यय होवे। जैसे—ऊषमस्मिन्नस्ति ऊषरा भूमिः; सुषिरं काष्ठम्; मुष्करः पशुः; मधुरो गुडः ॥ ६८७ ॥

वा०—रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम् ॥ ६८८ ॥

ख मुख और कुञ्ज शब्दों से भी मत्वर्थ में र प्रत्यय हो। जैसे—खमस्यास्तीति खरः; मुखमस्यास्तीति मुखरः; कुञ्जरः † ॥ ६८८ ॥

वा०—नगपांसुपाण्डुभ्यश्च ॥ ६८९ ॥

नग पांसु और पाण्डु शब्दों से भी मत्वर्थ में र प्रत्यय हो। जैसे—नगमस्मिन्नस्तीति नगरम् ‡; पांसुरम्; पाण्डुरम् ॥ ६८९ ॥

वा०—कच्छ्वा ह्रस्वत्वं च ॥ ६९० ॥

---

* यहां प्रज्ञा आदि शब्दों से ण और मतुप् प्रत्यय प्रशंसा अर्थ में समझना चाहिये। और यहां सामान्य अर्थ में अर्थात् बुद्धि जिसमें हो ऐसा समझने से साधारण प्राणियों के नाम प्राज्ञ और प्रज्ञावान् होंगे, इसलिये उसका विशेष अर्थ समझो ॥

† जिसके कण्ठ में ख नाम विशेष अवकाश हो उसको खर। मुख का काम निरन्तर उच्चारण करना जिसका हो उसको मुखर। और कुञ्जर बड़ी ठोढ़ी होने से हाथी को कहते हैं ॥

‡ नग अर्थात् वृक्ष और पर्वत जिसमें हों उसको नगर कहते हैं ॥

कच्छा शब्द से र प्रत्यय और उसको ह्रस्वादेश भी हो। जैसे—कच्छास्यामस्तीति कच्छुरा भूमिः ॥ ६६० ॥

केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ॥ ६६१ ॥ अ० ५ । २ । १०६ ॥

इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा इसलिये समझना चाहिये कि केश शब्द से व प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है। केश प्रातिपदिक से व प्रत्यय विकल्प करके हो।

यहां महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है, और दूसरे इस विकल्प के होने से चार प्रयोग होते हैं। जैसे—प्रशस्ताः केशा अस्य सन्तीति केशवः, केशी, केशिकः, केशवान्। केश शब्द ज्योति अर्थात् प्रकाश गुण का भी नाम है ॥ ६६१ ॥

वा०—वप्रकरणे मणिहिरण्याभ्यामुपसंख्यानम् ॥ ६९२ ॥

मणि और हिरण्य प्रातिपदिक से भी व प्रत्यय हो। जैसे—मणिरस्मिन्नस्तीति मणिवः सर्पः; हिरण्यवः * ॥ ६९२ ॥

वा०—छन्दसीवनिपौ च ॥ ६९३ ॥

वैदिक प्रयोगों में सामान्य प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में ई और वनिप् प्रत्यय हो।

जैसे—रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ, यहां रथीः शब्द में ई प्रत्यय हुआ है; सुमङ्गलीरियं वधूः इत्यादि। ऋतावानम्; मघवानमीमहे, यहां ऋत और मघ शब्द से वनिप् होता है ॥ ६९३ ॥

वा०—मेधारथाभ्यामिरन्निरचौ वक्तव्यौ ॥ ६९४ ॥

मेधा और रथ शब्दों से मत्वर्थ में इरन् और इरच् प्रत्यय हों। जैसे—मेधिरः; रथिरः। ये भी मतुप् के बाधक हैं ॥ ६९४ ॥

वा०—अपर आह—वप्रकरणेऽन्येभ्योपि दृश्यत इति वक्तव्यम् ॥६९५॥

इस विषय में बहुतेरे ऋषि लोगों का ऐसा मत है कि अविहित सामान्य प्रातिपदिकों से व प्रत्यय देखने में आता है। जैसे—बिम्बावम्; कुररावम्; इष्टकावम् इत्यादि।

प्रयोजन यह है कि—पूर्व वार्त्तिक में जो मणि और हिरण्य शब्दों से व प्रत्यय कहा है, उसका भी इस पक्ष में कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ६९५ ॥

रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् ॥ ६९६ ॥ अ० ५ । २ । ११२ ॥

रजस् कृषि आसुति और परिषत् प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में वलच् प्रत्यय हो। जैसे—रजोऽस्याः प्रवर्त्तत इति रजस्वला स्त्री; कृषीवलो ग्रामीणः; आसुतिवलः शौण्डिकः; परिषद्वलो राजा इत्यादि ॥ ६९६ ॥

* मणिव किसी विशेष सर्प की और हिरण्यव धन विशेष की संज्ञा है ॥

वा०—वलच्प्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ ६९७ ॥

विहितों से पृथक् प्रातिपदिकों से भी वलच् प्रत्यय देखने में आता है। जैसे—भ्राताऽस्यास्तीति भ्रातृवलः; पुत्रवलः; उत्सङ्गवलः इत्यादि ॥ ६९७ ॥

अत इनिठनौ ॥ ६९८ ॥ अ० ५ । २ । ११५ ॥

मत्वर्थ में अकारान्त प्रातिपदिक से इनि और ठन् प्रत्यय हों। जैसे—दण्डी, दण्डिकः; छत्री, छत्रिकः।

यहां विकल्प की अनुवृत्ति आने से पक्ष में मतुप् प्रत्यय भी होता है। जैसे—दण्डवान्, दण्डिकः; छत्रवान्, छत्रिकः इत्यादि।

यहां 'तपरकरण' इसलिये है कि—खट्वावान्, यहां इनि ठन् न हों ॥ ६९८ ॥

का०—एकाक्षरात्कृतो जातेः सप्तम्यां च न तौ स्मृतौ ॥ ६९९ ॥

एकाक्षर शब्द कृदन्त जातिवाची और सप्तमी के अर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय न हों। सूत्र से जो प्राप्ति है, उसका विशेष विषय में निषेध किया है।

जैसे—एकाक्षर से—स्वान्; खवान् इत्यादि। कृदन्त से—कारकवान्; हारकवान्। जातिवाचियों से—वृक्षवान्; प्लक्षवान्; व्याघ्रवान्; सिंहवान् इत्यादि। सप्तम्यर्थ में—दण्डा अस्यां शालायां सन्तीति दण्डवती शाला इत्यादि ॥ ६९९ ॥

व्रीह्यादिभ्यश्च ॥ ७०० ॥ अ० ५ । २ । ११६ ॥

व्रीहि आदि गणपठित प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय हों। जैसे—व्रीही, व्रीहिकः, व्रीहिमान्; मायी, मायिकः, मायावान् इत्यादि ॥ ७०० ॥

का०—शिखादिभ्य इनिर्वाच्य इकन्यवखदादिषु ॥ ७०१ ॥

पूर्व सूत्र में व्रीह्यादि शब्दों में शिखादिगण हैं, उनसे इनि, और यवखदादि प्रातिपदिकों से इकन् (ठन्) कहना चाहिये।

प्रयोजन यह है कि सब व्रीह्यादिकों से दोनों प्रत्यय प्राप्त हैं सो न हों, किन्तु शिखादिकों से इनि ही हो, ठन् न हो, और यवखदादिकों से ठन् ही हो, इनि नहीं, यह नियम समझना चाहिये। जैसे—शिखी, मेखली इत्यादि। यवखदिकः इत्यादि ॥ ७०१ ॥

अस्मायामेधास्रजो विनिः ॥ ७०२ ॥ अ० ५ । २ । १२१ ॥

असन्त माया मेधा और स्रज् प्रातिपदिकों से मतुप् के अर्थ में विनि प्रत्यय हो, और मतुप् तो सर्वत्र होता ही है। और माया शब्द व्रीह्यादिगण में पढ़ा है, उससे इनि ठन् भी होते हैं। असन्तों से—पयस्वी; यशस्वी इत्यादि; मायावी, मायी, मायिकः, मायावान्; मेधावी, मेधावान्; स्रग्वी, स्रग्वान् ॥ ७०२ ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ७०३ ॥ अ० ५ । २ । १२२ ॥

वैदिकप्रयोगविषय में सामान्य प्रातिपदिकों से मत्वर्थ विषयक विनि प्रत्यय बहुल करके हो। जैसे—अग्ने तेजस्विन्, यहां हो गया। और सूर्यो वर्चस्वान्, यहां नहीं भी हुआ इत्यादि। बहुल से अनेक प्रयोजन समझना चाहिये ॥ ७०३ ॥

वा०-छन्दोविन्प्रकरणेऽष्ट्रामेखलाद्वयोभयरुजाहृदयानां दीर्घश्च ।७०४।

अष्ट्रा मेखला द्वय उभय रुजा और हृदय शब्दों से विनि प्रत्यय और इनको दीर्घादेश भी होवे। जैसे—अष्ट्रावी; मेखलावी; द्वयावी; उभयावी; [रुजावी;] हृदयावी ॥ ७०४ ॥

वा०—मर्मणश्च ॥ ७०५ ॥

मर्मन् शब्द से भी विनि प्रत्यय और उसको दीर्घादेश हो। जैसे—मर्मावी ॥ ७०५ ॥

वा०—सर्वत्रामयस्योपसङ्ख्यानम् ॥ ७०६ ॥

पूर्व के तीनों वार्त्तिकों से वेद में प्रत्ययविधान समझना चाहिये, इसीलिये इस वार्त्तिक में सर्वत्र शब्द पढ़ा है।

सर्वत्र—लौकिक वैदिक सब प्रयोगों में—आमय शब्द से विनि प्रत्यय और दीर्घादेश भी होवे। जैसे—आमयावी ॥ ७०६ ॥

वा०—शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन् ॥ ७०७ ॥

पूर्व वार्त्तिक से अगले सब वार्त्तिकों में सर्वत्र शब्द की अनुवृत्ति समझनी चाहिये।

शृङ्ग और वृन्द प्रातिपदिक से मत्वर्थ में आरकन् प्रत्यय हो। जैसे—शृङ्गाण्यस्य सन्ति शृङ्गारकः; वृन्दारकः ॥ ७०७ ॥

वा०—फलबर्हाभ्यामिनच् ॥ ७०८ ॥

फल और बर्ह शब्दों से इनच् हो। जैसे-फलान्यस्मिन्सन्ति फलिनः; बर्हिणः ॥७०८॥

वा०—हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम् ॥ ७०९ ॥

हृदय शब्द से चालु प्रत्यय विकल्प करके हो, और पक्ष में इनि ठन् तथा मतुप भी हो जावे। जैसे—हृदयालुः, हृदयी, हृदयिकः, हृदयवान् ॥ ७०९ ॥

वा०—शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तन्न सहत इति चालुर्वक्तव्यः ॥ ७१० ॥

शीत उष्ण और तृप्त प्रातिपदिकों से प्रकृत्यर्थ के न सह सकने अर्थ में चालु प्रत्यय हो। जैसे—शीतं न सहते स शीतालुः; उष्णालुः; तृप्रालुः ॥ ७१० ॥

वा०—हिमाच्चेलुः ॥ ७११ ॥

हिम शब्द से उसके न सहने अर्थ में चेलु प्रत्यय हो। जैसे—हिमं न सहते स हिमेलुः ॥ ७११ ॥

वा०—बलाच्चोलः ॥ ७१२ ॥

बल शब्द से उसके न सहने अर्थ में ऊल प्रत्यय हो। जैसे—बलं न सहत इति बलूलः ॥७१२॥

वा०—वातात्समूहे च ॥ ७१३ ॥

वात शब्द से उसके न सहने और समूह अर्थ में ऊल प्रत्यय हो। जैसे—वातानां समूहो वातं न सहते वा स वातूलः ॥ ७१३ ॥

वा०—पर्वमरुद्भ्यां तप् ॥ ७१४ ॥

पर्व और मरुत् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में तप् प्रत्यय हो। जैसे—पर्वमस्मिन्नस्ति स पर्वतः; मरुत्तः।

और यह मरुत्त शब्द 'मरुतों ने दिया' ऐसे भी अर्थ में कृदन्त प्रत्यय होने से बन जाता है ॥ ७१४ ॥

वाचो ग्मिनिः ॥ ७१५ ॥ अ० ५ । २ । १२४ ॥

वाक् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में ग्मिनि प्रत्यय हो। जैसे—प्रशस्ता वागस्य स वाग्मी, वाग्मिनौ, वाग्मिनः ॥ ७१५ ॥

आलजाटचौ बहुभाषिणि ॥ ७१६ ॥ अ० ५ । २ । १२५ ॥

यहां पूर्व सूत्र से वाक् शब्द की अनुवृत्ति आती है।

बहुत बोलने वाले के अर्थ में वाक् प्रातिपदिक से आलच् और आटच् प्रत्यय हों। जैसे—बहु भाषत इति वाचालः; वाचाटः। यह ग्मिनी प्रत्यय का अपवाद है।

और यह भी समझना चाहिये कि जो विद्या के अनुकूल विचारपूर्वक बहुत बोलता है, उसको वाचाल और वाचाट नहीं कहते हैं, किन्तु जो अंड बंड बोले। यह बात महाभाष्य में है ॥ ७१६ ॥

स्वामिन्नैश्वर्ये ॥ ७१७ ॥ अ० ५ । २ । १२६ ॥

यहां ऐश्वर्य्यवाची स्व शब्द से मत्वर्थ में आमिन् प्रत्यय करके स्वामिन् शब्द निपातन किया है। जैसे—स्वमैश्वर्य्यमस्यास्तीति स्वामी, स्वामिनौ, स्वामिनः।

ऐश्वर्य्य अर्थ इसलिये समझना चाहिये कि—स्ववान्, यहां आमिन् न हो ॥ ७१७ ॥

वातातीसाराभ्यां कुक् च ॥ ७१८ ॥ अ० ५ । २ । १२९ ॥

वात और अतीसार प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय और कुक् का आगम भी हो। जैसे—वातकी; अतीसारकी।

यहां रोग अर्थ में प्रत्यय होना इष्ट है, इससे वातवती गुहा, यहां इनि और कुक् नहीं होते ॥ ७१८ ॥

वा०—पिशाचाच्च ॥ ७१६ ॥

पिशाच शब्द से भी इनि और उसको कुक् का आगम होवे। जैसे—पिशाचकी वैश्रवणः ॥ ७१६ ॥

वयसि पूरणात् ॥ ७२० ॥ अ० ५ । २ । १३० ॥

वयस् नाम अवस्था अर्थ में पूरण प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय हो। जैसे—पञ्चमोऽस्यास्ति मासः संवत्सरो वा पञ्चमी उष्ट्रः; नवमी; दशमी इत्यादि।

यहां 'अवस्था' ग्रहण इसलिये किया है कि पञ्चमवान् ग्रामरागः, यहां इनि न हुआ ॥७२०॥

सुखादिभ्यश्च ॥ ७२१ ॥ अ० ५ । २ । १३१ ॥

सुख आदि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय हो। जैसे—सुखमस्यास्ति सुखी, दुःखी इत्यादि ॥ ७२१ ॥

धर्म्मशीलवर्णान्ताच्च ॥ ७२२ ॥ अ० ५ । २ । १३२ ॥

धर्म्म शील और वर्ण ये शब्द जिनके अन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से इनि प्रत्यय हो। जैसे—ब्राह्मणस्य धर्म्मः ब्राह्मणधर्म्मः सोऽस्यास्तीति ब्राह्मणधर्म्मी; ब्राह्मणशीली; ब्राह्मणवर्णी इत्यादि ॥ ७२२ ॥

हस्ताज्जातौ ॥ ७२३ ॥ अ० ५ । २ । १३३ ॥

हस्त शब्द से जाति अर्थ में इनि प्रत्यय हो। जैसे—हस्ती, हस्तिनौ, हस्तिनः।

यहां 'जाति' इसलिये है कि—हस्तवान् पुरुषः, यहां इनि न हो ॥ ७२३ ॥

पुष्करादिभ्यो देशे ॥ ७२४ ॥ अ० ५ । २ । १३५ ॥

देश अर्थ में पुष्कर आदि शब्दों से इनि प्रत्यय हो। जैसे—पुष्करी देशः; पुष्करिणी पद्मिनी।

यहां 'देश' ग्रहण इसलिये है कि—पुष्करवान् तडागः+, यहां इनि प्रत्यय न हो ॥७२४॥

वा०—इनिप्रकरणे बलाद्बाहूरुपूर्वपदादुपसंख्यानम् ॥ ७२५ ॥

बाहु और ऊरु जिसके पूर्व हों, ऐसे बल प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय हो। जैसे—बाहुबलमस्यास्ति स बाहुबली; ऊरुबली ॥ ७२५ ॥

वा०—सर्वादेश्च ॥ ७२६ ॥

+ यहां (वातातीसाराभ्यां०) इस सूत्र से लेकर जो इनि प्रत्यय विधान किया है, सो (अत इनिठनौ) इस लिखित सूत्र से इनि होजाता, फिर विधान नियमार्थ है। अर्थात् इन २ प्रातिपदिकों और इन २ विशेष अर्थों में इनि ही हो ठन् न हो ॥

सर्व शब्द जिसके आदि में हो, ऐसे प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय हो।

जैसे—सर्वधनमस्यास्ति स सर्वधनी; सर्वबीजी; सर्वकेशी नटः इत्यादि ॥ ७२६ ॥

वा०—अर्थाच्चासंनिहिते ॥ ७२७ ॥

जिसके निकट पदार्थ न हों, और उनकी चाहना हो, ऐसे अर्थ में अर्थ शब्द से इनि प्रत्यय हो। जैसे—अर्थमभीप्सति अर्थी।

यहां 'असन्निहित' ग्रहण इसलिये है कि—अर्थवान्, यहां इनि प्रत्यय न हो ॥७२७॥

वा०—तदन्ताच्च ॥ ७२८ ॥

अर्थ शब्द जिनके अन्त में हो, उनसे भी इनि प्रत्यय हो। जैसे—धान्यार्थी; हिरण्यार्थी इत्यादि।

इन सब वार्त्तिकों में भी यही नियम समझना चाहिये कि इन विशेष अर्थों में और शब्दों से इनि ही हो, ठन् न हो ॥ ७२८ ॥

बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ॥ ७२९ ॥ अ० ५ । २ । १३६ ॥

बलादि प्रातिपदिकों से मतुप् प्रत्यय विकल्प करके हो, पक्ष में इनि समझो। जैसे—बलमस्यास्तीति बलवान्, बली; उत्साहवान्, उत्साही; उद्भाववान्, उद्भावी इत्यादि ॥ ७२९ ॥

संज्ञायां मन्माभ्याम् ॥ ७३० ॥ अ० ५ । २ । १३७ ॥

मत्वर्थ में मन्नत और मान्त प्रातिपदिकों से संज्ञाविषय में इनि प्रत्यय हो। जैसे—प्रथिमिनी; दामिनी; होमिनी; सोमिनी।

यहां 'संज्ञा' ग्रहण इसलिये है कि—सोमवान्; तोमवान् इत्यादि में इनि न हो ॥७३०॥

कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः ॥ ७३१ ॥ अ० ५ । २ । १३८ ॥

जल और सुख के वाची कम् और शम् मकारान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में ब, भ, युस्, ति, तु, त और यस् प्रत्यय हों। जैसे—कम्बः; शम्बः; कम्भः; शम्भः; कंयुः; शंयुः; कन्तिः; शन्तिः; कन्तुः; शन्तुः; कन्तः; शन्तः; कंयः; शंयः।

यहां युस् और यस् प्रत्यय में सकार पदसंज्ञा होने के लिये है। इससे मकार को अनुस्वार और परसवर्ण होते हैं, और जो भसंज्ञा हो तो मकार ही बना रहे ॥ ७३१ ॥

अहंशुभमोर्युस् ॥ ७३२ ॥ अ० ५ । २ । १४० ॥

अहं और शुभम् अव्ययसंज्ञक शब्दों से मत्वर्थ में युस् प्रत्यय हो। जैसे—अहंयुः, यह अहंकारी का नाम है; शुभंयुः, यह कल्याणकारी की संज्ञा है ॥ ७३२ ॥

—यह द्वितीय पाद समाप्त हुआ ॥

अथ तृतीयः पादः—

प्राग्दिशो विभक्तिः ॥ ७३३ ॥ अ० ५ । ३ । १ ॥

यह अधिकार सूत्र है।

जो दिक् शब्द के उच्चारण से पूर्व २ प्रत्यय विधान करेंगे, उन २ की विभक्तिसंज्ञा जाननी चाहिये ॥ ७३३ ॥

किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ॥ ७३४ ॥ अ० ५ । ३ । २ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है।

यहां से आगे किम् शब्द, द्वि आदि से भिन्न सर्वनाम और बहु प्रातिपदिकों से प्रत्ययों का विधान जानना चाहिये ॥ ७३४ ॥

इदम इश् ॥ ७३५ ॥ अ० ५ । ३ । ३ ॥

विभक्तिसंज्ञक प्रत्ययों के परे इदम् शब्द को इश् आदेश हो। जैसे—इतः; इह।

यहां इश् आदेश में शकार सब के स्थान में आदेश होने के लिये है ॥ ७३५ ॥

एतेतौ रथोः ॥ ७३६ ॥ अ० ५ । ३ । ४ ॥

जो प्राग्दिशीय रेफादि और थकारादि विभक्ति परे हों, तो इदम् शब्द को एत और इत् आदेश होवें। जैसे—एतर्हि; इत्थम् ॥ ७३६ ॥

सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ॥ ७३७ ॥ अ० ५ । ३ । ६ ॥

जो दकारादि प्रत्यय परे हों, तो सर्व शब्द को स आदेश विकल्प करके हो। जैसे—सर्वदा; सदा ॥ ७३७ ॥

पञ्चम्यास्तसिल् ॥ ७३८ ॥ अ० ५ । ३ । ७ ॥

किम् सर्वनाम और बहु प्रातिपदिकों से पञ्चमी विभक्ति के स्थान में तसिल् प्रत्यय हो। जैसे—कस्मादिति कुतः; यस्मादिति यतः; ततः; बहुतः इत्यादि ॥ ७३८ ॥

पर्य्यभिभ्यां च ॥ ७३९ ॥ अ० ५ । ३ । ९ ॥

परि और अभि शब्दों से तसिल् प्रत्यय हो। जैसे—परितः—चारों ओर से; अभितः—सन्मुख से ॥ ७३९ ॥

सप्तम्यास्त्रल् ॥ ७४० ॥ अ० ५ । ३ । १० ॥

किम् सर्वनाम और बहु शब्दों से परे सप्तमी विभक्ति के स्थान में त्रल् प्रत्यय हो। जैसे—कस्मिन्निति कुत्र; सर्वस्मिन्निति सर्वत्र; यत्र; तत्र इत्यादि ॥ ७४० ॥

इदमो हः ॥ ७४१ ॥ अ० ५ । ३ । ११ ॥

इदम् शब्द से सप्तमी के स्थान में ह प्रत्यय हो। जैसे—अस्मिन्निति इह ॥ ७४१ ॥

किमोऽत् ॥ ७४२ ॥ अ० ५ । ३ । १२ ॥

किम् शब्द से सप्तमी के स्थान में अत् प्रत्यय हो। जैसे—कस्मिन्निति क ॥ ७४२ ॥

इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ ७४३ ॥ अ० ५ । ३ । १४ ॥

इतर अर्थात् पञ्चमी सप्तमी से अन्य विभक्तियों के स्थान में भी उक्त प्रत्यय देखने में आते हैं ॥ ७४३ ॥

इसमें विशेष यह है कि—

वा०—भवदादिभिर्योगे ॥ ७४४ ॥

भवान्, दीर्घायुः, आयुष्मान्, देवानांप्रियः इन चार शब्दों के योग में पूर्व सूत्र से प्रत्ययविधान समझना चाहिये। अर्थात् सूत्र से जो सामान्य विधान था, उसको वार्त्तिक से विशेष जनाया है।

जैसे—स भवान्; तत्र भवान्; ततो भवान्; तम्भवन्तम्; तत्र भवन्तम्; ततो भवन्तम्; तेन भवता; तत्र भवता; ततो भवता; तस्मै भवते; तत्र भवते; ततो भवते; तस्माद्भवतः; तत्र भवतः; ततो भवतः; तस्य भवतः; तत्र भवतः; ततो भवतः; तस्मिन् भवति; तत्र भवति; ततो भवति। स दीर्घायुः; तत्र दीर्घायुः; ततो दीर्घायुः। स आयुष्मान्; तत्रायुष्मान्; तत आयुष्मान्। स देवानांप्रियः; तत्र देवानांप्रियः; ततो देवानांप्रियः इत्यादि ॥ ७४४ ॥

सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ॥ ७४५ ॥ अ० ५ । ३ । १५ ॥

सर्व एक अन्य किम् यद् और तद् प्रातिपदिकों से काल अर्थ में सप्तमी के स्थान में दा प्रत्यय हो।

यह सूत्र त्रल् प्रत्यय का बाधक है। जैसे—सर्वस्मिन् काले इति सर्वदा; एकस्मिन् काले एकदा; अन्यदा; कदा; यदा; तदा इत्यादि।

यहां 'काल' इसलिये कहा है कि—सर्वत्र देशे, यहां दा प्रत्यय न हो ॥ ७४५ ॥

इदमो र्हिल् ॥ ७४६ ॥ अ० ५ । ३ । १६ ॥

काल अर्थ में इदम् शब्द से सप्तमी के स्थान में र्हिल् प्रत्यय हो। जैसे—अस्मिन् काले एतर्हि।

यहां काल की अनुवृत्ति आने से 'इह देशे' इस प्रयोग में र्हिल् प्रत्यय नहीं होता ॥ ७४६ ॥

अधुना ॥ ७४७ ॥ अ० ५ । ३ । १७ ॥

कालाधिकरण अर्थ में इदम् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में धुना प्रत्यय और इदम् शब्द को अश् भाव निपातन करने से अधुना शब्द बनता है। जैसे—अस्मिन् काले इति अधुना ॥ ७४७ ॥

दानीं च ॥ ७४८ ॥ अ० ५ । ३ । १८ ॥

काल अर्थ में वर्त्तमान इदम् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में दानीं प्रत्यय हो। जैसे—अस्मिन् काले इदानीम् ॥ ७४८ ॥

तदो दा च ॥ ७४९ ॥ अ० ५ । ३ । १९ ॥

काल अर्थ में वर्त्तमान तद् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में दा, और चकार से दानीं प्रत्यय हों। जैसे—तस्मिन् काले तदा; तदानीम् ॥ ७४९ ॥

तयोर्दार्हिलौ च छन्दसि ॥ ७५० ॥ अ० ५ । ३ । २० ॥

इदम् और तद् दोनों शब्दों से वैदिकप्रयोगविषय में सप्तमी विभक्ति के स्थान में यथासंख्य करके दा और र्हिल् प्रत्यय हों। जैसे—अस्मिन् काले इदा; तस्मिन् काले तर्हि ॥७५०॥

सद्यःपरुत्परार्य्यैषमःपरेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः ॥ ७५१ ॥ अ० ५ । ३ । २२ ॥

यहां सप्तमी विभक्ति और काल की अनुवृत्ति आती है।

इस सूत्र में काल अर्थ में सद्यः आदि शब्द सप्तमी विभक्ति के स्थान में द्यस् आदि प्रत्ययान्त निपातन किये हैं।

जैसे—समाने अहनि सद्यः—समान शब्द को स आदेश और द्यस् प्रत्यय दिवस् अर्थ में हुआ है। पूर्वस्मिन् सम्वत्सरे परुत्; पूर्वतरे सम्वत्सरे परारि—पूर्व और पूर्वतर शब्दों को पर आदेश और उत् तथा आरीच् प्रत्यय सम्वत्सर अर्थ में यथासंख्य करके होते हैं। अस्मिन् सम्वत्सरे ऐषमः—यहां इदम् शब्द से सम्वत्सर अर्थ में समसण् प्रत्यय हुआ है, उसके अण्भाग का लोप होकर इदम् के इकार को वृद्धि होजाती है। परस्मिन्नहनि परेद्यवि—यहां पर शब्द से दिन अर्थ में एद्यवि प्रत्यय होगया है। अस्मिन्नहनि अद्य—यहां इदम् शब्द को अशभाव और द्य प्रत्यय दिन अर्थ में किया है।

और पूर्व अन्य अन्यतर इतर अपर अधर उभय और उत्तर शब्दों से दिन अर्थ अभिधेय रहे, तो एद्युच् प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—पूर्वस्मिन्नहनि पूर्वेद्युः; अन्यस्मिन्नहनि अन्येद्युः; अन्यतरस्मिन्नहनि अन्यतरेद्युः; इतरस्मिन्नहनि इतरेद्युः; अपरस्मिन्नहनि अपरेद्युः; अधरस्मिन्नहनि अधरेद्युः; उत्तरस्मिन्नहनि उत्तरेद्युः; उभयोरह्नोः उभयेद्युः ॥७५१॥

वा०—द्युश्चोभयात् ॥ ७५२ ॥

उभय शब्द से द्यु प्रत्यय भी हो। जैसे—तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युः ॥ ७५२ ॥

प्रकारवचने थाल् ॥ ७५३ ॥ अ० ५ । ३ । २३ ॥

यहां भी किम् सर्वनाम आदि शब्दों की अनुवृत्ति चली आती है।

प्रकारसमानाधिकरण किम् सर्वनाम और बहु प्रातिपदिकों से स्वार्थ में थाल् प्रत्यय हो। जैसे—तेन प्रकारेण तथा; यथा; सर्वथा; इतरथा; अन्यथा; बहुथा इत्यादि ॥ ७५३ ॥

इदमस्थमुः ॥ ७५४ ॥ अ० ५ । ३ । २४ ॥

प्रकारसमानाधिकरण इदम् शब्द से स्वार्थ में थाल् का अपवाद थमु प्रत्यय हो।

उकार की इत्संज्ञा होकर लोप होजाता है। [जैसे—] अनेन प्रकारेण इत्थम् ॥७५४॥

किमश्च ॥ ७५५ ॥ अ० ५ । ३ । २५ ॥

प्रकारसमानाधिकरण किम् शब्द से भी स्वार्थ में थमु प्रत्यय होवे। जैसे—केन प्रकारेण कथम् ॥ ७५५ ॥

था हेतौ च छन्दसि ॥ ७५६ ॥ अ० ५ । ३ । २६ ॥

यहां पूर्व सूत्र से किम् और प्रकारवचन शब्द की अनुवृत्ति आती है।

वैदिक प्रयोगविषय में हेतुसमानाधिकरण किम् प्रातिपदिक से था प्रत्यय हो।

यह थमु प्रत्यय का बाधक है। [जैसे—] केन हेतुना इति कथा; केन प्रकारेण इति कथा ॥ ७५६ ॥

दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः ॥ ॥ ७५७ ॥ अ० ५ । ३ । २७ ॥

सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमासमर्थ दिशा देश और काल अर्थों में दिशावाची पूर्वादि शब्दों से स्वार्थ में अस्ताति प्रत्यय होवे। जैसे—[सप्तमीसमर्थ से—] पूर्वस्यां दिशि पूर्वस्मिन् देशे काले वा पुरस्तात्; अधस्तात्। पञ्चमीसमर्थ से—पुरस्तादागतः। प्रथमासमर्थ से—पुरस्ताद्रमणीयम् इत्यादि।

यहां समर्थविभक्ति और दिशा आदि अर्थों का यथासंख्य अभीष्ट नहीं है। यहां 'दिशावाचियों का' ग्रहण इसलिये है कि—ऐन्द्र्यां दिशि वसति, यहां ऐन्द्री शब्द दिशा का गौण नाम है। 'सप्तमी आदि समर्थविभक्तियों का' ग्रहण इसलिये है कि—पूर्वं ग्रामं गतः, यहां भी अस्ताति प्रत्यय नहीं होता। और 'दिग् देश काल अर्थों' का ग्रहण इसलिये है कि—पूर्वस्मिन् गुरौ वसति, यहां भी प्रत्यय न होवे।

अस्ताति प्रत्यय में इकार तकार की रक्षा के लिये है ॥ ७५७ ॥

दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ॥ ७५८ ॥ अ० ५ । ३ । २८ ॥

यह सूत्र, अस्ताति प्रत्यय पूर्वसूत्र से प्राप्त है, उसका अपवाद है।

दिशा देश और काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तमी पञ्चमी और प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से स्वार्थ में अतसुच् प्रत्यय होवे। जैसे—दक्षिणतो वसति; दक्षिणत आगतः; दक्षिणतो रमणीयम्; उत्तरतो वसति; उत्तरत आगतः; उत्तरतो रमणीयम्।

अतसुच् प्रत्यय के उच्मात्र की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। और इस सूत्र में दक्षिण शब्द का सम्बन्ध काल के साथ असम्भव होने से नहीं होता, किन्तु दिशा और देश दो ही अर्थों के साथ होता है॥ ७५८॥

विभाषा परावराभ्याम्॥ ७५९॥ अ० ५। ३। २९॥

यहां अप्राप्तविभाषा इसलिये समझना चाहिये कि अतसुच् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं। अतसुच् का विकल्प होने से पक्ष में अस्ताति भी होजाता है।

अस्ताति प्रत्यय के अर्थों में पर और अवर शब्दों से अतसुच् प्रत्यय विकल्प करके हो, और पक्ष में अस्ताति होजावे।

जैसे—परतो वसति; परत आगतः; परतो रमणीयम्; परस्ताद्वसति; परस्तादागतः; परस्ताद्रमणीयम्; अवरतो वसति; अवरत आगतः; अवरतो रमणीयम्; अवस्ताद्वसति; अवस्तादागतः; अवस्ताद्रमणीयम्॥ ७५९॥

अञ्चेर्लुक्॥ ७६०॥ अ० ५। ३। ३०॥

क्विबन्त अञ्चुधातु जिनके अन्त में हो, ऐसे दिशावाची शब्दों से परे अस्ताति प्रत्यय का लुक् हो जावे। जैसे—प्राच्यां दिशि वसति प्राग्वसति; प्रागागतः; प्राग्रमणीयम्।

यहां तद्धितसंज्ञक अस्ताति प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक्तद्धित०) इस सूत्र से स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् होजाता है॥ ७६०॥

उपर्य्युपरिष्टात्॥ ७६१॥ अ० ५। ३। ३१॥

यहां ऊर्ध्व शब्द को उपभाव और रिल् तथा रिष्टातिल् प्रत्यय अस्ताति के अर्थ में निपातन किये हैं। जैसे—ऊर्ध्वायां दिशि वसति उपरि वसति; उपर्य्यागतः; उपरि रमणीयम्; उपरिष्टाद्वसति; उपरिष्टादागतः; उपरिष्टाद्रमणीयम्॥ ७६१॥

पश्चात्॥ ७६२॥ अ० ५। ३। ३२॥

यहां अपर शब्द को पश्च आदेश और आति प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—अपरस्यां दिशि वसति पश्चाद्वसति; पश्चादागतः; पश्चाद्रमणीयम्॥ ७६२॥

वा०—दिक्पूर्वपदस्य च॥ ७६३॥

दिशा जिसके पूर्वपद में हो, उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश और आति प्रत्यय हो। जैसे—दक्षिणपश्चात्; उत्तरपश्चात्॥ ७६३॥

वा०—अर्द्धोत्तरपदस्य च समासे ॥ ७६४ ॥

दिशावाची शब्द जिसके पूर्वपद में हों, और समास में अर्द्ध शब्द जिसके उत्तरपद में हो, ऐसे अपर शब्द को पश्च आदेश होवे। जैसे—दक्षिणपश्चार्द्धः; उत्तरपश्चार्द्धः ॥७६४॥

वा०—अर्द्धे च ॥ ७६५ ॥

पूर्व पद के विना भी अर्द्ध जिसके उत्तरपद में हो, उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश हो। जैसे—पश्चार्द्धः ॥ ७६५ ॥

पश्च पश्चा च छन्दसि ॥ ७६६ ॥ अ० ५ । ३ । ३३ ॥

यहां अपर शब्द को पश्च आदेश अ तथा आ प्रत्यय वैदिकप्रयोगविषय में होते हैं, और चकार से आति प्रत्यय भी हो। जैसे—पश्च सिंहः; पश्चा सिंहः; पश्चात् सिंहः ॥७६६॥

उत्तराधरदक्षिणादातिः ॥ ७६७ ॥ अ० ५ । ३ । ३४ ॥

उत्तर अधर और दक्षिण शब्दों से अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में आति प्रत्यय होवे। जैसे - उत्तरस्यां दिशि वसति उत्तराद्वसति; उत्तरादागतः; उत्तराद्रमणीयम्; अधराद्वसति; अधरादागतः; अधराद्रमणीयम्; दक्षिणाद्वसति; दक्षिणादागतः; दक्षिणाद्रमणीयम् ॥७६७॥

एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ॥ ७६८ ॥ अ० ५ । ३ । ३५ ॥

यहां एनप् प्रत्यय में अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि एनप् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है। और पूर्व सूत्र से उत्तर आदि तीनों शब्दों की अनुवृत्ति आती है।

सप्तमी और प्रथमासमर्थ उत्तर अधर और दक्षिण शब्दों से निकट अर्थ में आति प्रत्यय का बाधक एनप् प्रत्यय विकल्प करके हो, पक्ष में आति भी हो जावे।

जैसे—उत्तरस्यां दिशि वसति उत्तरेण वसति; उत्तराद्वसति; उत्तरतो वसति; उत्तरेण रमणीयम्; उत्तराद्रमणीयम्; उत्तरतो रमणीयम्; अधरेण वसति; अधराद्वसति; अधस्ताद्वसति; अधरेण रमणीयम्; अधराद्रमणीयम्; अधस्ताद्रमणीयम्; दक्षिणेन वसति; दक्षिणाद्वसति; दक्षिणतो वसतिः दक्षिणेन रमणीयम्; दक्षिणाद्रमणीयम्; दक्षिणतो रमणीयम्।

यहां 'अदूर' ग्रहण इसलिये है कि—उत्तराद्वसति, यहां एनप् न होवे। और 'पञ्चमीसमर्थ का निषेध' इसलिये किया है कि—उत्तरादागतः, यहां भी एनप् प्रत्यय न होवे।

और यहां से आगे असि प्रत्यय के पूर्व २ सब सूत्रों में पञ्चमीसमर्थ का निषेध समझना चाहिये ॥ ७६८ ॥

दक्षिणादाच् ॥ ७६९ ॥ अ० ५ । ३ । ३६ ॥

सप्तमी और प्रथमासमर्थ दक्षिण शब्द से अस्ताति के अर्थ में आच् प्रत्यय हो। जैसे—दक्षिणा वसति; दक्षिणा रमणीयम्।

यहां 'पञ्चमी का निषेध' इसलिये है कि—दक्षिणत आगतः, यहां आच् प्रत्यय न हो ॥ ७६९ ॥

आहि च दूरे ॥ ७७० ॥ अ० ५ । ३ । ३७ ॥

यहां पूर्व सूत्र से दक्षिण शब्द की अनुवृत्ति आती है।

दक्षिण प्रातिपदिक से अस्ताति के अर्थ में आहि, चकार से आच् प्रत्यय होवे। जैसे—दक्षिणाहि वसति; दक्षिणा वसति; दक्षिणाहि रमणीयम्; दक्षिणा रमणीयम्।

यहां 'दूर' ग्रहण इसलिये है कि—दक्षिणतो वसति, यहां न हो। और 'पञ्चमीसमर्थ का निषेध' इसलिये है कि—दक्षिणत आगतः, यहां भी आहि प्रत्यय न होवे ॥ ७७० ॥

उत्तराच्च ॥ ७७१ ॥ अ० ५ । ३ । ३८ ॥

उत्तर शब्द से अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में दूर अर्थ वाच्य रहे, तो आच् और आहि प्रत्यय हों। जैसे—उत्तरा वसति; उत्तराहि वसति; उत्तरा रमणीयम्; उत्तराहि रमणीयम्।

यहां 'दूर' ग्रहण इसलिये है कि—उत्तरेण प्रयाति, यहां न हो। और 'पञ्चमीसमर्थ का निषेध' इसलिये है कि—उत्तरादागतः, यहां भी आहि प्रत्यय न होवे ॥ ७७१ ॥

पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम् ॥७७२॥ अ० ५ । ३ । ३९ ॥

सप्तमी पञ्चमी और प्रथमासमर्थ पूर्व अधर और अवर प्रातिपदिकों से अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में असि प्रत्यय, और पूर्व आदि शब्दों को क्रम से पुर् अध् और अव् आदेश भी होवें।

जैसे—पूर्वस्यां दिशि वसति पुरो वसति; पुर आगतः; पुरो रमणीयम्; अधो वसति; अध आगतः; अधो रमणीयम्; अवो वसति; अव आगतः; अवो रमणीयम् ॥ ७७२ ॥

अस्ताति च ॥७७३॥ अ० ५ । ३ । ४० ॥

अस्ताति प्रत्यय परे हो, तो भी पूर्व आदि तीनों शब्दों को पुर् आदि आदेश क्रम से हों। और यहां अस्ताति प्रत्यय भी इस आदेश-विधानरूप ज्ञापक से ही समझना चाहिये। जैसे—पुरस्ताद्वसति; पुरस्तादागतः; पुरस्ताद्रमणीयम्; अधस्ताद्वसति; अधस्तादागतः; अधस्ताद्रमणीयम् ॥ ७७३ ॥

विभाषाऽवरस्य ॥ ७७४ ॥ अ० ५ । ३ । ४१ ॥

यहां प्राप्तविभाषा है। पूर्व सूत्र से नित्य ही अव् आदेश प्राप्त है।

अवर शब्द को अस्ताति प्रत्यय के परे अव् आदेश विकल्प करके हो। जैसे—अवस्ताद्वसति; अवस्तादागतः; अवस्ताद्रमणीयम् ॥ ७७४ ॥

संख्याया विधार्थे धा ॥ ७७५ ॥ अ० ५ । ३ । ४२ ॥

क्रिया के प्रकार अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में धा प्रत्यय हो। जैसे—एकधा भुङ्क्ते; द्विधा गच्छति; चतुर्धा; पञ्चधा इत्यादि ॥ ७७५ ॥

याप्ये पाशप् ॥ ७७६ ॥ अ० ५ । ३ । ४७ ॥

याप्य—निन्दित—अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में पाशप् प्रत्यय हो। जैसे—कुत्सितो वैयाकरणो वैयाकरणपाशः; याज्ञिकपाशः इत्यादि।

जो पुरुष व्याकरण शास्त्र में प्रवीण और बुरे आचरण करता हो, उसकी 'वैयाकरणपाश' संज्ञा इसलिये नहीं होती कि जिस गुण के विद्यमान होने से वैयाकरण शब्द की प्रवृत्ति उस पुरुष में होती है, उसी गुण की निन्दा में प्रत्यय होता है ॥७७६॥

एकादाकिनिच्चासहाये ॥ ७७७ ॥ अ० ५ । ३ । ५२ ॥

असहायवाची एक शब्द से स्वार्थ में आकिनिच् प्रत्यय हो, और चकार से कन् प्रत्यय और लुक् भी हों। जैसे—एकाकी, एककः, एकः।

यहां आकिनिच् और कन् दोनों का लुक् समझना चाहिये, परन्तु प्रत्ययविधान व्यर्थ न हो इसलिये पक्ष में लुक् होता है ॥ ७७७ ॥

अतिशायने तमबिष्ठनौ ॥ ७७८ ॥ अ० ५ । ३ । ५५ ॥

अतिशायन—प्रकृत्यर्थ की उन्नति—अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय हों।

जैसे—अतिशयितः श्रेष्ठः श्रेष्ठतमः; वैयाकरणतमः; आढ्यतमः; दर्शनीयतमः; सुकुमारतमः इत्यादि। अयमेषामतिशयेन पटुः पटिष्ठः; लघिष्ठः; गरिष्ठः इत्यादि ॥ ७७८ ॥

तिङश्च ॥ ७७९ ॥ अ० ५ । ३ । ५६ ॥

यहां तद्धितप्रकरण में चतुर्थाध्याय के आदि में ङीबन्त आबन्त और प्रातिपदिकों से प्रत्ययविधान का अधिकार कर चुके हैं। इस कारण तिङन्त शब्दों से प्रत्ययविधान नहीं प्राप्त है, इसीलिये यह सूत्र पढ़ा है।

तिङन्त शब्दों से अतिशय अर्थ में तमप् प्रत्यय हो। जैसे—अयमेषु भृशं पचति पचतितमाम्; जल्पतितमाम् इत्यादि।

यहां पूर्वसूत्र से इष्ठन् प्रत्यय इसलिये नहीं आता कि प्रत्ययान्त गुणवाची शब्दों से लोक में वाच्य अर्थों के साथ सम्बन्ध दीखता है, क्रिया शब्दों के साथ नहीं ॥ ७७९ ॥

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ॥ ७८० ॥ अ० ५ । ३ । ५७ ॥

यहां तिङन्त की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से आती है।

जहां विभाग करने योग्य दो और व्यक्तियों का कहना उपपद हो, वहां सामान्य प्रातिपदिकों और तिङन्त शब्दों से अतिशय अर्थ में तरप् और ईयसुन् प्रत्यय हों।

जैसे—द्वाविमावाढ्यौ अयमनयोरतिशयेनाढ्यः आढ्यतरः; द्वाविमौ विद्वांसौ अयमनयोरतिशयेन विद्वान् विद्वत्तरः; प्राज्ञतरः; पचतितराम्; जल्पतितराम् इत्यादि। ईयसुन्—द्वाविमौ गुरू, अयमनयोरतिशयेन गरीयान्; पटीयान्; लघीयान् इत्यादि।

विभज्योपपद से—माथुराः पाटलिपुत्रेभ्य आढ्यतराः; वाराणसेया इतरेभ्यो विद्वत्तराः; दर्शनीयतराः इत्यादि। ईयसुन्—गरीयांसः; पटीयांसः इत्यादि ॥ ७८० ॥

अजादी गुणवचनादेव ॥ ७८१ ॥ अ० ५ । ३ । ५८ ॥

पूर्व सूत्रों में जो अजादि—इष्ठन्, ईयसुन्—प्रत्यय सामान्य करके कहे हैं, उनका यहां विषयनियम करते हैं, कि वे दोनों प्रत्यय गुणवाची प्रातिपदिक से ही होवें, अन्य से नहीं। उदाहरण पूर्व दे चुके हैं।

नियम होने से पाचकतरः, पाचकतमः इत्यादि में इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय नहीं होते। और प्रत्यय का नियम समझना चाहिये, प्रकृति का नहीं। अर्थात् गुणवाची प्रातिपदिकों से तरप् तमप् प्रत्यय भी होते हैं, और द्रव्यवाचक शब्दों से तरप् तमप् ही होते हैं, इष्ठन् और ईयसुन् नहीं होते ॥ ७८१ ॥

तुश्छन्दसि ॥ ७८२ ॥ अ० ५ । ३ । ५९ ॥

यहां पूर्व सूत्र से अजादि की अनुवृत्ति चली आती है। पूर्व सूत्र में गुणवाचियों से नियम किया है, इससे यहां प्राप्ति नहीं थी।

तृच् और तृन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से वेदविषय में इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय होवें। जैसे—आसुतिं करिष्ठः, 'अतिशयेन कर्त्ता' ऐसा विग्रह होगा; अतिशयेन दोग्ध्री दोहीयसी धेनुः।

यहां सामान्य भसंज्ञा में (भस्याढे०) इससे पुंवद्भाव होकर तृच् तृन् प्रत्ययों का लुक् हो जाता है ॥ ७८२ ॥

प्रशस्यस्य श्रः ॥ ७८३ ॥ अ० ५ । ३ । ६० ॥

अजादि प्रत्ययों के परे प्रशस्य शब्द को श्र आदेश होवे। जैसे—सर्व इमे प्रशस्याः अयमतिशयेन प्रशस्यः श्रेष्ठः; द्वाविमौ प्रशस्यौ अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः श्रेयान्।

तद्धितप्रत्ययों के परे भसंज्ञक एकाच् शब्दों को प्रकृतिभाव होने से श्र शब्द के टिभाग का लोप नहीं होता ॥ ७८३ ॥

ज्य च ॥ ७८४ ॥ अ० ५ । ३ । ६१ ॥

प्रशस्य शब्द को अजादि प्रत्ययों के परे ज्य आदेश भी हो। जैसे—सर्व इमे प्रशस्याः अयमतिशयेन प्रशस्यः ज्यायान्। अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः ज्येष्ठः; द्वाविमौ प्रशस्यौ अयमतिशयेन प्रशस्यः ज्यायान्।

यहां ईयसुन् के ईकार को आकारादेश (ज्यादादी०) इस वक्ष्यमाण सूत्र से हो जाता है ॥ ७८४ ॥

वृद्धस्य च ॥ ७८५ ॥ अ० ५ । ३ । ६२ ॥

वृद्ध शब्द को भी अजादि प्रत्ययों के परे ज्य आदेश होवे। जैसे—सर्व इमे वृद्धाः अयमेषामतिशयेन वृद्धः ज्येष्ठः; उभाविमौ वृद्धौ अयमनयोरतिशयेन वृद्धः ज्यायान्।

और (प्रियस्थिर०) इस वक्ष्यमाण सूत्र से वृद्ध शब्द को वर्ष आदेश भी होता है, परन्तु वृद्ध आदेश कहना व्यर्थ न होजावे, इसलिये पक्ष में समझना चाहिये। जैसे—वर्षिष्ठः, वर्षीयान् ॥ ७८५ ॥

अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ ॥ ७८६ ॥ अ० ५ । ३ । ६३ ॥

अन्तिक और बाढ शब्दों को यथासंख्य करके अजादि प्रत्ययों के परे नेद और साध आदेश होवें। जैसे—सर्वाणीमान्यन्तिकानि इदमेषामतिशयेनान्तिकं नेदिष्ठम्; उभे इमे अन्तिके इदमनयोरतिशयेनान्तिकं नेदीयः; सर्व इमे बाढमधीयते नेदिष्ठमधीयते; अयमस्मात् साधीयोऽधीते ॥ ७८६ ॥

युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् ॥ ७८७ ॥ अ० ५ । ३ । ६४ ॥

इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा इसलिये समझनी चाहिये, कि अजादि प्रत्ययों के परे कन् आदेश किसी सूत्र से प्राप्त नहीं।

युव और अल्प शब्दों के स्थान में अजादि प्रत्ययों के परे कन् आदेश विकल्प करके होवे।

जैसे—सर्व इमे युवानः अयमेषामतिशयेन युवा कनिष्ठः, यविष्ठः; द्वाविमौ युवानौ अयमनयोरतिशयेन युवा कनीयान्, यवीयान्; सर्व इमेऽल्पाः अयमतिशयेनाल्पः कनिष्ठः, अल्पिष्ठः; द्वाविमावल्पौ अयमतिशयेनाल्पः कनीयान्, अल्पीयान् ॥ ७८७ ॥

विन्मतोर्लुक् ॥ ७८८ ॥ अ० ५ । ३ । ६५ ॥

विन् और मतुप् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से अजादि प्रत्यय परे हों, तो विन् और मतुप् प्रत्यय का लुक् हो जावे।

जैसे—सर्व इमे स्रग्विणः अयमेषामतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः; मायिष्ठः इत्यादि; उभाविमौ स्रग्विणौ अयमनयोरतिशयेन स्रग्वी स्रजीयान्; अयमस्मात् स्रजीयान्; सर्व इमे धनवन्तः अयमेषामतिशयेन धनवान् धनिष्ठः; उभाविमौ धनवन्तौ अयमनयोरतिशयेन धनवान् धनीयान्; अयमस्मात् धनीयान् इत्यादि।

(प्रशस्यस्य श्रः) इस सूत्र से ले के यहां तक सब सूत्रों में आदेश विधानरूप ज्ञापक से अजादि प्रत्ययों—इष्ठन्, ईयसुन्—की उत्पत्ति उन २ प्रशस्य आदि प्रातिपदिकों से समझनी चाहिये ॥ ७८८ ॥

प्रशंसायां रूपप् ॥ ७८६ ॥ अ० ५ । ३ । ६६ ॥

प्रकृत्यर्थ की प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में रूपप् प्रत्यय होवे। जैसे—प्रशस्तो वैयाकरणो वैयाकरणरूपः; याज्ञिकरूपः; पाचकरूपः; उपदेशकरूपः; प्राज्ञरूपः इत्यादि।

यहां पूर्व से तिङन्त की भी अनुवृत्ति चली आती है। जैसे—पचतिरूपम्; पठतिरूपम्; जल्पतिरूपम्।

तद्धित प्रत्ययान्त आख्यात क्रियाओं से द्विवचन बहुवचन विभक्ति नहीं आती, और सब विभक्तियों के एकवचन भी नहीं होते, किन्तु अव्ययसंज्ञा होजाने से सब विभक्तियों के स्थान में अम् आदेश हो जाता है। परन्तु द्विवचनान्त और बहुवचनान्त क्रियाओं से तो तद्धित प्रत्यय हो जाते हैं। जैसे—पठतोरूपम्; पठन्तिरूपम् इत्यादि ॥ ७८६ ॥

ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ॥७६०॥ अ० ५ । ३ । ६७ ॥

समाप्ति होने में थोड़ी न्यूनता अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में कल्पप् देश्य और देशीयर् प्रत्यय होवें। जैसे—ईषदसमाप्ता विद्या विद्याकल्पः; विद्यादेश्यः; विद्यादेशीयः; ईषदसमाप्तः पटः पटकल्पः; पटदेश्यः; पटदेशीयः; मृदुकल्पः; मृदुदेश्यः; मृदुदेशीयः इत्यादि।

तिङन्त की भी अनुवृत्ति चली आती है। जैसे—पचतिकल्पम्; पठतिकल्पम्; पठतिदेश्यम्; पठतिदेशीयम्; पठतःकल्पम्; पठन्तिकल्पम् इत्यादि ॥ ७६० ॥

विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ॥ ७६१ ॥ अ० ५ । ३ । ६८ ॥

यहां भी अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि सुबन्त से पूर्व बहुच् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं। और यहां पूर्वसूत्र से ईषदसमाप्ति अर्थ की अनुवृत्ति भी चली आती है। ईषदसमाप्ति अर्थ में वर्त्तमान सुबन्त से पूर्व बहुच् प्रत्यय विकल्प करके होवे।

तृतीयाध्याय के प्रारम्भ में प्रत्ययों के धातु प्रातिपदिकों से परे होने का अधिकार कर चुके हैं, इसलिये यहां पुरस्तात् शब्द पढ़ा है कि प्रातिपदिकों के आदि में प्रत्यय हों। जैसे—ईषदसमाप्तो लेखः बहुलेखः; बहुपटुः; बहुमृदुः; बहुगुडा द्राक्षा इत्यादि।

विकल्प के कहने से 'कल्पप्' आदि प्रत्यय भी इन प्रातिपदिकों से होते हैं। और सुबन्तग्रहण तिङन्त की निवृत्ति के लिये है ॥ ७६१ ॥

प्रकारवचने जातीयर् ॥ ७६२ ॥ अ० ५ । ३ । ६६ ॥

प्रकार के कहने अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में जातीयर् प्रत्यय होवे। जैसे—एवम्प्रकारः एवञ्जातीयः; मृदुप्रकारः मृदुजातीयः; प्रमाणजातीयः; प्रमेयजातीयः इत्यादि ॥ ७६२ ॥

प्रागिवात्कः ॥ ७६३ ॥ अ० ५ । ३ । ७० ॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे (इवे प्रतिकृतौ) इस सूत्रपर्य्यन्त सब सूत्रों तथा अर्थों में सामान्य करके क प्रत्यय होगा। जैसे—अश्वकः; वृषभकः; गोकः इत्यादि।

तिङन्त की अनुवृत्ति इस सूत्र में नहीं आती, किन्तु उत्तरसूत्र में तो आती है ॥७६३॥

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ॥ ७६४ ॥ अ० ५ । ३ । ७१ ॥

यहां तिङन्त की भी अनुवृत्ति आती है। और यह सूत्र क प्रत्यय का अपवाद है। अव्यय सर्वनामसंज्ञक और तिङन्त शब्दों के टि भाग से पूर्व अकच् प्रत्यय होवे।

यहां भी प्रत्ययों का पर होना अधिकार होने से टि से पूर्व नहीं प्राप्त है, इसलिये प्राक्ग्रहण किया है। जैसे अव्ययों से—उच्चकैः; नीचकैः; शनकैः इत्यादि। सर्वनाम-संज्ञकों से—सर्वके, सर्वे; विश्वके, विश्वे; उभयके, उभये, यका; सका; या; सा; यकः; सकः; यः; सः; एषकः, एषः।

यहां प्रातिपदिक और सुबन्त दोनों की अनुवृत्ति चली आती है, इस कारण कहीं प्रातिपदिक के टि से पूर्व. और कहीं सुबन्त के टि से पूर्व अकच् प्रत्यय होता है।

प्रातिपदिक के टि से पूर्व—जैसे—युष्मकाभिः; अस्मकाभिः; युष्माभिः; अस्माभिः; युष्मकासु; अस्मकासु; युष्मासु; अस्मासु; युवकयोः; आवकयोः; युवयोः; आवयोः इत्यादि। सुबन्त के टि से पूर्व—जैसे—त्वयका; मयका; त्वया; मया; त्वयकि; मयकि; त्वयि; मयि इत्यादि। तिङन्त से—भवतकि; पचतकि; पठतकि; जल्पतकि इत्यादि ॥७६४॥

वा०—अकचप्रकरणे तूष्णीमः काम् ॥ ७६५ ॥

तूष्णीम् मकारान्त अव्यय शब्द के टि भाग से पूर्व अकच् प्रत्यय का बाधक काम् प्रत्यय होवे। जैसे—आसितव्यं किल तूष्णीकाम् ॥ ७६५ ॥

वा०—शीले को मलोपश्च ॥ ७६६ ॥

शील अर्थ में तूष्णीम् अव्यय शब्द से क प्रत्यय और तूष्णीम् शब्द के मकार का लोप हो जावे। जैसे—तूष्णींशीलः तूष्णीकः ॥ ७६६ ॥

कस्य च दः ॥ ७६७ ॥ अ० ५ । ३ । ७२ ॥

यहां अव्ययों के सम्बन्ध का सूत्रार्थ के साथ सम्भव होने से अव्यय की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से आती है, सर्वनाम की नहीं। क्योंकि सर्वनाम शब्द कोई ककारान्त नहीं है।

ककारान्त अव्ययों को अकच् प्रत्यय के संयोग में दकारान्त आदेश होवे। जैसे—धिक्, धकित्; हिरुक्, हिरकुत्; पृथक्, पृथकत् इत्यादि ॥ ७६७ ॥

अनुकम्पायाम् ॥ ७९८ ॥ अ० ५ । ३ । ७६ ॥

दूसरों के दुःखों को यथाशक्ति निवारण करने को 'अनुकम्पा' कहते हैं। अनुकम्पा अर्थ में वर्त्तमान सामान्य प्रातिपदिकों और तिङन्त शब्दों से यथाप्राप्त प्रत्यय हों।

जैसे—पुत्रकः; वत्सकः; दुर्बलकः; बुभुक्षितकः; ज्वरितकः इत्यादि। तिङन्तों से—शेतके; विश्वसितकि; स्वपितकि; प्राणितकि इत्यादि ॥ ७९८ ॥

ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ॥ ७९९ ॥ अ० ५ । ३ । ८३ ॥

यहां पूर्व सूत्र से लोप की अनुवृत्ति आती है।

इस प्रकरण में जो ठ अजादि प्रत्यय हैं, उनके परे प्रकृति के द्वितीय अच् से अन्य जो शब्दरूप है उसका लोप हो। ऊर्ध्व शब्द के ग्रहण से सब का लोप होजाता है।

जैसे—अनुकम्पितो देवदत्तः देविकः, देवियः, देविलः; यज्ञिकः, यज्ञियः, यज्ञिलः—यहां देवदत्त और यज्ञदत्त शब्द से ठ, घ और इलच् प्रत्यय क्रम से हुए हैं। अनुकम्पित उपेन्द्रदत्तकः उपडः, उपकः, उपियः, उपिलः, उपिकः—यहां उपेन्द्रदत्त शब्द से अडच्, वुच्, घ, इलच् तथा ठच् प्रत्यय होते हैं।

इस सूत्र में ठ को भी इक् आदेश हो जाता है। फिर अजादि के कहने से ठ प्रत्यय का भी ग्रहण हो जाता, फिर 'ठ प्रत्यय का' ग्रहण इसलिये है कि—जहां उक् प्रत्याहार से परे ठ के स्थान में क आदेश होता है, वहां भी दो अच् से अन्य वर्णों का लोप हो जावे। जैसे—अनुकम्पितो वायुदत्तः वायुकः; पितृकः ॥ ७९९ ॥

वा०—द्वितीयादचो लोपे संध्यक्षरस्य द्वितीयत्वे तदादेर्लोपो वक्तव्यः ॥ ८०० ॥

दो अक्षरों से अन्य वर्णों का जो लोप सूत्र से कहा है, सो जो द्वितीय अक्षर सन्ध्यक्षर—ए, ऐ, ओ, औ—हों, तो वहां सन्ध्यक्षर का भी लोप हो जावे। जैसे—लहोडः, लहिकः; कहोडः, कहिकः।

यहां लहोड कहोड किसी मनुष्यविशेष की संज्ञा है, उन में हकारविशिष्ट ओकार का भी लोप हो जाता है ॥ ८०० ॥

वा०—चतुर्थात् ॥ ८०१ ॥

द्वितीय अच् से परे अन्य भाग का जो लोप कहा है, सो चतुर्थ अच् से परे भी हो जावे। जैसे—बृहस्पतिदत्तकः बृहस्पतिकः, बृहस्पतियः, बृहस्पतिलः इत्यादि ॥ ८०१ ॥

वा०—अनजादौ च ॥ ८०२ ॥

अजादि प्रत्यय के परे लोप कहा है, सो हलादि प्रत्ययों के परे भी द्वितीय अच् से ऊर्ध्व का लोप हो। जैसे—देवदत्तकः देवकः; यज्ञदत्तकः यज्ञकः—यहां कन् प्रत्यय हुआ है ॥८०२॥

वा०—लोपः पूर्वपदस्य च ॥ ८०३ ॥

अजादि हलादि सामान्य प्रत्ययों के परे संज्ञावाची शब्दों के पूर्वपद का भी लोप हो जावे। जैसे—देवदत्तको दत्तकः, यज्ञदत्तको दत्तकः, दत्तिकः, दत्तियः, दत्तिलः इत्यादि ॥८०३॥

वा०—अप्रत्यये तथैवेष्टः ॥ ८०४ ॥

कोई भी प्रत्यय न परे हो, तो भी पूर्वपद का लोप होवे। जैसे—देवदत्तो दत्तः इत्यादि ॥ ८०४ ॥

वा०—उवर्णाल्ल इलस्य च ॥ ८०५ ॥

उवर्णान्त संज्ञा शब्द से परे जो इलच् प्रत्यय उसके इकार का लोप हो। जैसे—भानुदत्तो भानुलः; वसुदत्तो वसुलः इत्यादि ॥ ८०५ ॥

वा०—एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपः ॥ ८०६ ॥

एकाक्षर जिनका पूर्वपद हो, उनके उत्तरपद का लोप हो, अजादि प्रत्ययों के परे। जैसे—वागाशीः; वाचिकः; स्रुचिकः; त्वचिकः इत्यादि ॥ ८०६ ॥

किंयत्तदो निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ॥८०७॥ अ० ५ । ३ । ९२॥

दो में से एक का जहां निर्द्धारण—पृथक्—करना हो, वहां किम् यत् और तद् प्रातिपदिकों से डतरच् प्रत्यय होवे।

जातिवाची क्रियावाची गुणवाची वा संज्ञा शब्दों के समुदाय से एकदेश का पृथक् करना होता है। जैसे—कतरो भवतोः कठः; कतरो भवतोः कारकः; कतरो भवतोः पटुः; कतरो भवतोर्देवदत्तः; यतरो भवतोः कठः; यतरो भवतोः कारकः; यतरो भवतोः पटुः; यतरो भवतोर्देवदत्तः ततर आगच्छतु इत्यादि।

यहां महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है। इससे को भवतोर्देवदत्तः स आगच्छतु इत्यादि वाक्यों में डतरच् प्रत्यय नहीं होता ॥८०७॥

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ॥ ८०८ ॥ अ० ५ । ३ । ९३॥

पूर्व सूत्र से किम् आदि शब्दों और एक के निर्द्धारण की अनुवृत्ति आती है।

बहुतों में से एक का निर्द्धारण करना अर्थ हो, तो जाति के पूछने अर्थ में वर्त्तमान किम् आदि शब्दों से विकल्प करके डतरच् प्रत्यय होवे। जैसे—कतमो भवतां कठः; यतमो भवतां कठः ततम आगच्छतु इत्यादि।

यहां विकल्प के होने से पक्ष में इसी अर्थ में अकच् भी होता है। जैसे—यको भवतां कठः सक आगच्छतु। और महाविभाषा के चले आने से वाक्य भी बना रहता है। जैसे—यो भवतां कठः स आगच्छतु।

यहां 'जातिपरिप्रश्न' का ग्रहण इसलिये है कि—को भवतां देवदत्तः, यहां निज की संज्ञा के प्रश्न में किम् शब्द से डतमच् प्रत्यय नहीं होता। और परिप्रश्न का सम्बन्ध एक किम् शब्द के साथ ही समझना चाहिये, क्योंकि यत् तत् के साथ वह अर्थ सम्भवित नहीं होता ॥ ८०८ ॥

इवे प्रतिकृतौ ॥ ८०९ ॥ अ० ५ । ३ । ९६ ॥

यहां पूर्व से परिप्रश्न की अनुवृत्ति आती है।

उपमावाचक अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होवे। जैसे—अश्व इव प्रतिकृतिः अश्वकः; गर्दभकः; उष्ट्रकः।

यहां 'प्रतिकृति' ग्रहण इसलिये है कि—गौरिव गवयः, यहां केवल उपमा ही है प्रतिकृति नहीं, इससे कन् प्रत्यय नहीं होता ॥ ८०९ ॥

लुम्मनुष्ये ॥ ८१० ॥ अ० ५ । ३ । ९८ ॥

प्रतिकृति सादृश्यार्थसंज्ञा हो, तो उस अर्थ में विहित कन् प्रत्यय का लुप् होजावे। जैसे—चञ्चेव मनुष्यः चञ्चा; दासी; खरकुटी इत्यादि, यहां तद्धित-प्रत्यय का लुप् होने से लिङ्ग और वचन पूर्व के ही हो जाते हैं।

यहां 'मनुष्य' ग्रहण इसलिये है कि—अश्वकः, उष्ट्रकः इत्यादि में लुप् न होवे ॥८१०॥

जीविकार्थे चापण्ये + ॥ ८११ ॥ अ० ५ । ३ । ९९ ॥

यहां मनुष्यग्रहण की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से समझनी चाहिये, क्योंकि उत्तर सूत्र में भी जाती है।

+ जीविका शब्द का अर्थ मुख्य करके जीवनोपाय करना है। इस प्रकरण में सिवाय प्रतिकृति और मनुष्य के दूसरे की अनुवृत्ति नहीं आती। यहां प्रयोजन यह है कि जिन स्त्री पुत्र आदि सम्बन्धी वा मित्रादिकों के साथ अत्यन्त प्रेम होता है; उनके वियोग में उनकी प्रतिकृति देखते और गुण कर्म तथा उपकार आदि का स्मरण करते हुए, अपने चित्त में सन्तोष करते हैं। परन्तु इस प्रकरण में यह बात विचारना चाहिये कि संसार में जितने दृश्य पदार्थ हैं, उन सबकी प्रतिकृति होती है वा नहीं? जो बहुतेरे घोड़े हाथी आदि जीवों की अतिदर्शनीय मृन्मयादि की प्रतिकृतियां बना २ कर बेचते हैं, वे जीविकार्थपण्य होते हैं। और जो बहुतेरे द्वीप द्वीपान्तर देश देशान्तरों में पशु पत्न्यादि तथा पति स्त्री पुत्रादि की प्रतिकृतियां रखते हैं, वे अपण्यजीविकार्थ अर्थात् बेचने के लिये न हों, किन्तु देख और दिखला के जीविका करते हों। परन्तु परमार्थ के साथ इस विषय का कुछ सम्बन्ध नहीं।

इस सूत्र से बहुतेरे वैयाकरणों का यह अभिप्राय है कि—जीविका के लिये जो पदार्थ हो और वह बेचा न जावे, तो उस अर्थ में कन् प्रत्यय का लुप् हो जावे, और (लुम्मनुष्ये) इस सूत्र से मनुष्य शब्द का भी सम्बन्ध न करके, ब्रह्मा आदि देवताओं की मूर्त्तियां, जो कि मन्दिरों में बना २ कर रखते हैं, उनसे जीविका—धन का आगम—तो है परन्तु वे प्रतिमा बेचने के लिये नहीं हैं, इसलिये उन्हीं का ग्रहण होना चाहिये।

पण्य उसको कहते हैं कि जो बेचा जावे, जो पदार्थ बेचने के लिये न हो और उससे किसी प्रकार की जीविका होती होवे, वह पदार्थ वाच्य रहे, तो प्रतिकृति अर्थ में विहित प्रत्यय का लुप् हो जावे। जैसे—वसिष्ठस्य प्रतिकृतिर्वसिष्ठः; विश्वामित्रः; अर्जुनस्य प्रतिकृतिरर्जुनः; युधिष्ठिरः; रामः; कृष्णः; शिवः; विष्णुः; स्कन्दः; आदित्यः इत्यादि। ये वसिष्ठ आदि मनुष्यों के विशेष नाम भूत भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों काल में होते हैं।

यहां 'मनुष्य' ग्रहण की अनुवृत्ति इसलिये है कि—अश्वकं दर्शयति, यहां न हो। और 'अपण्य' ग्रहण इसलिये है कि—हस्तिकान् विक्रीणीते, यहां भी कन् का लुप् न हो ॥८११॥

समासाच्च तद्विषयात् ॥ ८१२ ॥ अ० ५ । ३ । १०६ ॥

यहां तत् शब्द से पूर्वोक्त उपमावाचक शब्द लिया जाता है।

उपमार्थ में समास किये प्रातिपदिकों से दूसरे उपमार्थ में छ प्रत्यय होवे। जैसे—काकागमनमिव तालपतनमिव काकतालं काकतालमिव यत्कार्यं काकतालीयम्; अजाकृपाणीयम्; अन्धकवर्तकीयम् इत्यादि।

और इस सूत्र पर महाभाष्यकार ने भी लिखा है कि—जो धनार्थी लोग शिव आदि की प्रतिमा बना २ कर बेचते हैं, वहां लुप् नहीं पावेगा। क्योंकि सूत्रकार ने अपण्य शब्द पढ़ा है कि जो बेचने के लिये न हो। इस महाभाष्य से भी अपना ही अभिप्राय सिद्ध करते हैं, सो ठीक नहीं, क्योंकि यहां प्रतिकृति और मनुष्य शब्द ही की अनुवृत्ति है, अन्य की नहीं। देवता शब्द भी जहां चेतन व्यक्तियों के साथ सम्बद्ध होता है, वहां मनुष्यों ही की संज्ञा होती है। और वैदिक शब्द सब यौगिक ही हैं, देवता शब्द भी वैदिक है। जो इस सूत्र में मनुष्य शब्द की अनुवृत्ति जयादित्य आदि लोगों ने नहीं की, यह उनको भ्रम है। क्योंकि वे लोग देवता शब्द को मनुष्य से व्यतिरिक्तार्थवाची समझते हैं, परन्तु सामान्य ग्रहण होने से जो २ प्रतिकृति जीविका के लिये हो और बेची न जावे, तो उस २ सबके अभिधेय में प्रत्यय का लुप् होना चाहिये।

और जहां कोई मनुष्य किन्हीं जीवों की प्रतिकृतियों को दिखा के सर्वत्र अपनी जीविका करता हो, वहां भी लुप् होना चाहिये। और पूजा का अर्थ भी आदर सत्कार ही होता है, सो चेतन का होना चाहिये। फिर महाभाष्यकार ने लिखा है कि जो इस समय पूजा के लिये हैं, वहां लुप् होगा। इसका भी यही अभिप्राय है कि जो शिव आदि मनुष्य की प्रतिकृति पूजा सत्कार के लिये है, उनसे प्रत्यय का लुप् हो जावे। क्योंकि अच्छे पुरुषों की जो प्रतिकृति है उसके बेचने में सज्जन लोग बुराई समझते हैं।

देव और देवता शब्द से मनुष्यों के ग्रहण में प्रमाण—

'विश्वे देवास आगत शृणुतेमꣳ हवम् ।' यह यजुर्वेद का प्रमाण है। 'विद्वाꣳसो हि देवाः ॥' यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। 'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव ॥' यह तैत्तिरीय आरण्यक का वाक्य है ॥

इत्यादि सब प्रमाणवचनों से विद्वद् व्यक्ति आदि का ग्रहण देव और देवता शब्द से होता है। इसलिये पाणिनि आदि ऋषि लोगों का अभिप्राय भी वेदों से विरुद्ध कभी न होना चाहिये। इस प्रकरण को पक्षपात छोड़ के वेदानुकूलता से सब सज्जन लोग विचारें ॥

यहां कौवे का वृक्ष के नीचे आना और ताल के फल का गिरना एक काल में होने से उस फल से दब के मरजाना अथवा उस फल को खा के तृप्त होना दोनों अर्थों का सम्भव है। ऐसे ही संसार में जो कार्य हो, उस को 'काकतालीय न्याय' कहते हैं।

इस सूत्र में पहले उपमार्थ में समास और दूसरे में प्रत्यय की उत्पत्ति होती है॥ ८१२॥

प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल् छन्दसि ॥ ८१३॥ अ० ५। ३। १११॥

प्रत्न पूर्व विश्व और इम शब्दों से उपमार्थ में वेदविषयक थाल् प्रत्यय होवे। जैसे—प्रत्नथा; पूर्वथा; विश्वथा; इमथा॥ ८१३॥

पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात् ॥ ८१४॥ अ० ५। ३। ११२॥

यहां से उपमार्थ निवृत्त हुआ। अर्थ और कामों में आसक्त पुरुषों को 'पूग' कहते हैं।

ग्रामणी शब्द जिसके पूर्व न हो, ऐसे पूगवाची प्रातिपदिक से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय हो। जैसे—लौहध्वज्यः, लौहध्वज्यौ, लोहध्वजाः; शैव्यः, शैव्यौ, शिवयः; चातक्यः, चातक्यौ, चातकाः।

यहां 'ग्रामणी पूर्व का निषेध' इसलिये है कि—देवदत्तो ग्रामणीरेषां त इमे देवदत्तकाः; यज्ञदत्तकाः इत्यादि से ञ्य प्रत्यय न होवे॥ ८१४॥

व्रातच्फञोरस्त्रियाम् ॥ ८१५॥ अ० ५। ३। ११३॥

जो पुरुष जीवों को मार २ के जीविका करें उनको 'व्रात' कहते हैं।

व्रातवाची और च्फञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय हो, स्त्रीलिङ्ग को छोड़ के। जैसे—कापोतपाक्यः, कापोतपाक्यौ, कपोतपाकाः इत्यादि। च्फञन्त से—कौञ्जायन्यः, कौञ्जायन्यौ, कौञ्जायनाः इत्यादि।

यहां 'स्त्रीलिङ्ग का निषेध' इसलिये है कि—कपोतपाकी; कौञ्जायनी, यहां ञ्य न होवे॥ ८१५॥

ञ्यादयस्तद्राजाः ॥ ८१६॥ अ० ५। ३। ११९॥

(पूगाञ्ञ्यो०) इस सूत्र में जो ञ्य प्रत्यय पढ़ा है, वहां से यहां तक बीच में जितने प्रत्यय हैं, उन सब की 'तद्राज' संज्ञा होती है।

उसका प्रयोजन यही है कि बहुवचन में प्रत्यय का लुक् हो जाता है॥ ८१६॥

—इति पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः॥

अथ चतुर्थः पादः—

पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च ॥८१७॥ अ० ५।४।१॥

संख्या जिसके आदि में हो, ऐसे पाद और शतशब्दान्त प्रातिपदिक से वीप्सा अर्थ में वुन् प्रत्यय, और पाद शत शब्दों के अन्त का लोप होवे। जैसे—द्वौ द्वौ पादौ ददाति द्विपदिकां ददाति; द्वे द्वे शते ददाति द्विशतिकां ददाति इत्यादि।

यहां भसंज्ञक प्रत्ययों के परे अन्त का लोप हो जाता, फिर 'लोप' ग्रहण इसलिये है कि—उस लोप के परनिमित्तक होने से स्थानिवद्भाव होकर पाद शब्द को पत् आदेश नहीं पावे। यह लोप परनिमित्त नहीं है, इस कारण स्थानिवद्भाव का निषेध होकर पत् आदेश हो जाता है।

इस सूत्र में पाद और शत शब्दों का ग्रहण किया है, परन्तु पाद शत शब्दों से अन्यत्र भी संख्यादि शब्दों से वीप्सा अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है। जैसे—'द्विमोदकिकामाददाति' इत्यादि प्रयोगों का आश्रय लेकर महाभाष्यकार ने पाद शत ग्रहण की उपेक्षा की है॥ ८१७॥

अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात्खः ॥ ८१८ ॥ अ० ५।४।७॥

अषडक्ष, आशितङ्गु, अलङ्कर्म, अलम्पुरुष और अधि जिनका उत्तरपद हो, उन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ख प्रत्यय होवे। जैसे—अविद्यमानानि षट् अक्षीण्यस्य, इस प्रकार बहुव्रीहि समास किये पश्चात् अक्षि शब्द से समासान्त षच् प्रत्यय हो जाता है। उस अषडक्ष शब्द से ख प्रत्यय हुआ है। अषडक्षीणो मन्त्रः।

आशिता गावोऽस्मिन्नरण्ये आशितङ्गवीनमरण्यम्, यहां निपातन पूर्वपद को मुक् का आगम हुआ है। अलङ्कर्मीणम्; अलम्पुरुषीणम्; कार्य्याधीनः; राजाधीनः इत्यादि ॥८१८॥

विभाषाऽञ्चेरदिक्स्त्रियाम् ॥ ८१९ ॥ अ० ५।४।८॥

यहां अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि ख प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है।

क्विप् प्रत्ययान्त अञ्चु जिसके अन्त में हो, उस प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग दिशा अर्थ को छोड़ के स्वार्थ में विकल्प से ख प्रत्यय होवे। जैसे—प्राक्, प्राचीनम्; अर्वाक्, अर्वाचीनम्।

'दिशा स्त्रीलिङ्ग का निषेध' इसलिये है कि—प्राची दिक्; प्रतीची दिक्। 'दिशा' का ग्रहण इसलिये है कि—प्राचीना ब्राह्मणी; अर्वाचीना शिखा इत्यादि से छ प्रत्यय न होवे ॥ ८१९ ॥

स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् ॥ ८२० ॥ अ० ५।४।१० ॥

तुल्यता अर्थ में स्थानान्त प्रातिपदिक से विकल्प करके छ प्रत्यय होवे स्वार्थ में। जैसे—पित्रा तुल्यः पितृस्थानीयः, पितृस्थानः; मातृस्थानीयः, मातृस्थानः; भ्रातृस्थानीयः, भ्रातृस्थानः; राजस्थानीयः, राजस्थानः इत्यादि।

यहां 'स्थान' ग्रहण इसलिये है कि—गोस्थानम्; अश्वस्थानम्, यहां न हो ॥ ८२० ॥

किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ॥ ८२१ ॥ अ० ५।४।११ ॥

किम्, एकारान्त निपात, तिङन्त और अव्यय शब्दों से परे जो घ प्रत्यय तदन्त प्रातिपदिकों से अद्रव्य—क्रिया और गुण—की अधिकता में आमु प्रत्यय होवे।

यद्यपि गुण कर्मों के विना केवल द्रव्य की कुछ उन्नति नहीं होती, तथापि क्रिया और गुणों की उन्नति की जब द्रव्य में विवक्षा होती है, उस द्रव्यस्थ प्रकर्ष का निषेध यहां समझना चाहिये। जैसे—किन्तराम्, किन्तमाम्; पूर्वाह्णेतराम्, पूर्वाह्णेतमाम्; पठतितराम्, पठतितमाम्; उच्चैस्तराम्, उच्चैस्तमाम् इत्यादि।

यहां आमु प्रत्यय में उकारानुबन्ध मकार की रक्षा के लिये है ॥ ८२१ ॥

णचः स्त्रियामञ् ॥ ८२२ ॥ अ० ५।४।१४ ॥

स्त्रीलिङ्ग में जो कृदन्त णच् प्रत्यय होता है, तदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गविषयक स्वार्थ में अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—व्यावक्रोशी; व्यावहासी इत्यादि ॥ ८२२ ॥

संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ॥ ८२३ ॥ अ० ५।४।१७ ॥

एक ही जिनका कर्त्ता हो, ऐसी एक ही प्रकार की क्रियाओं के वार २ गणने अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची शब्दों से स्वार्थ में कृत्वसुच् प्रत्यय होवे। जैसे—पञ्च वारान् भुङ्क्ते पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते; सप्तकृत्वः; अष्टकृत्वः; दशकृत्वः इत्यादि।

यहां 'संख्या' ग्रहण इसलिये है कि—भूरीन् वारान् भुङ्क्ते, यहां प्रत्यय न हो। और वार २ होना क्रिया का ही हो सकता है, द्रव्य गुण का नहीं, फिर यहां 'क्रिया' ग्रहण इसलिये है कि—उत्तर सूत्रों में जहां क्रिया ही गिनी जाती और अभ्यावृत्ति नहीं होती, वहां भी होजावे। और 'अभ्यावृत्ति' ग्रहण इसलिये है कि—क्रियामात्र के गणने में न हो। जैसे—पञ्च पाकाः; दश पाकाः ॥ ८२३ ॥

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ॥ ८२४ ॥ अ० ५।४।१८ ॥

क्रिया के वार २ गणने अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची द्वि त्रि और चतुर् शब्दों से कृत्वसुच् का बाधक सुच् प्रत्यय होवे। जैसे—द्विः पठति; त्रिः खादति; चतुः पिबति इत्यादि ॥ ८२४ ॥

एकस्य सकृच्च ॥ ८२५ ॥ अ० ५ । ४ । १९ ॥

क्रिया की संख्या में वर्त्तमान एक शब्द से कृत्वसुच् का अपवाद सुच् प्रत्यय और एक शब्द को सकृत् आदेश होवे। जैसे—सकृदधीते; सकृद्दाति; सकृत् कन्या प्रदीयते इत्यादि ॥ ८२५ ॥

तत्प्रकृतवचने मयट् ॥ ८२६ ॥ अ० ५ । ४ । २१ ॥

जिस शब्द से प्रत्ययार्थ की विवक्षा हो, उसी के निरन्तर कहने अर्थात् जात्यन्तर के मेल की निवृत्ति करने अर्थ में वर्त्तमान प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से स्वार्थ में मयट् प्रत्यय होवे। जैसे—आनन्दमयं ब्रह्म—अर्थात् ईश्वर में दुःख का लेश भी नहीं है; अन्नमयम्; प्राणमयम्; मनोमयम् इत्यादि ॥ ८२६ ॥

अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः ॥ ८२७ ॥ अ० ५ । ४ । २३ ॥

अनन्त, आवसथ, इतिह और भेषज शब्दों से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय होवे। जैसे—अनन्त एव आनन्त्यम्; आवसथ एव आवसथ्यम्; इतिह एव ऐतिह्यम्; भेषजमेव भैषज्यम् ॥ ८२७॥

देवतान्तात्तादर्थ्ये यत् ॥ ८२८ ॥ अ० ५ । ४ । २४ ॥

देवता शब्द जिसके अन्त में हो, उस चतुर्थीसमर्थ प्रातिपदिक से, प्रत्ययार्थ प्रकृत्यर्थ के लिये होवे, तो यत् प्रत्यय होवे। जैसे—अग्निदेवतायै इदम् अग्निदेवत्यम्; पितृदेवत्यम्; मातृदेवत्यम्; वायुदेवत्यम् इत्यादि ॥ ८२८ ॥

अतिथेर्ञ्यः ॥ ८२९ ॥ अ० ५ । ४ । २६ ॥

तादर्थ्य अर्थ में, चतुर्थीसमर्थ अतिथि प्रातिपदिक से ञ्य प्रत्यय हो। जैसे—अतिथये इदमातिथ्यम् ॥ ८२९ ॥

देवात्तल् ॥ ८३० ॥ अ० ५ । ४ । २७ ॥

देव शब्द से स्वार्थ में तल् प्रत्यय होवे। जैसे—देव एव देवता ॥ ८३० ॥

लोहितान्मणौ ॥ ८३१ ॥ अ० ५ । ४ । ३० ॥

मणिवाची लोहित शब्द से स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो। जैसे—लोहितो मणिः लोहितकः।

'मणि' ग्रहण इसलिये है कि—लोहितः, यहां प्रत्यय न हो ॥ ८३१ ॥

वा०—लोहिताल्लिङ्गबाधनं वा ॥ ८३२ ॥

लोहित शब्द से प्रतिपदविधि में कन् प्रत्यय के बलवान् होने से स्त्रीलिङ्ग में तकार को नकार आदेश नहीं प्राप्त है, इसलिये यह वार्तिक पढ़ा है कि—

लोहित शब्द से कन् प्रत्यय नकारादेश का बाधक विकल्प करके होवे। जैसे—लोहिनिका, लोहितिका ॥ ८३२ ॥

वा०—अक्षरसमूहे छन्दसि यत उपसंख्यानम् ॥ ८३३ ॥

अक्षरों के समूह अर्थ में वेदविषय में यत् प्रत्यय होवे। जैसे—एष वै सप्तदशाक्षरश्छन्दस्यः प्रजापतिः, यहां छन्दस्य शब्द में यत् प्रत्यय हुआ है ॥ ८३३ ॥

वा०—छन्दसि बहुभिर्वसव्यैरुपसंख्यानम् ॥ ८३४ ॥

वेद में वसु शब्द से यत् प्रत्यय होवे। जैसे—हस्तैः पृणस्व बहुभिर्वसव्यैः, यहां वसव्य शब्द में यत् प्रत्यय हुआ है ॥ ८३४ ॥

वा०—अपस्, ओक, कवि, उदक, वर्चस्, निष्केवल, उक्थ, जन इत्येतेभ्यश्च वा ॥ ८३५ ॥

यहां चकार से छन्दसि और यत् की अनुवृत्ति आती है।

इन अपस् आदि प्रातिपदिकों से वेद में स्वार्थिक यत् प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे—अपस्यो वसानाः, अपो वसानाः; स्व ओक्ये, स्व ओकः; कव्योऽसि, कविरसि; [उदक्यम्, उदकम्;] वर्चस्यः, वर्चः; निष्केवल्यम्, निष्केवलम्; उक्थ्यम्, उक्थम्; जन्यम्; जनम् ॥ ८३५ ॥

वा०—समावद्वतुः ॥ ८३६ ॥

सम शब्द से स्वार्थ में आवतु प्रत्यय होवे। जैसे—समावद्वसति; समावद् गृह्णाति इत्यादि ॥ ८३६ ॥

वा०—नवस्य नू त्नप्तनप्खाश्च ॥ ८३७ ॥

नव शब्द को नू आदेश और उससे स्वार्थ में त्नप्, तनप् तथा ख प्रत्यय होवें। जैसे—नूत्नम्; नूतनम्; नवीनम् ॥ ८३७ ॥

वा०—नश्च पुराणे प्रात् ॥ ८३८ ॥

प्राचीन अर्थ में वर्त्तमान प्र शब्द से न प्रत्यय, और चकार से त्नप् तनप् और ख प्रत्यय भी हों। जैसे—प्रणम्; प्रत्नम्; प्रतनम्; प्रीणम् ॥ ८३८ ॥

तद्युक्तात्कर्मणोऽण् ॥ ८३९ ॥ अ० ५ । ४ । ३६ ॥

यहां पूर्व सूत्र से अव्याहृतवाणी की अनुवृत्ति आती है।

व्याहृतवाणी के युक्त योग्य—कर्म शब्द से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होवे। जैसे—कर्मैव कार्म्मणम्। वाणी को सुन के वैसे ही जो कर्म किया जावे उसको 'कार्मण' कहते हैं ॥ ८३९ ॥

वा०—अण्प्रकरणे कुलालवरुडनिषादचण्डालामित्रेभ्यश्छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ ८४० ॥

कुलाल, वरुड, निषाद, चण्डाल और अमित्र प्रातिपदिकों से भी वेद में अण् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—कौलालः; वारुडः; नैषादः; चाण्डालः; आमित्रः ॥ ८४० ॥

वा०—भागरूपनामभ्यो धेयः ॥ ८४१ ॥

भाग, रूप और नाम शब्दों से धेय प्रत्यय हो। जैसे—भागधेयम्; रूपधेयम्; नामधेयम् ॥ ८४१ ॥

वा०—मित्राच्छन्दसि धेयः ॥ ८४२ ॥

मित्र शब्द से वेदविषयक स्वार्थ में धेय प्रत्यय हो। जैसे—मित्रधेये यतस्व ॥ ८४२ ॥

वा०—अण् मित्राच्च ॥ ८४३ ॥

मित्र और अमित्र शब्दों से स्वार्थ में अण् प्रत्यय भी हो। जैसे—मित्रमेव मैत्रम्। अमित्र एव आमित्रः ॥ ८४३ ॥

वा०—सान्नाय्यानुजावरानुषूकचातुष्प्राश्यराक्षोघ्नवैयातवैकृतवारिवस्कृताग्रायणाग्रहायणसान्तपनानि निपात्यन्ते ॥ ८४४ ॥

सान्नाय्य आदि शब्द स्वार्थिक अण्प्रत्ययान्त लोक वेद में सर्वत्र निपातन किये हैं। जैसे—सान्नाय्यः; आनुजावरः, आनुषूकः; चातुष्प्राश्यः; राक्षोघ्नः; वैयातः; वैकृतः; वारिवस्कृतः; आग्रायणः; आग्रहायणः; सान्तपनः ॥ ८४४ ॥

वा०—आग्नीध्रसाधारणादञ् ॥ ८४५ ॥

आग्नीध्र और साधारण शब्दों से स्वार्थ में अञ् प्रत्यय हो। जैसे—आग्नीध्रम्; साधारणम् ॥ ८४५ ॥

वा०—अपवसमरुद्भ्यां छन्दस्यञ् ॥ ८४६ ॥

अपवस और मरुत् शब्दों से स्वार्थ में अञ् प्रत्यय हो। जैसे—आपवसे वर्द्धन्तम्; मारुतं शब्दः ॥ ८४६ ॥

वा०—नवसूरमर्त्तयविष्ठेभ्यो यत् ॥ ८४७ ॥

यहां भी पूर्व वार्त्तिक से छन्द की अनुवृत्ति समझनी चाहिये।

नव, सूर, मर्त्त, और यविष्ठ शब्दों से स्वार्थ में यत् प्रत्यय होवे। जैसे—नव्यः; सूर्यः; मर्त्यः; यविष्ठ्यः ॥ ८४७ ॥

वा०—क्षेमाद्यः ॥ ८४८ ॥

क्षेम शब्द से स्वार्थ य में प्रत्यय हो। जैसे—क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः, यहां यत् और य प्रत्यय में केवल स्वर का भेद है, रूपभेद नहीं ॥ ८४८ ॥

ओषधेरजातौ ॥ ८४९ ॥ अ० ५ । ४ । ३७ ॥

ओषधि शब्द से जाति अर्थ न होवे, तो स्वार्थ में अण् प्रत्यय हो। जैसे—औषधं पिबति, औषधं ददाति इत्यादि ॥ ८४९ ॥

मृदस्तिकन् ॥ ८५० ॥ अ० ५ । ४ । ३९ ॥

मृत् शब्द से स्वार्थ में तिकन् प्रत्यय हो। जैसे—मृदेव मृत्तिका ॥ ८५० ॥

सस्नौ प्रशंसायाम् ॥ ८५१ ॥ अ० ५ । ४ । ४० ॥

प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान मृत् प्रातिपदिक से स्वार्थ में स और स्न प्रत्यय हों। जैसे—प्रशस्ता मृत् मृत्सा; मृत्स्ना ॥ ८५१ ॥

बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ॥ ८५२ ॥ अ० ५ । ४ । ४२ ॥

यहां शस् प्रत्यय की किसी सूत्र से प्राप्ति न होने से यह अप्राप्तविभाषा समझनी चाहिये।

कारकवाची बहु अल्प और इनके अर्थ के शब्दों से विकल्प करके शस् प्रत्यय होवे।

किसी कारक का यहां विशेष निर्देश नहीं किया, इससे कर्मादि सब कारकों का ग्रहण होता है। जैसे—बहूनि ददाति, बहुशो ददाति; अल्पं ददाति, अल्पशो ददाति; बहुभिर्ददाति, बहुशो ददाति; अल्पेन, अल्पशो ददाति; बहुभ्यः, बहुशः; अल्पशः; बहूनां बहुषु वा बहुशः; अल्पस्य, अल्पे वा अल्पशः। इनके अर्थ के—भूरिशो ददाति; स्तोकशो ददाति इत्यादि।

यहां 'बहु तथा अल्पार्थों का' ग्रहण इसलिये है कि—गां ददाति; अश्वं ददाति इत्यादि से शस् प्रत्यय न होवे ॥ ८५२ ॥

वा०—बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम् ॥ ८५३ ॥

बहु और अल्प शब्दों से जो प्रत्यय विधान किया है, वहां बहु से मङ्गल और अल्प शब्द से अमङ्गल अर्थ में होवे।

यह वार्त्तिक सूत्र का शेष है, इसलिये उक्त उदाहरण ही समझने चाहियें। अर्थात्—बहुशो ददाति, यह प्रयोग अनिष्ट के बहुत देने में न होवे। और—अल्पशो ददाति, वह भी इष्ट के देने में प्रयोग न किया जावे ॥ ८५३ ॥

प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ॥ ८५४ ॥ अ० ५ । ४ । ४४ ॥

कर्मप्रवचनीयसंज्ञक प्रति शब्द के योग में जहां पञ्चमी विभक्ति की है, उस विभक्त्यंत प्रातिपदिक से तसि प्रत्यय होवे। जैसे—प्रद्युम्नो वासुदेवतः प्रति; अभिमन्युरर्जुनतः प्रति।

यहां पूर्व से विकल्प की अनुवृत्ति चली आने से वासुदेवात्; अर्जुनात् ऐसा भी प्रयोग होता है ॥ ८५४ ॥

वा०—तसिप्रकरण आद्यादीनामुपसंख्यानम् ॥ ८५५ ॥

इस प्रकरण में आद्यादि शब्दों से तसि प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—आदौ आदितः; मध्यतः; अन्ततः; पार्श्वतः; पृष्ठतः इत्यादि ॥ ८५५ ॥

कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः ॥ ८५६ ॥ अ० ५ । ४ । ५० ॥

संपूर्वक पद धातु के कर्त्ता अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कृ, भू और अस्ति धातुओं के योग में च्वि प्रत्यय होवे ॥ ८५६ ॥

वा०—च्विविधावभूततद्भावग्रहणम् ॥ ८५७ ॥

यह वार्त्तिक सूत्र का शेष समझना चाहिये। जो पदार्थ प्रथम कारण रूप से अप्रसिद्ध हो, और पीछे कार्य्यरूप से प्रकट किया जावे, उसको 'अभूततद्भाव' कहते हैं।

इस अभूततद्भाव अर्थ में उक्त सूत्र से च्वि प्रत्यय कहा है, सो होवे। जैसे—अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते तं करोति शुक्लीकरोति, अर्थात् जो पदार्थ प्रथम से मलीन है, उसको शुद्ध करता है; शुक्लीभवति; शुक्लीस्यात्; कठिनीकरोति; कठिनीभवति; कठिनीस्यात्; घटीकरोति; घटीभवति; घटीस्यात् इत्यादि।

प्रयोजन यह है कि जो पदार्थ अपनी प्रथमावस्था में जिस स्वरूप से वर्त्तमान हो, उसी अवस्था के साथ इस प्रत्ययार्थ की विवक्षा समझनी चाहिये। और इस प्रत्यय के विना लोक में सिद्ध पदार्थों का कहना बन सकता है, कि जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसे ही स्वरूप से वर्णन करें।

यहां 'अभूततद्भाव' ग्रहण इसलिये है कि—सम्पद्यन्ते यवाः; सम्पद्यन्ते शालयः, यहां च्वि प्रत्यय न होवे। 'कृ भू अस्ति धातुओं का योग' इसलिये कहा है कि—अशुक्लः शुक्लो जायते, यहां न हो। और 'संपूर्वक पद धातु के कर्त्ता' का ग्रहण इसलिये है कि—गृहे संयुज्यते, यहां भी च्वि प्रत्यय न होवे ॥ ८५७ ॥

वा०—समीपादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ८५८ ॥

समीप आदि शब्दों से भी पूर्वोक्त अर्थों में च्वि प्रत्यय होवे। जैसे—असमीपस्थं समीपस्थं भवति समीपीभवति; अभ्याशीभवति; अन्तिकीभवति; सविधीभवति इत्यादि।

यहां प्रकृति से विकार का होना नहीं है, इस कारण प्रत्यय की प्राप्ति नहीं है ॥ ८५८ ॥

विभाषा साति कात्स्न्र्ये ॥ ८५९ ॥ अ० ५ । ४ । ५२ ॥

यहां च्वि प्रत्यय को छोड़ के पूर्व सूत्र से सब पदों की अनुवृत्ति आती है।

संपूर्वक पद धातु के कर्त्ता में वर्त्तमान प्रातिपदिकों से कृ भू और अस्ति धातु का योग हो, तो अभूततद्भाव अर्थ में संपूर्णता विदित होवे, तो साति प्रत्यय विकल्प करके हो। जैसे—भस्मसाद्भवति काष्ठम्, भस्मसात्करोति, भस्मसात्स्यात्, भस्मीभवति, भस्मीस्यात्; उदकसाद्भवति लवणम्, उदकीभवति लवणम् इत्यादि। प्रकृति संपूर्ण विकार रूप हो जावे।

यह सूत्र च्वि प्रत्यय का अपवाद और यहां अप्राप्तविभाषा है। पक्ष में च्वि प्रत्यय भी हो जाता है। यहां 'संपूर्णता' ग्रहण इसलिये है कि—एकदेशेन पटः शुक्लीभवति, यहां प्रत्यय न होवे ॥ ८५९ ॥

देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् ॥ ८६० ॥ अ० ५ । ४ । ५६ ॥

यहां से साति प्रत्यय निवृत्त हुआ, और त्रा प्रत्यय की अनुवृत्ति आती है।

द्वितीया और सप्तमीसमर्थ देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु और मर्त्य प्रातिपदिकों से बहुल करके स्वार्थ में त्रा प्रत्यय होवे। जैसे—देवान् सत्करोति, देवत्रा सत्करोति; देवेषु वसति, देवत्रा वसति; मनुष्यान् गच्छति, मनुष्यत्रा गच्छति; मनुष्येषु वसति, मनुष्यत्रा वसति; पुरुषं ध्यायति, पुरुषत्रा ध्यायति; पुरून् गृह्णाति, पुरुत्रा गृह्णाति; पुरुषु वसति, पुरुत्रा वसति; मर्त्यान् मर्त्येषु वा मर्त्यत्रा इत्यादि।

यहां 'बहुल' शब्द के ग्रहण से अनुक्त शब्दों से भी त्रा प्रत्यय हो जावे। जैसे—बहुत्रा जीवतो मनः इत्यादि ॥ ८६० ॥

अव्यक्तानुकरणाद्व्यजवरार्द्धादनितौ डाच् ॥ ८६१ ॥ अ० ५ । ४ । ५७ ॥

यहां कृ भू और अस्ति धातुओं के योग की अनुवृत्ति आती है। जिस ध्वनि में अकारादि वर्ण पृथक् २ स्पष्ट नहीं जाने जाते उसको 'अव्यक्त' शब्द कहते हैं। उसी शब्द के अनुसार जो जनाया जावे कि वह अव्यक्त शब्द ऐसा हुआ, उसको 'अव्यक्तानुकरण' कहते हैं।

इति शब्द जिससे परे न हो, और जिसके एक अर्द्धभाग में दो अच् हों, ऐसे अव्यक्तानुकरण प्रातिपदिक से कृ भू और अस् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होवे। जैसे—पटपटा करोति; पटपटा भवति; पटपटा स्यात्; दमदमा करोति; दमदमा भवति; दमदमा स्यात्; बलबला करोति; बलबला भवति; बलबला स्यात् इत्यादि।

यहां 'अव्यक्तानुकरण' ग्रहण इसलिये है कि—दृषत्करोति, दरत्करोति इत्यादि में डाच् प्रत्यय न हो। 'द्व्यजवरार्द्ध' ग्रहण इसलिये है कि—श्रत्करोति, यहां एकाच् में न हो। और 'अवर' शब्द का ग्रहण इसलिये है कि—खरट खरट करोति, यहां अर्द्धभाग में तीन अच् हैं, इससे डाच् प्रत्यय नहीं होता। और 'इतिपरक का निषेध' इसलिये है कि—पटिति करोति, यहां इति शब्द के परे डाच् प्रत्यय न हो।

(डाचि बहुलं द्वे भवतः) इस वार्त्तिक में विषयसप्तमी मान के डाच् प्रत्यय के होने की विवक्षा में ही द्विर्वचन हो जाता है, पश्चात् डाच् प्रत्यय होता है। जो कदाचित् ऐसा न समझें तो जिसके अवर अर्द्धभाग में दो अच् हों, यह कहना ही न बने। डाच् प्रत्यय में डकार का लोप होकर डित् मान के टिलोप और चकार अनुबन्ध से अन्तोदात्तस्वर होता है ॥ ८६१ ॥

कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्कृषौ ॥ ८६२ ॥ अ० ५ । ४ । ५८ ॥

यहां कृञ् धातु का ग्रहण भू और अस धातु की निवृत्ति के लिये है।

द्वितीय तृतीय शम्ब और बीज प्रातिपदिक से खेती अर्थ अभिधेय हो, तो कृञ् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होवे। जैसे—द्वितीया करोति, दूसरी वार खेत को जोतता है; तृतीया करोति, तीसरी वार जोतता है; शम्बा करोति, सीधा जोत के फिर तिरछा जोतता है; बीजा करोति, बीज बोने के साथ ही जोतता है।

यहां 'कृषि' ग्रहण इसलिये है कि—द्वितीयं करोति पादम्, यहां डाच् प्रत्यय न होवे ॥८६२॥

संख्यायाश्च गुणान्तायाः ॥ ८६३ ॥ अ० ५ । ४ । ५९ ॥

यहां कृञ् धातु और कृषि अर्थ दोनों की अनुवृत्ति चली आती है।

गुण शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे संख्यावाची प्रातिपदिक से कृषि अर्थ में कृ धातु के योग में डाच् प्रत्यय हो। जैसे—द्विगुणं विलेखनं क्षेत्रस्य करोति द्विगुणा करोति क्षेत्रम्; त्रिगुणा करोति इत्यादि।

यहां 'कृषि' ग्रहण इसलिये है कि—द्विगुणां करोति रज्जुम्, यहां डाच् प्रत्यय न हो। पूर्व सूत्र में द्वितीय तृतीय शब्दों के साथ इस सूत्र का शब्दभेद ही ज्ञात होता है, अर्थभेद नहीं ॥ ८६३ ॥

समयाच्च यापनायाम् ॥ ८६४ ॥ अ० ५ । ४ । ६० ॥

यहां कृषि की अनुवृत्ति नहीं आती, परन्तु कृञ् धातु की चली आती है।

करने योग्य कर्मों के अवसर मिलने को 'समय' कहते हैं, उस समय के यापना=अतिक्रमण अर्थ में समय शब्द से कृञ् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होवे। जैसे—समया करोति, कालक्षेप करता है।

यहां 'यापना' ग्रहण इसलिये है कि—समयं करोति मेघः, यहां डाच् प्रत्यय न हो ॥८६४॥

मद्रात्परिवापणे ॥ ८६५ ॥ अ० ५ । ४ । ६७ ॥

मङ्गलवाची मद्र शब्द से परिवापण=मुण्डन अर्थ में कृञ् धातु का योग होवे, तो डाच् प्रत्यय हो। [जैसे—] मङ्गलं मुण्डनं करोति मद्राकरोति।

यहां 'परिवापण' इसलिये कहा है कि—मद्रं करोति, यहां डाच् प्रत्यय न हो ॥८६५॥

वा०—भद्राच्च ॥ ८६६ ॥

भद्र शब्द से भी परिवापण अर्थ में कृञ् धातु का योग हो, तो डाच् प्रत्यय हो। जैसे—भद्रा करोति नापितः कुमारम्।

यहां भी परिवापण अर्थ से पृथक्—भद्रं करोति, यही प्रयोग होता है ॥ ८६६ ॥

—इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥

[इति पञ्चमाध्यायः समाप्तः ॥]

नस्तद्धिते ॥ ८६७ ॥ अ० ६ । ४ । १४४ ॥

तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो नकारान्त भसंज्ञक अङ्ग के टिभाग का लोप होवे। जैसे—अग्निशर्म्मणोऽपत्यमाग्निशर्मिः; औडुलोमिः इत्यादि, यहां अग्निशर्म्मन् आदि शब्दों का बाह्वादिगण में पाठ होने से इञ् प्रत्यय हुआ है।

यहां 'नान्त' का ग्रहण इसलिये है कि—सात्वतः, यहां तकारान्त के टिभाग का लोप न होवे। और 'तद्धित' ग्रहण इसलिये है कि—शर्म्मणा, शर्म्मणे इत्यादि प्रयोगों में लोप न हो ॥ ८६७ ॥

वा०-नांतस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापिकौथुमितैतिलिजाजलिलाङ्गलिशिलालिशिखण्डिसूकरसद्मसुपर्वणामुपसंख्यानम् ।८६८।

यहां इन्नन्त और अन्नन्त शब्दों में आगामी सूत्रों से प्रकृतिभाव प्राप्त है, उसका पुरस्तात् अपवाद यह वार्त्तिक है।

तद्धित प्रत्ययों के परे सब्रह्मचारिन् आदि भसंज्ञक नकारान्त प्रातिपदिकों के टिभाग का लोप होवे। जैसे—सब्रह्मचारिण इमे छात्राः साब्रह्मचाराः—यहां सम्बन्धसामान्य में शैषिक अण् प्रत्यय हुआ है; पीठसर्पिण इमे छात्राः पैठसर्पाः—यहां भी पूर्व के समान अण्; कलापिना प्रोक्तमधीयते कालापाः—यहां (कलापिनोऽण्) इस सूत्र से प्रोक्त अर्थ में अण्; कौथुमिना प्रोक्तमधीयते कौथुमाः—यहां भी पूर्ववत् अण् जानो।

तैतिलिनामकं ग्रन्थमधीयते विदुर्वा तैतिलाः; जाजलाः; लाङ्गलाः; शैलालाः; शैखण्डाः; सूकरसद्मना प्रोक्तमधीयते सौकरसद्माः; सुपर्वणा प्रोक्तमधीयते सौपर्वाः—यहां तैतिलि आदि ग्रन्थवाची शब्दों से शैषिक प्रोक्त अर्थ में वृद्ध होने से छ प्रत्यय प्राप्त है, इसलिये अधीत वेद अर्थ में अण् समझना चाहिये। और सूकरसद्मन् तथा सुपर्वन् शब्दों से वृद्धसंज्ञा के न होने से प्रोक्तार्थ अण् प्रत्यय होता है ॥ ८६८ ॥

वा०-चर्मणः कोश उपसंख्यानम् ॥ ८६९ ॥

कोश=तलवार का घर अर्थ हो, तो तद्धितसंज्ञक प्रत्ययों के परे होते चर्मन् शब्द के टिभाग का लोप होवे। जैसे—चर्म्मणो विकारः कोशः चार्मः कोशः।

जहां कोश अर्थ न हो वहां—चार्मणः, प्रयोग होगा ॥ ८६९ ॥

वा०-अश्मनो विकार उपसंख्यानम् ॥ ८७० ॥

विकार अर्थ में तद्धित प्रत्यय परे हों, तो पाषाणवाची अश्मन् शब्द के टिभाग का लोप हो। जैसे—अश्मनो विकार आश्मः।

जहां विकार अर्थ न हो वहां—आश्मनः, ऐसा ही रहे ॥ ८७० ॥

वा०—श्वनः संकोच उपसंख्यानम् ॥ ८७१ ॥

कुत्ते के वाची श्वन् शब्द के टिभाग का लोप हो, संकोच अर्थ अभिधेय रहे तो। [जैसे—] संकुचितः श्वा शौवः। इस श्वन् शब्द का द्वारादिगण में पाठ होने से वकार से पूर्व ऐच् का आगम हो जाता है।

और संकोच अर्थ से अन्यत्र—शौवनः, ऐसा ही प्रयोग होगा ॥ ८७१ ॥

वा०—अव्ययानां च सायम्प्रातिकाद्यर्थम् ॥ ८७२ ॥

तद्धितसंज्ञक प्रत्ययों के परे सायम्प्रातिक आदि शब्दों के सिद्ध होने के लिये भसंज्ञक अव्यय शब्दों के टिभाग का भी लोप कहना चाहिये। जैसे—सायम्प्रातर्भवः सायम्प्रातिकः; पौनःपुनिकः इत्यादि।

यहां द्वन्द्वसंज्ञक अव्ययों से ठञ् होता है। शाश्वतिक शब्द में निपातन मान के टिलोप नहीं होता। (येषां च विरोधः शाश्वतिकः) जिन अव्यय शब्दों में अविहित टिलोप दीखता है, वहां वैसे ही अव्ययों में समझना चाहिये। क्योंकि शाश्वतम् इत्यादि में द्वन्द्व किये अव्यय और ठञ् प्रत्यय दोनों ही नहीं, इससे लोप नहीं होता ॥ ८७२ ॥

अह्नष्टखोरेव ॥ ८७३ ॥ अ० ६ । ४ । १४५ ॥

यह सूत्र नियमार्थ है। ट और ख इन्हीं दोनों प्रत्ययों के परे अहन् शब्द के टिभाग का लोप होवे, अन्यत्र प्रकृतिभाव ही हो जावे। जैसे—द्वे अहनी समाहृते द्व्यहः; त्र्यहः, यहां समासान्त टच् प्रत्यय हुआ है; द्वे अहनी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा द्व्यहीनः; त्र्यहीनः; अह्नां समूहोऽहीनः क्रतुः।

यहां 'टिलोप' का नियम इसलिये है कि—अह्ना निर्वृत्तमाह्निकम्, यहां नियम के होने से टिलोप न होवे ॥ ८७३ ॥

ओर्गुणः ॥ ८७४ ॥ अ० ६ । ४ । १४६ ॥

तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो उवर्णान्त भसंज्ञक प्रातिपदिकों को गुण होवे। जैसे—बभ्रोर्गोत्रापत्यं बाभ्रव्यः; माण्डव्यः; शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु; पिचव्यः कार्पासः; कमण्डलव्या मृत्तिका; परशव्यमयः; औपगवः; कापटवः इत्यादि।

पूर्वलिखित तद्धितप्रत्ययविधान प्रकरण में सर्वत्र गुण तथा अन्य कार्य जो २ यहां कहें, समझने चाहियें। और इस सूत्र को इसी ग्रन्थ के ३२ पृष्ठ में भी लिख चुके हैं, परन्तु विशेष व्याख्यानार्थ यहां लिखना आवश्यक समझा गया ॥ ८७४ ॥

ढे लोपोऽकद्र्वाः ॥ ८७५ ॥ अ० ६ । ४ । १४७ ॥

तद्धितसंज्ञक ढ प्रत्यय परे हो, तो कद्रू शब्द को छोड़ के भसंज्ञक प्रातिपदिक के उवर्ण का लोप होवे। जैसे—कमण्डल्वा अपत्यं कामण्डलेयः; शैतिवाहेयः; जाम्बेयः; माद्रवाहेयः इत्यादि।

यहां 'कद्रू शब्द का निषेध' इसलिये है कि—काद्रवेय ऋषि, यहां लोप न हो, किन्तु पूर्व सूत्र से गुण हो जावे। और यह लोप गुण का ही अपवाद है ॥ ८७५ ॥

यस्येति च ॥ ८७६ ॥ अ० ६ । ४ । १४८ ॥

यहां तद्धित की अनुवृत्ति के लिये चकार पढ़ा है।

तद्धितसंज्ञक और ईकार प्रत्यय परे हों, तो इवर्णान्त अवर्णान्त भसंज्ञक प्रातिपदिक का लोप हो। जैसे—इवर्णान्त का लोप ईकार के परे—दत्तस्यापत्यं स्त्री दाक्षी; प्लाक्षी इत्यादि।

यहां जो सवर्णदीर्घ एकादेश मान लेवें तो—हे दाक्षि, यहां सवर्णदीर्घ एकादेश वर्णकार्य से सम्बुद्धि में ह्रस्व होना अङ्गकार्य बलवान् होने से प्रथम हो जाता है, फिर जो लोप न कहें तो पीछे सवर्णदीर्घ एकादेश होकर सम्बुद्धि में भी दीर्घ ईकार बना रहे। इसलिये ईकार प्रत्यय के परे इवर्णान्त का लोप कहा है।

इवर्णान्त का लोप तद्धितप्रत्ययों के परे—दुल्या अपत्यं दौलेयः; बलि—बालेयः; अत्रि—आत्रेयः इत्यादि। अवर्णान्त का लोप ईकार प्रत्यय के परे—कुमारी; किशोरी; गौरी; जानपदी इत्यादि। तद्धितप्रत्यय के परे—दाक्षिः; प्लाक्षिः; बलाकाया अपत्यं बालाकिः; सुमित्राया अपत्यं सौमित्रः इत्यादि।

यहां सर्वत्र लोप को आदेश मान के अन्त्य अल् इवर्ण और उवर्ण का लोप होता है। यह भी सूत्र (ओर्गुणः) इसी के समीप पूर्व लिख चुके हैं, परन्तु उसी का सा लिखना इसका भी जानो ॥ ८७६ ॥

वा०—यस्येत्यादौ श्यां प्रतिषेधः ॥ ८७७ ॥

(यस्येति च) इत्यादि सूत्रों में औ विभक्ति के स्थान में जो शी आदेश होता है, उस ईकार के परे इवर्ण अवर्ण के लोप का निषेध करना चाहिये। जैसे—काण्डे; शृङ्गे, यहां जब नपुंसक काण्ड और शृङ्ग शब्दों से परे औ के स्थान में शी हो जाता है, तब अवर्ण का लोप प्राप्त है, सो न हो।

और—कुड्ये; सौर्ये, यहां भी पूर्व के समान अवर्ण का लोप और आगामी सूत्र से उपधासंज्ञक यकार का लोप प्राप्त है, सो न होवे।

जैसे—श्रियौ; श्रियः; भ्रुवौ; भ्रुवः इत्यादि में इयङ् उवङ् आदेश होते हैं, वैसे ही—वत्सान् प्रीणातीति वत्सप्रीः, लेखाभ्रूः, तस्या अपत्यं वात्सप्रेयः; लैखाभ्रेयः इत्यादि में भी इयङ् उवङ् आदेश प्राप्त हैं, परन्तु परविप्रतिषेध मान के इवर्ण उवर्ण का लोप हो जाता है ॥ ८७७ ॥

सूर्य्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः ॥८७८॥ अ० ६।४।१४९॥

तद्धितसंज्ञक और ईकार प्रत्यय परे हो, तो सूर्य्य, तिष्य, अगस्त्य और मत्स्य शब्दों के उपधाभूत भसंज्ञक यकार का लोप हो जावे। और अवर्ण का लोप तो पूर्वसूत्र से हो ही जाता है।

जैसे—सूर्य्येण एकदिक् सौरी बलाका, यहां उपधाग्रहण ज्ञापक से अवर्ण का लोप असिद्ध नहीं समझा जाता; तिष्येण युक्तः कालः तैषमहः; तैषी रात्री; अगस्त्यस्यापत्यं कन्या—इस विग्रह में ऋषिवाची अगस्त्य शब्द से अण् प्रत्यय हो जाता है=आगस्ती; आगस्तीयः। मत्स्य शब्द के गौरादि गण में होने से ङीष् हो जाता है=मत्सी।

'उपधा' ग्रहण इसलिये है कि—सूर्य्यचरी, यहां सूरी शब्द से भूतपूर्व अर्थ में चरट् प्रत्यय के परे पुंवद्भाव हुआ है। स्थानिवत् मान के यकार का लोप प्राप्त है, उपधा के न होने से नहीं होता, इत्यादि ॥ ८७८ ॥

वा०—मत्स्यस्य ङ्याम् ॥ ८७९ ॥

ङीष् प्रत्यय के परे ही मत्स्य शब्द के उपधा यकार का लोप हो, अन्यत्र नहीं। जैसे—मत्सी। नियम होने से—मत्स्यस्य विकारो मात्स्यं मांसम्, यहां न हो ॥ ८७९ ॥

वा०—सूर्य्यागस्त्ययोश्छे च ॥ ८८० ॥

छ और ङीप् ङीष् प्रत्यय के परे ही सूर्य्य और अगस्त्य शब्दों के यकार का लोप हो। जैसे—सौरीयः, सौरी; आगस्तीयः, आगस्ती।

नियम होने से—सूर्य्यो देवताऽस्य सौर्य्यं हविः; अगस्त्यस्य गोत्रापत्यमागस्त्यः, यहां न होवे ॥ ८८० ॥

वा०—तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि ॥ ८८१ ॥

यहां स्वरूपग्रहणपरिभाषा का आश्रय इसलिये नहीं होता जिसलिये वार्त्तिक पढ़ा है। अर्थात् स्वरूपग्रहण के न होने में वार्त्तिक ज्ञापक है।

तद्धितसंज्ञक और ईकार प्रत्यय परे हो, तो तिष्य और पुष्य शब्दों के उपधा यकार का लोप होवे, अन्य पर्य्यायवाची का नहीं। जैसे—तिष्यनक्षत्रेण युक्तः कालः तैषः; पौषः।

नियम इसलिये है कि—सैध्यः, यहां लोप न हो ॥ ८८१ ॥

वा०—अन्तिकस्य तसि कादिलोपश्चाद्युदात्तश्च ॥ ८८२ ॥

अन्तिक शब्द से तसि प्रत्यय परे हो, तो कादि—स्वरसहित ककार—का लोप और आद्युदात्तस्वर होवे। जैसे—अन्तितो न दूरात्।

तसि प्रत्यय को प्रत्ययस्वर होने से अन्तोदात्त होता, इसलिये आद्युदात्त कहा है। और अन्तिक शब्द से अपादान कारक में असि प्रत्यय होता है ॥ ८८२ ॥

वा०—तमे तादेश्च ॥ ८८३ ॥

यहां चकार ग्रहण से कादि की भी अनुवृत्ति आती है।

तम प्रत्यय परे हो, तो अन्तिक शब्द तादि—तिक—भाग तथा कादि—क—मात्र का लोप होवे। जैसे—अतिशयेनान्तिकम् अन्तमः; अन्तिमः; अग्ने त्वन्नो अन्तमः; अन्तितमे अवरोहति।

यद्यपि इस वार्त्तिक में छन्दोग्रहण नहीं किया, तथापि वैदिक प्रयोगों में ही बहुधा इसकी प्रवृत्ति दीख पड़ती है। इससे पूर्व वार्त्तिक में जो तसि प्रत्यय का ग्रहण है, उसकी महाभाष्यकार ने उपेक्षा की है कि—'अन्तिके सीदति अन्तिषत्' इत्यादि प्रयोगों में भी कादिलोप हो जावे ॥ ८८३ ॥

हलस्तद्धितस्य ॥ ८८४ ॥ अ० ६। ४। १५० ॥

हल् से परे जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय का उपधा यकार, उसका लोप होवे, ईकार प्रत्यय परे हो तो। जैसे—गर्गस्यापत्यं कन्या गार्गी; वात्सी; शाकली इत्यादि।

यहां 'हल्' ग्रहण इसलिये है कि—वैद्यस्य स्त्री वैद्यी, यहां भी यकार का लोप न हो ॥ ८८४ ॥

आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति ॥ ८८५ ॥ अ० ६। ४। १५१ ॥

आकार जिसके आदि में न हो ऐसा तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हो, तो हल् से परे अपत्याधिकारस्थ प्रत्यय के उपधा यकार का लोप होवे।

और इस सूत्र में फिर 'तद्धित' ग्रहण से यह भी समझना चाहिये कि ईकार प्रत्यय परे हो, तो अपत्यसंज्ञक से भिन्न यकार का भी लोप हो जाता है। जैसे—गर्गाणां समूहो गार्गकम्; वात्सकम्; सोमो देवताऽस्य सौम्यं हविः; सोमी इष्टिः।

'आपत्य' ग्रहण इसलिये है कि—सांकाश्यकः; काम्पिल्यकः, यहां लोप न हो। 'आकारादि का निषेध' इसलिये है कि—गार्ग्यायणः; वात्स्यायनः, यहां लोप न हो। और 'हल् से परे' इसलिये कहा है कि—कारिकेयस्य युवापत्यं कारिकेयिः; यहां भी लोप न होवे ॥ ८८५ ॥

क्यच्व्योश्च ॥ ८८६ ॥ अ० ६ । ४ । १५२ ॥

क्य और च्वि प्रत्यय परे हों, तो भी हल् से परे अपत्यसंज्ञक यकार का लोप होवे। जैसे—गार्ग्य इवाचरति गार्गीयति; वात्स्य इवाचरति वात्सीयति; शाकलीयति; गार्गीयते; वात्सीयते; शाकलीयते इत्यादि। च्वि प्रत्यय के परे—गार्गीभूतः; वात्सीभूतः; शाकलीभूतः इत्यादि।

यहां अपत्यसंज्ञक 'यकार' का ग्रहण इसलिये है कि—सांकाश्यायते; सांकाश्यीभूतः, यहां लोप न हो। और 'हल् से परे' इसलिये कहा है कि—कारिकेयीयति; कारिकेयीभूतः, यहां भी यकार का लोप न होवे ॥ ८८६ ॥

बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक् ॥ ८८७ ॥ अ० ६ । ४ । १५३ ॥

(नडादीनां कुक् च) इस सूत्र पर नडादिगण के अन्तर्गत बिल्वादि शब्द पढ़े हैं। उनको कुक् का आगम होने से बिल्वक आदि होते हैं।

बिल्वक आदि शब्दों से परे छ प्रत्यय का लुक् हो, तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों तो। जैसे—बिल्वा अस्यां सन्तीति बिल्वकीया—तस्यां भवाः बैल्वकाः; वेणुकीयाः—वैणुकाः; वेत्रकीयाः—वैत्रकाः इत्यादि।

यहां 'छ' प्रत्यय का ग्रहण इसलिये है कि—कुक् आगम का लुक् न होवे। अर्थात् (सन्नियोगशिष्टानां०) इस परिभाषा से कुगागम के सहित लुक् प्राप्त है, सो न हो। और लोप की अनुवृत्ति चली आती है, फिर 'लुक्' ग्रहण इसलिये किया है कि—संपूर्ण प्रत्यय का लोप हो जावे। लुक् न कहते तो अन्त्य अल् के स्थान में होता ॥८८७॥

तुरिष्ठेमेयस्सु ॥ ८८८ ॥ अ० ६ । ४ । १५४ ॥

पूर्व से यहां लुक् की अनुवृत्ति नहीं आती, किन्तु लोप की आती है। लुक् होने से अङ्गकार्य्य गुण का निषेध प्राप्त है। जो अन्त्य का लोप होवे, तो सूत्र ही व्यर्थ होवे, क्योंकि टि भाग का लोप तो अगले सूत्र से हो ही जाता।

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् ये तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो तृच् तृन् प्रत्ययान्त शब्दों का लुक् होवे। प्रत्ययमात्र का लुक् कहा है, इसलिये सब का हो जाता है। जैसे—अतिशयेन कर्त्ता करिष्ठः; भृशं विजेता विजयिष्ठः; वोढा वहिष्ठो वृषभः; दोहीयसी धेनुः इत्यादि। यहां इमनिच् ग्रहण उत्तरार्थ है ॥ ८८८ ॥

टेः ॥ ८८९ ॥ अ० ६ । ४ । १५५ ॥

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों, तो भसंज्ञक अङ्गों के टिभाग का लोप होवे। जैसे—अतिशयेन पटुः पटिष्ठः; लघिष्ठः; पटीयान्; लघीयान्; पटिमा; लघिमा इत्यादि।

यह लोप गुण का अपवाद उवर्णान्त शब्दों में समझना चाहिये। अर्थात् गुण की प्राप्ति में लोपविधान किया है ॥ ८८६ ॥

वा०-णाविष्ठवत्प्रातिपदिकस्य पुंवद्भावरभावटिलोपयणादिपरप्रादि-विन्मतोर्लुक्कन्विध्यर्थम् ॥ ८६० ॥

णिच् प्रत्यय के परे भसंज्ञक प्रातिपदिकमात्र को इष्ठवत् कार्य्य होवे, प्रयोजन यह है कि पुंवद्भाव, रभाव, टिलोप, यणादिपर, प्रादि आदेश, विन्मतोर्लुक्, और कन् प्रत्यय, ये विधि होने के लिये यह वार्त्तिक कहा है।

जैसे—पुंवद्भाव—एनीमाचष्टे एतयति; श्येनीमाचष्टे श्येतयति। इष्ठन् प्रत्यय के परे पुंवद्भाव कहा है, वैसे ही यहां णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है। इसी प्रकार सब कार्य जो इष्ठन् के परे होते हैं, वे णिच् प्रत्यय के परे भी समझना चाहिये।

रभाव—पृथुमाचष्टे, प्रथयति; म्रदयति। यहां (रऋतो०) इस आगामी सूत्र से इष्ठन् के परे ऋकार को र आदेश कहा है, सो णिच् के परे भी होजाता है।

टिलोप—पटुमाचष्टे पटयति; लघुमाचष्टे लघयति। यहां इसी (टेः) सूत्र से जो इष्ठन् प्रत्यय के परे टिलोप कहा है, वह णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है।

यणादिपर—स्थूलमाचष्टे स्थवयति; दूरमाचष्टे दवयति इत्यादि। यहां अगले सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय के परे यण् को आदि लेके परभाग का लोप और पूर्व को गुणादेश कहा है, सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है।

प्रादि—अगले सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय के परे प्रिय आदि शब्दों को प्र आदि आदेश कहे हैं, सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावें। जैसे—प्रियमाचष्टे प्रापयति; स्थिरमाचष्टे, स्थापयति। यहां प्रिय और स्थिर शब्दों को प्र, स्थ आदेश होकर (अचोऽञ्णिति) सूत्र में अच् ग्रहण के होने से प्र, स्थ को वृद्धि होकर पुगागम हो जाता है।

विन्मतोर्लुक्—इस सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय के परे विन् और मतुप् प्रत्ययों का लुक् कहा है, सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावे। जैसे—स्रग्विणमाचष्टे स्रजयति; वसुमन्तमाचष्टे वसयति। यहां वसु शब्द के उकार का भी लोप हो जाता है।

कन्विधि—युव और अल्प शब्दों को इष्ठन् प्रत्यय के परे कन् आदेश कह चुके हैं, सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावे। जैसे—युवानमाचष्टे—अल्पमाचष्टे कनयति; यवयति; अल्पयति इत्यादि।

इस वार्त्तिक के उदाहरणों की गिनती नहीं करदी कि इतने ही स्थलों में इस का प्रयोजन है, किन्तु उदाहरणमात्र दिये हैं। और भी इसके बहुत प्रयोजन समझने चाहियें ॥ ८६० ॥

स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ॥८९१॥ अ० ६।४।१५६॥

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों, तो स्थूल, दूर, युव, ह्रस्व, क्षिप्र और क्षुद्र शब्दों के यण् को आदि ले के परभाग का लोप और पूर्व को गुणादेश होवे।

जैसे—अतिशयेन स्थूलः स्थविष्ठः; स्थवीयान्; अत्यन्तं दूरं दविष्ठम्; दवीयः। यहां स्थूल शब्द में ल और दूर में र मात्र का लोप होजाता, और पूर्व ऊकार को गुण होकर अवादेश होता है। युवन्—अत्यन्तो युवा यवीयान्; यविष्ठः। इन स्थूल आदि तीन शब्दों का पृथ्वादि गण में पाठ न होने से इमनिच् प्रत्यय नहीं होता।

ह्रस्व—ह्रसिष्ठः; ह्रसीयान्; ह्रसिमा। क्षिप्र—क्षेपिष्ठः; क्षेपीयान्; क्षेपिमा; क्षोदिष्ठः; क्षोदीयान्; क्षोदिमा। इन ह्रस्व आदि तीन शब्दों का पृथ्वादिगण में पाठ होने से इमनिच् हो जाता है।

यहां 'पर' ग्रहण इसलिये किया है कि—यण् को आदि लेके पूर्वभाग का लोप न हो जावे॥ ८९१॥

प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहि-गर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः॥ ८९२॥ अ० ६।४।१५७॥

प्रिय, स्थिर, स्फिर, उरु, बहुल, गुरु, वृद्ध, तृप्र, दीर्घ और वृन्दारक शब्दों के स्थान में प्र, स्थ, स्फ, वर्, बंहि, गर्, वर्षि, त्रप्, द्राघि और वृन्द आदेश यथासंख्य करके होवें, इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो।

जैसे—प्रिय—प्र—अतिशयेन प्रियः प्रेष्ठः; प्रेयान्; प्रियस्य भावः प्रेमा। स्थिर—स्थ—स्थेष्ठः; स्थेयान्। स्फिर—स्फ—स्फेष्ठः; स्फेयान्। उरु—वर्—वरिष्ठः; वरीयान्; वरिमा। बहुल—बंहि—बंहिष्ठः; बंहीयान्; बंहिमा। गुरु—गर्—गरिष्ठः; गरीयान्; गरिमा। वृद्ध—वर्षि—वर्षिष्ठः; वर्षीयान्। तृप्र—त्रप्—त्रपिष्ठः; त्रपीयान्। दीर्घ—द्राघि—द्राघिष्ठः; द्राघीयान्; द्राघिमा। वृन्दारक—वृन्द—वृन्दिष्ठः; वृन्दीयान्।

प्रिय उरु गुरु बहुल और दीर्घ शब्द पृथ्वादि गण में पढ़े हैं, इस कारण उनसे इमनिच् प्रत्यय होता है, औरों से नहीं होता। इसीलिये उनसे इमनिच् प्रत्यय के उदाहरण भी नहीं दिये॥ ८९२॥

बहोर्लोपो भू च बहोः॥ ८९३॥ अ० ६।४।१५८॥

बहु शब्द से परे जो इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय उनका लोप हो, और बहु शब्द को भू आदेश होवे।

भू अनेकाल् आदेश होने से सब के स्थान में होजाता है। और (आदेः परस्य) इस परिभाषा सूत्र से पञ्चमीनिर्दिष्ट बहु शब्द से उत्तर को कहा लोपरूप आदेश आदि अल् के स्थान में होता है। जैसे—अतिशयेन बहुः भूयान्; भूयांसौ; भूयांसः; बहोर्भावः भूमा। बहु शब्द पृथ्वादिगण में पढ़ा है।

और इस सूत्र में बहु शब्द का दूसरी बार ग्रहण इसलिये है कि—प्रत्ययों के स्थान में भू आदेश न हो जावे॥ ८६३॥

इष्ठन् प्रत्यय में विशेष यह है कि—

इष्ठस्य यिट् च ॥ ८६४ ॥ अ० ६ । ४ । १५९ ॥

बहु शब्द से परे जो इष्ठन् प्रत्यय, उसको यिट् का आगम और बहु शब्द को भू आदेश भी होवे। जैसे—अतिशयेन बहुः भूयिष्ठः। यिट् में से इट् मात्र का लोप हो जाता है। और यह आगम लोप का अपवाद है॥ ८६४॥

ज्यादादीयसः ॥ ८६५ ॥ अ० ६ । ४ । १६० ॥

प्रशस्य और वृद्ध शब्द को जो ज्य आदेश कह चुके हैं, उससे परे ईयसुन् प्रत्यय के ईकार को आकारादेश होवे। जैसे—अतिशयेन प्रशस्यो वृद्धो वा ज्यायान्।

लोप की अनुवृत्ति यहां चली आती, तो आकारादेश कहना नहीं पड़ता, फिर बीच में यिडागम का व्यवधान होने से नहीं आ सकती॥ ८६५॥

र ऋतो हलादेर्लघोः ॥ ८६६ ॥ अ० ६ । ४ । १६१ ॥

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों, तो हल् जिसके आदि में हो ऐसे लघु-संज्ञक ह्रस्व ऋकार के स्थान में र आदेश हो। जैसे—अतिशयेन पृथुः प्रथिष्ठः; प्रथीयान्; पृथोर्भावः प्रथिमा; म्रदिष्ठः; म्रदीयान्; म्रदिमा इत्यादि।

यहां 'ऋकार' का ग्रहण इसलिये है कि—पटिष्ठः; पटीयान्; पटिमा, यहां र आदेश न हो। 'हल् आदि में' इसलिये कहा है कि—अतिशयेन ऋजुः ऋजिष्ठः; ऋजीयान्; ऋजिमा, यहां न हो। और 'लघुसंज्ञक' विशेषण इसलिये दिया है कि—कृष्णिष्ठः; कृष्णीयान्; कृष्णिमा, यहां गुरुसंज्ञक ऋकार को र आदेश न होवे॥ ८६६॥

वा०—पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामिति वक्तव्यम् ॥ ८६७ ॥

इस वार्त्तिक से परिगणन करते हैं कि पृथु, मृदु, भृश, कृश, दृढ और परिवृढ शब्दों के ऋकार को ही र आदेश हो, दूसरों को नहीं।

इस नियम के होने से—कृतमाचष्टे कृतयति; मातरमाचष्टे मातयति; भ्रातयति इत्यादि में ऋ के स्थान में र आदेश नहीं होता॥ ८६७॥

विभाषर्जोश्छन्दसि ॥ ८६८ ॥ अ० ६ । ४ । १६२ ॥

यहां अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि ऋजु शब्द के ऋकार को किसी से र आदेश प्राप्त नहीं है।

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हो, तो वेदविषय में ऋजु शब्द के ऋकार को विकल्प करके र आदेश होवे। जैसे—अतिशयेन ऋजुः रजिष्ठः, ऋजिष्ठो वा पन्थाः; रजीयान्, ऋजीयान्; ऋजुमाचष्टे ऋजयति इत्यादि ॥ ८६८ ॥

प्रकृत्यैकाच् ॥ ८६६ ॥ अ० ६ । ४ । १६३ ॥

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हो, तो भसंज्ञक एकाच् जो शब्द है, वह प्रकृति करके रहे। जैसे—अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः, स्रजीयान्; स्रग्विणमाचष्टे स्रजयति; अतिशयेन स्रुग्वान् स्रुचिष्ठः, स्रुचीयान्; स्रुग्वन्तमाचष्टे स्रुचयति।

यहां अजादि प्रत्ययों के परे विन् और मतुप् का लुक् होने के पश्चात् एकाच् शब्दों के टिभाग का लोप प्राप्त है, सो प्रकृतिभाव के होने से नहीं होता। और टिलोप का ही अपवाद यह सूत्र है।

यहां 'एकाच्' ग्रहण इसलिये है कि—अतिशयेन वसुमान् वसिष्ठः, यहां प्रकृतिभाव न होवे, किन्तु टिलोप ही होजावे ॥ ८६६ ॥

वा०—प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवानः ॥ ६०० ॥

अक् प्रत्यय परे हो, तो राजन्य मनुष्य और युवन् शब्द प्रकृति करके रह जावें। जैसे—राजन्यानां समूहो राजन्यकम्; मानुष्यकम्, यहां (आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति) इस लिखित सूत्र से यकार का लोप प्राप्त है, सो न होवे।

यूनो भावः यौवनिका, यहां इस युवन् शब्द का मनोज्ञादिगण में पाठ होने से वुञ् प्रत्यय हुआ है, उस के नांत टिभाग का लोप प्राप्त है, सो नहीं होता ॥ ६०० ॥

इनण्यनपत्ये ॥ ६०१ ॥ अ० ६ । ४ । १६४ ॥

अपत्यरहित अर्थों में अण् प्रत्यय परे हो, तो भसंज्ञक इन्नन्त अङ्ग प्रकृति करके रह जावे। जैसे—सांकुटिनम्; सांरावणम्; सांमार्जिनम्; स्रग्विण इदं स्राग्विणम् इत्यादि।

यहां 'अण्' प्रत्यय का ग्रहण इसलिये है कि—दण्डिनां समूहो दाण्डम्, यहां अञ् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव न होवे। और 'अपत्य का निषेध' इसलिये है कि—मेधाविनोऽपत्यं मैधावः, यहां भी प्रकृतिभाव न होवे ॥ ६०१ ॥

गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च ॥ ६०२ ॥ अ० ६ । ४ । १६५ ॥

यह सूत्र अपत्यसंज्ञक अण् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव होने के लिये है।

अपत्यसंज्ञक अण् प्रत्यय परे हो, तो गाथिन्, विदथिन्, केशिन्, गणिन्, पणिन् ये शब्द प्रकृति करके रहें। जैसे—गाथिनोऽपत्यं गाथिनः; वैदथिनः; कैशिनः; गाणिनः; पाणिनः ॥ ६०२ ॥

संयोगादिश्च ॥ ६०३ ॥ अ० ६ । ४ । १६६ ॥

अपत्यसंज्ञक अण् प्रत्यय परे हो, तो संयोग से परे इन्भाग प्रकृति करके रहे। जैसे—शाङ्खिनोऽपत्यं शाङ्खिनः; माद्रिणः; वाज्रिणः ॥ ६०३ ॥

अन् ॥ ६०४ ॥ अ० ६ । ४ । १६७ ॥

यहां अपत्य की अनुवृत्ति नहीं आती, किन्तु सामान्य विधान है।

अण् प्रत्यय परे हो, तो भसंज्ञक अन्नन्त अङ्ग प्रकृति करके रहे। जैसे—साम्नामयं मंत्रः सामनः; वैमनः; सौत्वनः; जैत्वनः इत्यादि ॥ ६०४ ॥

ये चाभावकर्मणोः ॥ ६०५ ॥ अ० ६ । ४ । १६८ ॥

भावकर्म अर्थों को छोड़ के अन्य अर्थों में विहित यकारादि तद्धित प्रत्यय परे हो, तो भसंज्ञक अन्नन्त अङ्ग प्रकृति करके रह जावे। जैसे—सामसु साधुः सामन्यः; ब्रह्मण्यः इत्यादि।

यहां 'भावकर्म अर्थों का निषेध' इसलिये है कि—राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम्। यह राजन् शब्द पुरोहितादिगण में पढ़ा है, इस कारण इससे यक् प्रत्यय हो जाता है ॥६०५॥

आत्माध्वानौ खे ॥ ६०६ ॥ अ० ६ । ४ । १६९ ॥

तद्धितसंज्ञक ख प्रत्यय परे हो, तो आत्मन् और अध्वन् शब्द प्रकृति करके रह जावें। जैसे—आत्मनीनः; अध्वानमलङ्गामी अध्वनीनः।

यहां 'ख' प्रत्यय का ग्रहण इसलिये है कि—प्रत्यात्मम्; प्राध्वम्, यहां प्रकृतिभाव न होवे। यहां आत्मन् अन्नन्त शब्द से समासान्त टच् और उपसर्ग से परे अध्वन् शब्द से अच् प्रत्यय हुआ है ॥ ६०६ ॥

न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः ॥ ६०७ ॥ अ० ६ । ४ । १७० ॥

अपत्याधिकार में विहित अण् प्रत्यय परे हो, तो वर्मन् शब्द को छोड़ के म जिसके पूर्व हो, ऐसा भसंज्ञक अन्नन्त अङ्ग प्रकृति करके न रहे, किन्तु टिलोप होजावे। जैसे—सुषाम्णोऽपत्यं सौषामः; चान्द्रसामः; सुदाम्नोऽपत्यं सौदामः इत्यादि।

यहां 'मकारपूर्व' का ग्रहण इसलिये है कि—सौत्वनः, यहां टिलोप न हो। 'अपत्य अर्थ' इसलिये कहा है कि—चर्मणा परिवृतो रथश्चार्मणः, यहां प्रकृतिभाव हो जावे। और 'वर्मन् शब्द का निषेध' इसलिये किया है कि—भूपालवर्मणोऽपत्यं भौपालवर्म्मणः, यहां भी टिलोप न हो जावे ॥ ६०७ ॥

वा०—मपूर्वात् प्रतिषेधे वा हितनाम्नः ॥ ६०८ ॥

पूर्व सूत्र में मकार जिसके पूर्व हो उसको प्रकृतिभाव का निषेध किया है, सो हितनामन् शब्द को विकल्प करके प्रकृतिभाव हो। जैसे—हितनाम्नोऽपत्यं हैतनामः; हैतनाम्नः। यहां पक्ष में टिलोप हो जाता है ॥ ६०८ ॥

ब्राह्मोऽजातौ ॥ ६०९ ॥ अ० ६ । ४ । १७१ ॥

इस सूत्र का अर्थ महाभाष्यकार ने ऐसा किया है कि—इस सूत्र का योगविभाग करके दो वाक्यार्थ समझने चाहियें। ब्राह्म शब्द सामान्य अर्थों में अण्प्रत्ययान्त निपातन किया है। जैसे—ब्राह्मो गर्भः; ब्राह्ममस्त्रम्; ब्राह्मं हविः; ब्राह्मो नारदः इत्यादि। यहां सर्वत्र ब्रह्मन् शब्द का टिलोप निपातन से किया है।

और अपत्यसंज्ञक अण्प्रत्यय परे हो, तो जाति अर्थ में ब्रह्मन् शब्द के टिभाग का लोप न होवे। जैसे—ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणः।

यहां 'अपत्य' ग्रहण इसलिये है कि—ब्राह्मी ओषधिः, यहां निषेध न लगे ॥ ६०९ ॥

कार्मस्ताच्छील्ये ॥ ६१० ॥ अ० ६ । ४ । १७२ ॥

ताच्छील्य अर्थ में ण प्रत्यय परे हो, तो कर्म्मन् शब्द का टिलोप निपातन से किया है। जैसे—कर्म्मशीलः कार्म्मः। इस कर्म्मन् शब्द का छत्रादिगण में पाठ होने से शील अर्थ में ण प्रत्यय होता है।

यह सूत्र नियमार्थ है कि—कर्म्मण इदं कार्म्मणम्, इत्यादि में टिलोप न होवे ॥ ६१० ॥

औक्षमनपत्ये ॥ ६११ ॥ अ० ६ । ४ । १७३ ॥

अपत्याधिकार को छोड़ के अन्य अर्थों में अण् प्रत्यय परे हो, तो औक्ष शब्द में टिलोप निपातन किया है। जैसे—उक्ष्ण इदं औक्षम्।

'अपत्य का निषेध' इसलिये है कि—उक्ष्णोऽपत्यमौक्ष्णः, यहां निषेध न होवे ॥ ६११ ॥

दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवासिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि ॥ ६१२ ॥ अ० ६ । ४ । १७४ ॥

इस सूत्र में दाण्डिनायन, हास्तिनायन, आथर्वणिक, जैह्माशिनेय, वासिनायनि, भ्रौणहत्य, धैवत्य, सारव, ऐक्ष्वाक, मैत्रेय और हिरण्मय इन शब्दों में तद्धितप्रत्ययों के परे टिलोप आदि कार्य निपातन से माने हैं।

दण्डिन् और हस्तिन् शब्द नडादि गण में पढ़े हैं, इनसे फक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन से किया है। जैसे—दण्डिनां गोत्रापत्यं दाण्डिनायनः; हास्तिनायनः।

अथर्वन् शब्द वसन्तादि गण में पढ़ा है। उपचारोपाधि मान के अथर्वा ऋषि के बनाये ग्रन्थ को भी 'अथर्वान्' कहते हैं। उससे पढ़ने जानने अर्थों में ठक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन किया है। जैसे—अथर्वाणमधीते वेत्ति वा आथर्वणिकः।

जिह्माशिन् शब्द शुभ्रादि गण में पढ़ा है, उससे अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन किया है। जैसे—जिह्माशिनोऽपत्यं जैह्माशिनेयः।

गोत्र संज्ञारहित वृद्धसंज्ञक वासिन् शब्द से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय के परे टिलोप का निषेध निपातन किया है। जैसे—वासिनोऽपत्यं वासिनायनिः।

भ्रूणहन् और धीवन् शब्दों से ष्यञ् प्रत्यय के परे इनके नकार को तकारादेश निपातन किया है। जैसे—भ्रूणघ्नो भावः भ्रौणहत्यम्; धीव्नो भावो धैवत्यम्। भ्रूणहन् शब्द से ष्यञ् प्रत्यय के णित् होने से (हनस्तोऽचिण्णलोः) इस सूत्र से नकारादेश हो जाता, फिर निपातन नियमार्थ है कि अन्य तद्धित प्रत्ययों के परे इसको तकारादेश न होवे। जैसे—भ्रूणघ्नोऽपत्यं भ्रौणघ्नः; वात्रघ्नः, यहां अण् प्रत्यय हुआ है।

सरयू शब्द से शैषिक अण् प्रत्यय के परे अयू भाग का लोप निपातन किया है। जैसे—सरय्वां भवं सारवमुदकम्। ऊकार को गुण होकर अवादेश हो जाता है।

जनपद के समान क्षत्रियवाची इक्ष्वाकु शब्द से अपत्य और तद्राज अर्थों में अञ् प्रत्यय के परे उकार का लोप निपातन किया है। जैसे—इक्ष्वाकोरपत्यमिक्ष्वाकूनां राजा वा ऐक्ष्वाकः।

मित्रयु शब्द गृष्ट्यादि गण में पढ़ा है, उससे ढञ् प्रत्यय के परे इय् आदेश का अपवाद यु शब्द का लोप निपातन किया है। जैसे—मित्रयोरपत्यं मैत्रेयः।

हिरण्य शब्द से मयट् प्रत्यय के परे य मात्र का लोप निपातन किया है। जैसे—हिरण्यस्य विकारः हिरण्मयः॥ ६१२॥

ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि छन्दसि॥ ६१३॥

अ० ६। ४। १७५॥

ऋत्व्य, वास्त्व्य, वास्त्व, माध्वी और हिरण्यय, ये शब्द वेदविषय में तद्धितप्रत्ययान्त निपातन किये हैं।

जैसे—ऋतौ भवम् ऋत्व्यम्; वास्तौ भवं वास्त्व्यम्, यहां ऋतु और वास्तु शब्दों को यकारादि यत् प्रत्यय के परे यणादेश निपातन किया है।

वस्तु शब्द से अण् प्रत्यय के परे गुण का अपवाद यणादेश निपातन किया है—वस्तूनि भवं वास्त्वम्। मधुशब्द से स्त्रीलिङ्ग में अण् प्रत्यय के परे यणादेश निपातन किया है। जैसे—मधुन इमा माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।

२२

हिरण्य शब्द से परे मयट् के म मात्र का लोप निपातन से किया है। जैसे—हिरण्यस्य विकारो हिरण्ययम् ॥ ६१३ ॥

तद्धितेष्वचामादेः ॥ ६१४ ॥ अ० ७ । २ । ११७ ॥

ञित्, णित् तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो अङ्ग के अचों में आदि अच् को वृद्धि हो। जैसे—ञित्—गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः; वात्स्यः; दाक्षिः; प्लाक्षिः इत्यादि। णित्—उपगोरपत्यम् औपगवः; कापटवः; सौम्यं हविः इत्यादि ॥ ६१४ ॥

किति च ॥ ६१५ ॥ अ० ७ । २ । ११८ ॥

कित्संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो भी अङ्ग के अचों में आदि अच् को वृद्धि होवे। जैसे—फक्—नाडायनः; चारायणः; रेवत्या अपत्यं रैवतिकः इत्यादि ॥ ६१५ ॥

देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात् ॥६१६॥ अ० ७ । ३ । १॥

यहां ञित्, णित् और कित् तद्धितप्रत्ययों तथा अचों के आदि अच् इन सब की अनुवृत्ति चली आती है।

ञित्, णित् और कित् तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो देविका, शिंशपा, दित्यवाट्, दीर्घसत्र और श्रेयस्, इन अङ्गों के आदि अच् को वृद्धि प्राप्त है, उस को बाध के आकारादेश होवे।

जैसे—देविकायां भवं दाविकमुदकम्—देविका नाम किसी नदीविशेष का है; देविकाकूले भवाः दाविकाः शालयः; पूर्वदेविका नाम है प्राचीनों के ग्राम का—पूर्वदेविकायां भवः पूर्वदाविकः, यहां भी (प्राचां ग्राम०) इस आगामी सूत्र से उत्तरपदवृद्धि प्राप्त है, उसका अपवाद आकार ही हो जाता है।

शिंशपाया विकारः शांशपश्चमसः, यह शिंशपा शब्द शीशों वृक्ष का नाम है। उसके अनुदात्तादि होने से विकार अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है। शिंशपास्थले भवाः शांशपास्थलाः। और पूर्वशिंशपा शब्द प्राचीनग्राम की संज्ञा है, उसको भी पूर्वोक्त प्रकार से उत्तरपदवृद्धि हो जाती है। जैसे—पूर्वशिंशपायां भवः पूर्वशांशपः।

दित्यवाट्—दित्यौह इदं दात्यौहम्, यहां शैषिक अण् प्रत्यय हुआ है; दीर्घसत्र—दीर्घसत्रे भवं दार्घसत्रम्; श्रेयसि भवं श्रायसम् ॥ ६१६ ॥

वा०—वहीनरस्येद्वचनम् ॥ ६१७ ॥

ञित्, णित् और कित् तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो वहीनर शब्द के आदि अच् को इकारादेश होवे। जैसे—वहीनरस्यापत्यं वैहीनरिः, यहां इकारादेश वृद्धि की प्राप्ति में नहीं कहा, इसी से वृद्धि का बाधक नहीं होता है। आदेश किये इकार को वृद्धि होजाती है।

और किन्हीं ऋषि लोगों का इस विषय में यह अभिप्राय है कि—'विहीनर' शब्द से ही प्रत्यय होता है। अर्थात् यह ऐसा ही शब्द है। कामभोगाभ्यां विहीनो नरः विहीनरः। यहां पृषोदरादि मान के एक नकार का लोप हो जाता है। जिनके मत में 'विहीनर' शब्द है, उनके मत में वार्त्तिक नहीं करना चाहिये ॥ ६१७ ॥

केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः ॥ ६१८ ॥ अ० ७ । ३ । २ ॥

केकय, मित्रयु और प्रलय शब्दों के यकारादि भाग को इय् आदेश होवे, ञित् णित् कित् तद्धित प्रत्यय परे हों तो, और आदि अच् को वृद्धि तो पूर्व सूत्रों से सिद्ध ही है।

जैसे—केकयस्यापत्यं केकयानां राजा वा कैकेयः, यहां जनपद क्षत्रियवाची केकय शब्द से अञ् प्रत्यय हुआ है; मित्रयुभावेन श्लाघते मैत्रेयिकया श्लाघते, यहां गोत्रवाची मित्रयु शब्द से श्लाघा अर्थ में वुञ् प्रत्यय हुआ है; प्रलयादागतं प्रालेयमुदकम्, यहां आगत अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ है ॥ ६१८ ॥

न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ॥६१९॥ अ० ७ । ३ । ३ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हों, तो यकार वकार से परे अचों के आदि अच् के स्थान में वृद्धि न हो, किन्तु उन यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम हो, अर्थात् यकार से पूर्व ऐकार और वकार से पूर्व औकार आदेश होवे।

जैसे—व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः; न्यायमधीते नैयायिकः; व्यसने भवं वैयसनम् इत्यादि; स्वश्वस्यापत्यं सौवश्वः; सौवर्गः; स्वराणां व्याख्यानो ग्रन्थः सौवरः इत्यादि।

यहां 'यकार वकार से पूर्व' इसलिये कहा है कि—ऋर्थस्याऽपत्यं आर्थिः, यहां रेफ से पूर्व ऐच् का आगम न हो। 'पदान्त' विशेषण इसलिये है कि—यष्टिः प्रहरणमस्य याष्टीकः, यहां यकार से पूर्व ऐच् का आगम भी न होवे। और जहां यकार वकारों से उत्तर वृद्धि की प्राप्ति न हो, वहां उनसे पूर्व ऐच् का आगम भी न हो। जैसे—दध्यश्वस्यापत्यं दाध्यश्विः ॥ ६१९ ॥

द्वारादीनाञ्च ॥ ६२० ॥ अ० ७ । ३ । ४ ।

द्वारादि शब्दों के यकार वकार से उत्तर अचों के आदि अच् को वृद्धि न हो, किन्तु उन यकार वकारों से पूर्व तो ऐच् का आगम हो जावे।

जैसे—द्वारे नियुक्तः दौवारिकः; द्वारपालस्यापत्यं दौवारपालम्; स्वरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः सौवरः; सौवरोऽध्यायः; स्वाध्यायः प्रयोजनमस्य सौवाध्यायिकः; व्यल्कशे भवः वैयल्कशः; स्वस्तीत्याह सौवस्तिकः; स्वर्गमनं प्रयोजनमस्य सौवर्गमनिकः; स्फैयकृतस्याऽपत्यं स्फैयकृतः; स्वादुमृदु भक्तिरस्य सौवादुमृदवः; शुन इदं शौवनम्—यहां पूर्वलिखित (अन्) सूत्र से अण् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव हो जाता है, शुनो विकारः शौवनं मांसम्; श्वादंष्ट्रायां

भवः शौवादंष्ट्रो मणिः; स्वस्येदमैश्वर्यं सौवम्; स्वग्रामे भवः सौवग्रामिकः—स्वग्राम शब्द से अध्यात्मादि गण में मान के ठञ् प्रत्यय होता है।

पूर्व सूत्र में पदान्त यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम कहा है, यहां द्वारादि शब्दों में पदान्त नहीं, इसलिये फिर अलग करके कहा। स्वाध्याय शब्द इस द्वारादि गण में पढ़ा है, इसका दो प्रकार से निर्वचन होता है—सुष्ठु वा अध्ययनं स्वाध्यायः, शोभनं वा अध्ययनं स्वाध्यायः, अथवा स्वमध्ययनं स्वाध्यायः। इनमें से किसी प्रकार का निर्वचन समझो, स्वाध्याय शब्द सर्वथा यौगिक ही है।

और द्वारादि शब्द सब अव्युत्पन्न प्रातिपदिक हैं। इसीलिये यह सूत्र कहा है। सो जो 'सु+अध्याय' ऐसा विग्रह करें, तब तो पदान्त वकार से पूर्व प्रथम सूत्र से ही ऐच् का आगम हो जावेगा। और जब 'स्व+आध्याय' ऐसा निर्वचन करें तो भी स्व शब्द इसी गण में पढ़ा है। तो अगले सूत्र में केवल शब्द के ज्ञापक से इस प्रकरण में तदादिविधि होती है। फिर स्वशब्द जिसके आदि में हो ऐसे स्वाध्याय शब्द से इसी सूत्र करके ऐच् का आगम हो जावेगा। फिर स्वाध्याय शब्द को इस गण में पढ़ने से कुछ प्रयोजन नहीं। यह महाभाष्यकार का आशय है॥ ९२०॥

न्यग्रोधस्य च केवलस्य ॥ ९२१ ॥ अ० ७ । ३ । ५ ॥

केवल न्यग्रोध शब्द के यकार से परे, अचों के आदि अच् के स्थान में वृद्धि न हो, किन्तु यकार से पूर्व ऐच् का आगम हो जावे। जैसे—न्यग्रोधस्य विकारो नैयग्रोधश्चमसः।

यहां 'केवल' शब्द का ग्रहण इसलिये है कि—न्यग्रोधमूले भवाः न्याग्रोधमूलाः शालयः, यहां ऐच् का आगम न होवे।

इस 'न्यग्रोध' शब्द का ग्रहण व्युत्पत्तिपक्ष में नियमार्थ है कि पदान्त यकार से पूर्व के केवल न्यग्रोध शब्द को ही ऐच् का आगम हो, अन्य शब्दों को तदादि होने से भी हो जावे। और अव्युत्पत्तिपक्ष में विधान ज्ञापकार्थ है॥ ९२१॥

न कर्मव्यतिहारे ॥ ९२२ ॥ अ० ७ । ३ । ६ ॥

कर्मव्यतिहार अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक के यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम न होवे। जैसे—व्यावक्रोशी; व्यावलेखी; व्यावहासी इत्यादि।

यहां कर्मव्यतिहार अर्थ में कृदन्त णच् प्रत्यय और तदन्त से स्त्रीलिङ्गस्वार्थ में तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय हुआ है॥ ९२२॥

स्वागतादीनां च ॥ ९२३ ॥ अ० ७ । ३ । ७ ॥

ञित् णित् कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हों, तो गणपठित स्वागतादि शब्दों के यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम न होवे।

जैसे—स्वागतमित्याह स्वागतिकः; स्वध्वरेण चरति स्वाध्वरिकः; स्वाङ्गस्यापत्यं स्वाङ्गिः; व्यङ्गस्यापत्यं व्याङ्गिः; व्यडस्यापत्यं व्याडिः; व्यवहारः प्रयोजनमस्य व्यावहारिकः—यहां व्यवहार शब्द कर्मव्यतिहार अर्थ में नहीं, किन्तु लौकिक कार्य्यों का वाची है; स्वपतौ साधुः स्वापतेयः ।

स्वागतादि सब यौगिक शब्द हैं, उनमें तो पदान्त यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम प्राप्त है, और स्वपति शब्द में यह बात नहीं, सो स्व शब्द द्वारादि गण में पढ़ा है, वहां तदादि से ऐच् का आगम प्राप्त है, इन सबका निषेध समझना चाहिये ॥ ६२३ ॥

श्वादेरिञि ॥ ६२४ ॥ अ० ७ । ३ । ८ ॥

तद्धितसंज्ञक इञ् प्रत्यय परे हो, तो किसी शब्द के आदि में वर्त्तमान श्व शब्द के वकार से पूर्व ऐच् का आगम न हो । जैसे—श्वभस्त्रस्यापत्यं श्वाभस्त्रिः; श्वादंष्ट्रिः इत्यादि ।

श्वन् शब्द द्वारादिगण में पढ़ा है, इस कारण इसको तदादिविधि मान कर वकार से पूर्व ऐच् प्राप्त है, उसका प्रतिषेध किया है ॥ ६२४ ॥

वा०—इकारादिग्रहणं च श्वागणिकाद्यर्थम् ॥ ६२५ ॥

सूत्र में तद्धितसंज्ञक इञ् प्रत्यय के परे ऐजागम का निषेध किया है, सो सामान्य इकारादि प्रत्यय के परे करना चाहिये । जैसे—श्वगणेन चरति श्वागणिकः, श्वायूथिकः इत्यादि । यह वार्त्तिक सूत्र का शेष है ॥ ६२५ ॥

वा०—तदन्तस्य चान्यत्र प्रतिषेधः ॥ ६२६ ॥

और इञ् प्रत्यय से भिन्न कोई प्रत्यय परे हो, तो आदि में वर्त्तमान श्व शब्द के वकार से पूर्व ऐच् का आगम न हो । जैसे—श्वाभस्त्रेः स्वं श्वाभस्त्रम् इत्यादि ॥ ६२६ ॥

पदान्तस्यान्यतरस्याम् ॥ ६२७ ॥ अ० ७ । ३ । ९ ॥

पद शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे श्व शब्द के वकार से पूर्व ऐच् का आगम विकल्प करके होवे । जैसे—श्वापदस्येदं श्वापदम्, शौवापदम् इत्यादि ॥ ६२७ ॥

उत्तरपदस्य ॥ ६२८ ॥ अ० ७ । ३ । १० ॥

यह अधिकार सूत्र है । यहां से आगे जो कार्य विधान करें, सो (हनस्तो०) इस सूत्र पर्य्यन्त सामान्य करके उत्तरपद को होगा ॥ ६२८ ॥

अवयवादृतोः ॥ ६२९ ॥ अ० ७ । ३ । ११ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हों, तो अवयववाची से परे जो ऋतुवाची उत्तरपद उसके अचों में आदि अच् को वृद्धि होवे ।

जैसे—पूर्ववर्षासु भवं पूर्ववार्षिकम्; पूर्वहैमनम्; अपरवार्षिकम्; अपरहैमनम् इत्यादि। यहां पूर्व शब्द का वर्षा और हेमन्त शब्द के साथ एकदेशी समास होता, और वर्षा शब्द से शैषिक ठक्, हेमन्त से अण् प्रत्यय और हेमन्त शब्द के तकार का लोप हुआ है।

यहां 'अवयव' शब्द का ग्रहण इसलिये है कि—पूर्वासु वर्षासु भवं पौर्ववार्षिकम्, यहां अवयविसमास के न होने से उत्तरपदवृद्धि न हुई। यहां वर्षा और हेमन्त शब्दों के पूर्व और अपर शब्द अवयव हैं ॥ ६२९ ॥

सुसर्वार्द्धाज्जनपदस्य ॥ ६३० ॥ अ० ७ । ३ । १२ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो सु, सर्व और अर्द्ध शब्दों से परे जो जनपद देशवाची उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे।

जैसे—सुपञ्चालेषु भवः सुपाञ्चालकः; सर्वपाञ्चालकः; अर्द्धपाञ्चालकः इत्यादि। यहां शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है ॥ ६३० ॥

दिशोऽमद्राणाम् ॥ ९३१ ॥ अ० ७ । ३ । १३ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो दिशावाची शब्दों से परे जो मद्र शब्द को छोड़ के जनपद देशवाची उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे।

जैसे—पूर्वपञ्चाला निवासोऽस्य पूर्वपञ्चालकः; अपरपञ्चालकः; दक्षिणपञ्चालकः इत्यादि। यहां भी शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है।

यहां 'दिशावाची' का ग्रहण इसलिये है कि—पूर्वः पञ्चालानां पूर्वपञ्चालः पूर्वपञ्चालेषु भवः पौर्वपञ्चालकः; आपरपञ्चालकः, यहां एकदेशी समास में पूर्व तथा अपर शब्द दिशावाची नहीं, किन्तु अवयववाची हैं, इस कारण उत्तरपदवृद्धि नहीं होती। 'मद्रशब्द का निषेध' इसलिये है कि—पूर्वमद्रेषु भवः पौर्वमद्रः; आपरमद्रः, यहां शैषिक अञ् प्रत्यय के परे उत्तरपदवृद्धि नहीं होती ॥ ६३१ ॥

प्राचां ग्रामनगराणाम् ॥ ९३२ ॥ अ० ७ । ३ । १४ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो प्राचीन आचार्यों के मत में दिशावाची शब्दों से परे जो ग्राम और नगरवाची उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि हो।

जैसे-ग्राम—पूर्वेषुकामशम्यां भवः पूर्वैषुकामशमः; अपरैषुकामशमः; पूर्वकार्णमृत्तिकः; अपरकार्णमृत्तिकः। नगरों से—पूर्वमथुरायां भवः पूर्वमाथुरः; अपरमाथुरः; पूर्वस्रौघ्नः; दक्षिणस्रौघ्नः इत्यादि ॥ ६३२ ॥

संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च ॥ ९३३ ॥ अ० ७ । ३ । १५ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो संख्यावाची शब्दों से परे जो संवत्सर और संख्यावाची उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे।

जैसे—द्विसंवत्सरावधीष्टो भृतो भूतो भावी वा, द्विसांवत्सरिकः; द्वे षष्टी अधीष्टो भृतो भूतो भावो वा द्विषाष्टिकः; द्विसाप्ततिकः; द्व्याशीतिकः इत्यादि।

यहां संवत्सर के ग्रहण से उत्तर सूत्र में परिमाणान्तग्रहण में कालपरिमाण का ग्रहण नहीं होता, इससे—द्वैशमिकः; त्रैशमिकः, यहां उत्तरपदवृद्धि नहीं होती। द्विवर्षा; त्रिवर्षा, यहां परिमाणवाची से कहा ङीप् प्रत्यय भी नहीं होता॥ ९३३॥

वर्षस्याभविष्यति ॥ ९३४ ॥ अ० ७ । ३ । १६ ॥

यहां संख्यावाची की अनुवृत्ति आती है।

भविष्यत् अर्थ को छोड़ के अन्य अर्थों में स्थित ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो संख्यावाची शब्दों से परे जो वर्ष उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् को वृद्धि हो। जैसे—द्विवर्षे अधीष्टो भृतो भूतो वा द्विवार्षिकः; त्रिवार्षिकः इत्यादि।

यहां 'भविष्यत् अर्थ का निषेध' इसलिये किया है कि—त्रीणि वर्षाणि भावी त्रैवर्षिकम्, यहां उत्तरपदवृद्धि न होवे।

अधीष्ट और भृत अर्थों में भी भविष्यत् काल होता है। परन्तु वहां भविष्यत् का निषेध नहीं लगता, क्योंकि उन अर्थों में जो भविष्यत् आ सकता है, वह तद्धित प्रत्यय का अर्थ नहीं है। जैसे—द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो वा कर्म करिष्यतीति द्विवार्षिको मनुष्यः॥ ९३४॥

परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः ॥ ९३५ ॥ अ० ७ । ३ । १७ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो संख्यावाची शब्दों से परे जो संज्ञाविषय में और शाण उत्तरपद को छोड़ के अन्य परिमाणान्त उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् को वृद्धि होवे।

जैसे—द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्य द्विकौडविकः; द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतं द्विसौवर्णिकम्; द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतं द्विनैष्किकम्; त्रिनैष्किकम् इत्यादि। यहां ठञ् प्रत्यय हुआ है।

यहां 'संज्ञाविषय में निषेध' इसलिये किया है कि—पञ्च लोहित्यः परिमाणमस्य पाञ्चलोहितिकम्; पाञ्चकपालिकम्, यहां संज्ञा में उत्तरपदवृद्धि न हो। और 'शाण उत्तरपद के परे निषेध' इसलिये है कि—द्वाभ्यां शाणाभ्यां क्रीतं द्वैशाणम्; त्रैशाणम्, यहां क्रीत अर्थ में अण् प्रत्यय के परे उत्तरपद को वृद्धि न होवे॥ ९३५॥

जे प्रोष्ठपदानाम् ॥ ६३६ ॥ अ० ७ । ३ । १८ ॥

यहां जे शब्द से जात अर्थ का बोध होता है। जात अर्थ में विहित ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो प्रोष्ठपदा नामक नक्षत्र में उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होवे।

जैसे—प्रोष्ठपदासु जातः प्रोष्ठपदो माणवकः, यहां नक्षत्रवाची से सामान्य काल अर्थ में विहित अण् प्रत्यय का लुप् होकर फिर नक्षत्रवाची से जात अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

यहां 'जे' ग्रहण इसलिये है कि—प्रोष्ठपदासु भवः प्रोष्ठपदः, यहां वृद्धि न हो। और इस सूत्र में बहुवचन निर्देश से प्रोष्ठपदा के पर्य्यायवाचियों का भी ग्रहण समझना चाहिये। जैसे—भद्रपदासु जातो भाद्रपादः ॥ ६३६ ॥

हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च ॥ ६३७ ॥ अ० ७ । ३ । १६ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो हृद्, भग, सिन्धु ये जिनके अन्त में हों, ऐसे पूर्वपदों और उत्तरपदों के अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि हो।

जैसे—सुहृदयस्येदं सौहार्दम्; सुहृदयस्य भावः सौहार्दम्; सुभगस्य भावः सौभाग्यम्; दौर्भाग्यम्; सुभगाया अपत्यं सौभागिनेयः; दौर्भागिनेयः।

और 'सुभग' शब्द उद्गात्रादि गण में भी पढ़ा है, उससे वेद में ही अञ् प्रत्यय होता है। परन्तु उभयपदवृद्धि नहीं होती, क्योंकि 'महते सौभगाय' ऐसा ही प्रयोग वेद में आता है। सो वेद में सब कार्य्यों का विकल्प होने से पूर्वपदवृद्धि हो जाती है ॥ ६३७ ॥

अनुशतिकादीनां च ॥ ६३८ ॥ अ० ७ । ३ । २० ॥

यहां पूर्व सूत्र से पूर्वपद की भी अनुवृत्ति चली आती है।

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो अनुशतिकादिगण पठित शब्दों में पूर्व और उत्तर दोनों पदों के आदि अचों के स्थान में वृद्धि होवे।

जैसे—अनुशतिकस्येदम् आनुशातिकम्; अनुहोडेन चरति आनुहौडिकः; अनुसंवरणे दीयते आनुसांवरणम्; अनुसंवत्सरेण दीयते आनुसंवत्सरिकः; अङ्गारवेणोरपत्यम् आङ्गारवैणवः; असिहत्ये भवम् आसिहात्यम्; अस्यहत्यशब्दोऽसिन्नध्य।येऽस्ति आस्यहात्यः; अस्यहेतिः प्रयोजनमस्य आस्यहैतिकः; वध्योगस्यापत्यं वाध्योगः; पुष्करसतोऽपत्यं पौष्करसादिः; अनुहरतोऽपत्यम् आनुहारतिः; कुरुकतस्यापत्यं कौरुकात्यः; कुरुपञ्चालेषु भवः कौरुपाञ्चालः; उदकशुद्धस्यापत्यम् औदकशौद्धिः।

इह लोके भवं ऐहलौकिकम्; परलोके भवं पारलौकिकम् लोकोत्तरपद प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय कह चुके हैं; सर्वलोके विदितः सार्वलौकिकः पुरुषः; सर्वपुरुषस्येदं कर्म

सार्वपौरुषम्; सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा सार्वभौमः; प्रयोगे भवं प्रायोगिकम्; परस्त्रिया अपत्यं पारस्त्रैणेयः—परस्त्री शब्द कल्याण्यादिगण में पढ़ा है, वहां इनङ् आदेश हो जाता है; राजपुरुष शब्द को ष्यञ् प्रत्यय के परे उभयपदवृद्धि होती है—राजपुरुषस्य कर्म राजपौरुष्यम् ।

ष्यञ् प्रत्यय का नियम इसलिये है कि—राजपुरुषस्यापत्यं राजपुरुषायणिः, यहां उत्तरदेशीय आचार्य्यों के मत में गोत्रसंज्ञारहित वृद्धिसंज्ञक प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय होता है; शतकुम्भे भवः शातकौम्भः; सुखशयनं पृच्छति सौखशायनिकः; परदारान् गच्छति पारदारिकः; सूत्रनडस्यापत्यं सौत्रनाडिः; अभिगममर्हति आभिगामिकः; अधिदेवे भवमाधिदैविकम्; आधिभौतिकम्; आध्यात्मिकम्—अध्यात्मादि शब्दों से भवार्थ में ठञ् प्रत्यय कह चुके हैं ।

यह आकृतिगण इसलिये समझना चाहिये कि अन्य अपठित शब्दों को भी उभय-पदवृद्धि हो जावे । जैसे—चतस्र एव विद्याः चातुर्वैद्यम्; चातुराश्रम्यम् इत्यादि में भी उभयपदवृद्धि हो जावे ॥ ६३८ ॥

देवताद्वन्द्वे च ॥ ६३९ ॥ अ० ७ । ३ । २१ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो देवतावाची शब्दों के द्वन्द्व-समास में पूर्व और उत्तर दोनों पदों के अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे । जैसे—आग्निवारुणी; आग्निमारुतो मन्त्रः ।

परन्तु जहां सूक्त ऋचा मन्त्र और हविष्य पदार्थ सम्बन्धी देवतावाची शब्दों का द्वन्द्वसमास हो, वहीं उभयपदवृद्धि हो । और—स्कन्दविशाखौ देवते अस्य स्कान्दविशाखं कर्म्म; ब्राह्मप्रजापत्यम्, यहां उभयपदवृद्धि न होवे ॥ ६३९ ॥

नेन्द्रस्य परस्य ॥ ६४० ॥ अ० ७ । ३ । २२ ॥

देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में उत्तरपद में जो इन्द्र शब्द आवे, तो उसको वृद्धि न हो । पूर्वसूत्र से प्राप्त है, उसका निषेध किया है । जैसे—सोमेन्द्रौ देवते अस्य सौमेन्द्रः; आग्नेन्द्रः इत्यादि ।

यहां 'पर' ग्रहण इसलिये है कि—ऐन्द्राग्नं चरुं निर्वपेत्, यहां पूर्वपद में निषेध न होवे । इन्द्र शब्द में दो स्वर हैं । उनमें से अन्त्य अकार का तद्धित प्रत्यय के परे लोप, और पूर्व इकार का दूसरे वर्ण के साथ एकादेश होने से उत्तरपदवृद्धि की प्राप्ति ही नहीं हो सकती, फिर निषेध करने से यह ज्ञापक होता है कि अन्तरङ्ग भी एकादेश को बाध के प्रथम पूर्वोत्तरपदवृद्धि ही होती है ।

इस ज्ञापक का अन्यत्र फल यह है कि—पूर्वैषुकामशमः, यहां उत्तरपद में इषु शब्द के इकार की वृद्धि प्रथम ही हो जाती है, पीछे एकादेश होता है ॥ ६४० ॥

दीर्घाच्च वरुणस्य ॥ ६४१ ॥ अ० ७ । ३ । २३ ॥

दीर्घ वर्ण से परे जो वरुण उत्तरपद उसके आदि अच् को वृद्धि न हो।

यहां भी देवता के द्वन्द्वसमास में पूर्वसूत्र से प्राप्ति है, उसका प्रतिषेध समझना चाहिये। जैसे—इन्द्रावरुणौ देवते अस्य ऐन्द्रावरुणम्; मैत्रावरुणम् इत्यादि।

'दीर्घ वर्ण से परे' इसलिये कहा है कि—आग्निवारुणी, यहां निषेध न होजावे ॥ ६४१ ॥

प्राचां नगरान्ते ॥ ६४२ ॥ अ० ७ । ३ । २४ ॥

प्राचीनों के देश में ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो नगरान्त अङ्ग में उभयपद के आदि अच् को वृद्धि हो। जैसे—सुह्मनगरे भवः सौह्मनागरः; पौण्ड्रनागरः इत्यादि।

यहां 'प्राचां' ग्रहण इसलिये है कि—मद्रनगरे भवः माद्रनगरः, यहां उत्तरदेशीय नगरान्त में न होवे ॥ ६४२ ॥

जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम् ॥६४३॥ अ० ७।३।२५॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो जङ्गल, धेनु, वलज ये शब्द जिसके अन्त में हों, उस समुदाय के उत्तरपद के आदि अच् को विकल्प करके, और पूर्वपद के आदि अच् को नित्य वृद्धि होवे।

जैसे—कुरुजङ्गलेषु भवं कौरुजाङ्गलम्, कौरुजङ्गलम्; वैश्वधैनवम्, वैश्वधेनवम्; सौवर्णवालजः, सौवर्णवलजः, यहां शैषिक अण् प्रत्यय हुआ है ॥ ६४३ ॥

अर्द्धात्परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा ॥ ६४४ ॥ अ० ७ । ३ । २६ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो अर्द्ध शब्द से परे जो परिमाणवाची उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् को नित्य और पूर्वपद के आदि अच् को विकल्प करके वृद्धि होवे। जैसे—अर्द्धद्रोणेन क्रीतमार्द्धद्रौणिकम्, अर्द्धद्रौणिकम्; आर्द्धकौडविकम्, अर्द्धकौडविकम्।

यहां 'परिमाण' ग्रहण इसलिये किया है कि—अर्द्धक्रोशः प्रयोजनमस्य आर्द्धक्रोशिकम्, यहां पूर्वपद को विकल्प और उत्तरपद को नित्य वृद्धि न होवे ॥ ६४४ ॥

नातः परस्य ॥ ६४५ ॥ अ० ७ । ३ । २७ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो अर्द्ध शब्द से परे परिमाणवाची उत्तरपद के आदि अकार को वृद्धि न हो, और पूर्वपद को विकल्प

करके होवे। जैसे—अर्द्धप्रस्थेन क्रीतमार्द्धप्रस्थिकम्, अर्द्धप्रस्थिकम्; आर्द्धकंसिकः, अर्द्धकंसिकः।

यहां 'अकार' का ग्रहण इसलिये है कि—आर्द्धकौडविकः, यहां वृद्धि का निषेध न होवे। और 'अकार में तपरंकरण' इसलिये है कि—अर्द्धखार्यां भवा आर्द्धखारी, यहां खारी शब्द उत्तरपद के आदि में दीर्घ आकार है।

यद्यपि वृद्धि होने न होने में कुछ विशेष नहीं दीखता, तो भी—आर्द्धकारी भार्य्या अस्य आर्द्धकारीभार्य्यः, यहां वृद्धि के निमित्त तद्धित प्रत्यय के परे पुंवद्भाव का निषेध नहीं पावेगा। क्योंकि जिस तद्धित प्रत्यय के परे वृद्धि का निषेध है, वह वृद्धि का निमित्त नहीं हो सकता कि जैसे—वैयाकरणी भार्य्या अस्य वैयाकरणभार्य्यः, यहां पुंवद्भाव हो जाता है, वैसे उसमें भी हो जावेगा ॥ ६४५ ॥

प्रवाहणस्य ढे ॥ ६४६ ॥ अ० ७ । ३ । २८ ॥

तद्धितसंज्ञक ढ प्रत्यय परे हो, तो प्रवाहण शब्द के उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि हो और पूर्वपद के आदि अच् को विकल्प करके होवे।

जैसे—प्रवाहणस्यापत्यं प्रावाहणेयः, प्रवाहणेयः। प्रवाहण शब्द का शुभ्रादिगण में पाठ होने से ढक् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६४६ ॥

तत्प्रत्ययस्य च ॥ ६४७ ॥ अ० ७ । ३ । २९ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो ढक् प्रत्ययान्त प्रवाहण शब्द में उत्तरपद के आदि अच् को नित्य और पूर्वपद के अच् को विकल्प करके वृद्धि हो।

जैसे—प्रवाहणेयस्य युवापत्यं प्रावाहणेयिः, प्रवाहणेयिः इत्यादि, अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय हुआ है। दूसरे प्रत्यय के आश्रय जो वृद्धि है, सो ढक् प्रत्यय को मान के विकल्प से नहीं हो सकती, इसलिये यह सूत्र कहा है ॥ ६४७ ॥

नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् ॥ ६४८ ॥ अ० ७ । ३ । ३० ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो नञ् से परे जो शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल और निपुण उत्तरपद उसके अचों में आदि अच् को नित्य और पूर्वपद को विकल्प करके वृद्धि हो।

जैसे—शुचि—अशुचेर्भावः आशौचम्, अशौचम्; ईश्वर—अनीश्वरस्य भावः आनैश्वर्य्यम्, अनैश्वर्य्यम्; क्षेत्रज्ञ—आक्षैत्रज्ञ्यम्, अक्षैत्रज्ञ्यम्; कुशल—अकुशलस्य भावः आकौशलम्, अकौशलम्; निपुण—आनैपुणम्, अनैपुणम् ॥ ६४८ ॥

यथातथयथापुरयोः पर्यायेण ॥ ६४६ ॥ अ० ७ । ३ । ३१ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो नञ् से परे जो यथातथ और यथापुर उसके अचों में आदि अच् को पर्याय से वृद्धि हो। अर्थात् जब पूर्वपद को हो तब उत्तरपद को नहीं, और जब उत्तरपद को हो तब पूर्वपद को नहीं होवे।

जैसे—अयथातथा भावः आयथातथ्यम्, अयाथातथ्यम्; आयथापुर्य्यम्, अयाथापुर्य्यम्। अयथातथा और अयथापुर ये दोनों शब्द ब्राह्मणादि गण में पढ़े हैं, इससे ष्यञ् प्रत्यय होता है ॥ ६४६ ॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीव्याख्यातोऽष्टाध्याय्यां
स्त्रैणताद्धितोऽयं ग्रन्थः समाप्तः ॥



वसुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे मार्गशीर्षे सिते दले।
पञ्चमीशनिवारेऽयं ग्रन्थः पूर्त्तिं गतः शुभः ॥

संवत् १९३८ मार्गशीर्ष शुक्ल ५ शनिवार के दिन यह स्त्रैणताद्धित ग्रन्थ
श्रीयुत दयानन्द सरस्वतीजी ने पूरा किया ॥

